॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ श्रीशान्तिभरपार्श्व...

॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ अनन्तलब्धिनिधानाय श्रीगौतमगणधराय नम

॥ ॐ ह्रीँ ... सर्वसिद्धिपदाय ॥

श्री जैन शारदा-पूजन विधि

ओर दीवाली-पूजन विधि ॥

पूजनके समय पहले, जहाँ पर पूजन करना हो अुस पूजागृहको मनोहर चित्रोंसे अेव अन्यान्य सजावटकी चीजोंसे सुशोभित कर लेना चाहिये। 'शुभ मुहूर्त, शुभ चोघडिया, शुभ तिथि, शुभ दिन, ओर शुभ नक्षत्रमे प्रथम वहीको अुत्तम चोकी या पट्टेके अुपर पूर्व या अुत्तर दिशाकी तरफ स्थापन करें।

पूजन करनेवाला हाथमें कंकन धारण करके और अन्यान्य दिव्याभरणोंसे अलंकृत होकर सुन्दर पवित्र आसन पर बैठें। सामने अेक अुत्तम चौकी या पट्टा रख लेवें, और चाँदीकी रकावीमें अुसकी सजावट कर अुमीमें श्री शारदा अथवा श्री गौतमस्वामिजीकी मूर्ति या चित्र स्थापन करें। अुसके बाद जल, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य, और फल आदि श्री शारदादेवीके पूजनके समय प्रत्येक मन्त्रोंको पढ़-पढ़कर अुस मूर्तिके सन्मुख चढ़ाता जाय।

पूजा करानेवाला विद्वान्, क्रियाकुशल, अेवं गन्ध-चन्दनादिसे अनुलिप्त, तथा सुन्दर पवित्र वस्त्राभरणोंसे विभूषित होना चाहिये। पूजन करनेवाले सबके ललाट प्रदेशमें कुंकुमके तिलक करके अक्षत लगाना, और वे सब अपने दाहिने हाथमें कंकन बांधे। पासमें घृतका दीपक और धूप रक्खें।

अिस तरह सकल-सामग्री संपन्न हो जाने पर कंकन बंधी हुअी सुन्दर लेखिनी और स्याही भरी हुअी दावात लेकर तीन नवकार गीनके नीचे लिखे अनुसार अुस नयी वहीमें लिखें—

" ७४ ॥। वन्दे वीरम्। श्री परमात्मने नमः। श्री सद्गुरुभ्यो नमः। श्री सरस्वत्यै नमः। श्री गौतमस्वामिजी जैसी लब्धि। श्री केसरियाजी जैसा भंडार। श्री भरत चक्रवर्ती जैसी ऋद्धि प्राप्त हो। बाहुबलिजी जैसा बल। श्री अभयकुमार जैसी बुद्धि। श्री कयवन्ना सेठ जैसा सौभाग्य। श्री धन्ना-शालिभद्रजी जैसी संपत्ति प्राप्त हो। श्री रत्नाकर सागरकी लहर, और श्री जिनशासनकी प्रभावना हो॥ "

इतना लिखनेके बाद नया वर्ष, मास अेवं दिन-तिथि, वार तथा तारीख लिखें। अुसके बाद नीचे लिखे अनुसार १ से ९ तक पहाड़के शिखरके मुताबिक "श्री" लिखें। अगर वही छोटी हो तो सात या पाँच ही "श्री" लिखें। अुसके बाद नीचे लिखा मुताबिक कुंकुमसे स्वस्तिकका आलेखन करें—

गुड-धाना सेर १।

कुङ्कुम-सुपारी सेर १।

श्री
श्रीश्री
श्रीश्रीश्री
श्रीश्रीश्रीश्री
श्रीश्रीश्रीश्रीश्री
श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री
श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री
श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री
श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री

卐

अुपर लिखा मुतानिक कुकुमसें आलेखन किये हुअे स्वस्तिकके अुपर अखड नागरवेलका पत्ता रखना, और अुसके अुपर सुपारी, अिलायची, लवग और चाँदीकी महोर रखना। तदनन्तर श्री शारदाजीके सन्मुख जलधारा देकर, श्री सद्गुरजीके द्वारा मन्त्रित वासक्षेप, कुकुम, अक्षत और पुष्पकी कुसुमाजलि हाथमे लेकर नीचे लिखा हुआ श्लोक पढ़कर श्री शारदाजीके चित्र या मूर्तिके सन्मुख चढावें।

॥ ३ ॥

श्लोक—" मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमः प्रभुः ।
मङ्गलं स्थूलभद्राद्या, जैनो धर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥ "

॥ वही-पूजनकी विधि ॥

अुपरोक्त विधिसें श्री शारदा-पूजनकी विधि समाप्त हो जाने पर जल १, चन्दन २, पुष्प ३, धूप ४, दीप ५, अक्षत ६, नैवेद्य ७ और फल ८, अिस प्रकार अनुक्रमसे अष्ट-द्रव्यसें वहीका पूजन करना ।

प्रथम जल-पूजा करनेके पेस्तर नीचे लिखा हुआ पंच-परमेष्ठि स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढ़े—

॥ पञ्च-परमेष्ठि स्तोत्रम् ॥

" स्वःश्रियं श्रीमदर्हन्तः, सिद्धाः सिद्धिपुरीपदम् । आचार्याः पञ्चधाचारं, वाचका वाचनां वराम् ॥ १ ॥
साधवः सिद्धिसाहाय्यं, वितन्वन्तु विवेकिनाम् । मङ्गलानां च सर्वेषा-माद्यं भवति मङ्गलम् ॥ २ ॥
अर्हमित्यक्षरं माया-बीजं च प्रणवाक्षरम् । एतद् नानास्वरूपं च, ध्येयं ध्यायन्ति योगिनः ॥ ३ ॥
हृत्पद्मषोडशदल-स्थापितं षोडशाक्षरम् । परमेष्ठिस्तुतेर्बीजं, ध्यायेदक्षरदं मुदा ॥ ४ ॥
मन्त्राणामादिमं मन्त्रं, तन्त्रं विघ्नौघनिग्रहे । ये स्मरन्ति सदैवैनत् , ते भवन्ति जिनप्रभाः ॥ ५ ॥

श्री सरस्वती माता

नमस्ते शारदादेवि !, काश्मीरपुरवासिनि !।
त्वामहं प्रार्थये नित्य, विद्यादान प्रदेहि मे ॥ १ ॥

॥ मन्त्र ॥

" ॐ ह्रीँ श्रीँ भगवत्यै, केवलज्ञानस्वरूपायै, लोकालोकप्रकाशिकायै, सरस्वत्यै जल समर्पयामि स्वाहा ॥ "

अिस प्रकार पच-परमेष्ठि स्तोत्र ओर मन्त्रपाठ पढ़कर वहीके अुपर पानीका सूक्ष्म छटकाव देवें, या वहीके फिरती सूक्ष्म जलधारा देवे ॥ १ ॥

अिसी प्रकार दूसरी चन्दन-पूजा करते वरत शुद्ध केसर युक्त पानीसे घिसे हुअे चन्दनसें या पानीसें घिसे हुअे अकेले चन्दनसें पूजा करें। अुस वख्त उपरोक्त पच-परमेष्ठि स्तोत्र ओर मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " जल समपयामि स्वाहा " के बदल " चन्दन समपयामि स्वाहा " बोले ॥ २ ॥

तीसरी पुष्प-पूजा करते वख्त सुगन्धी ओर खिले हुअे पुप हाथमे लेकर अुपरोक्त स्तोत्र ओर मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " पुष्पाणि समपयामि स्वाहा " बोल कर पुष्पोंसें वहीकी पूजा करे ॥ ३ ॥

चौथी धूप-पूजा करते वरत सुगन्धी धूपयुक्त धूपदानी या धूप हाथमे रखकर पूर्वोक्त पच-परमेष्ठि स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढता हुआ " जल समपयामि स्वाहा " के ठिकाने " धूपम् उत्क्षिपामि स्वाहा " बोल कर धूप अुखेवे ॥ ४ ॥

पाँचवीं दीप-पूजा करते वख्त शुद्ध घृतका दीपक करके अुसको रकाबीमे रखकर अुस रकाबीको हाथमे लेकर अुपरोक्त स्तोत्र ओर मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " जल समपयामि स्वाहा " के ठिकाने " दीप दर्शयामि स्वाहा " बोल कर दीपकको वहीकी दाहिनी बाजु रक्खें ॥ ५ ॥

अङ्कप्रवीणा[1] कलहं सपत्रा, कृतस्मरेणानमतां निहन्तुम् ।
अङ्कप्रवीणा[2] कलहंसपत्रा[3] सरस्वती शश्वदपोहतां वः ॥ २ ॥

ब्राह्मी विजेषीष्ट विनिद्रकुन्द-प्रभाऽवदाता घनगर्जितस्य ।
स्वरेण जैत्री ऋतुना स्वकीय-प्रभावदाता घनगर्जितस्य ॥ ३ ॥

मुक्ताक्षमाला लसदोपधीशा-[4]ऽभीशूज्ज्वला भाति करे त्वदीये ।
मुक्ताक्षमालाऽलसदोपधीशा[5] यां प्रेक्ष्य भेजे मुनयोऽपि हर्षम् ॥ ४ ॥

ज्ञानं प्रदातुं प्रवणा ममाऽति-शयालुनानाभवपातकानि ।
त्व नेमुषां भारति ! पुण्डरीक-शयालु नानाभवपातकानि ॥ ५ ॥

प्रौढप्रभावाऽसमपुस्तकेन, ध्यातासि येनाऽम्ब ! विराजिहस्ता ।
प्रौढप्रभावाऽसमपुस्तकेन विद्यासुधापूरसुदूरदुःखः ॥ ६ ॥

---

१ अङ्ककुशला । २ अङ्केउत्सङ्गे प्रकृष्टा वीणा यस्याः सा । ३ कलहंसवाहना । ४ देदीप्यमानचन्द्रस्य ये अभीशवः-किरणाः, तद्वद् उज्ज्वला । ५ त्यक्ताऽक्षमालानाम् अलसानां दोपधियं या श्यति-छिनत्ति ।

छट्ठी अक्षत-पूजा करते वख्त हाथमे अखंड अक्षत (चावल) लेकर पूर्वोक्त स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढता हुआ " अक्षतान् समर्पयामि स्वाहा " बोल कर वहीके अुपर अक्षत चढावें ॥ ६ ॥

सातवीं नैवेद्य-पूजामे मिश्री, पतासा, लड्डु, पेडा, खाजा वगेरा अुत्तम पक्वान्न रकाबीमे रखकर अुस रकाबीको हाथमे रखकर अुपरोक्त स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " नैवेद्य समर्पयामि स्वाहा " बोल कर अुस रकाबीको वहीके आगे धरें ॥ ७ ॥

आठवीं फल-पूजामे नारियर, अनार, बीजोरा, नारंगी, मसुंबी, केला, सुपारी, लवंग, बदाम, द्राक्ष, वगेरा सरस सुगन्धी और मनोहर फल रकाबीमे रखकर अुस रकाबीको हाथमे रखकर उपरोक्त स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " फलानि समर्पयामि स्वाहा " बोलकर वहीकी फलपूजा करें ॥ ८ ॥

इस प्रकार आठ प्रकारके द्रव्यसे अनुक्रमसें पूजन-विधि समाप्त हो जाने पर नीचे लिखा हुआ श्री शारदा-स्तोत्र पढ़ें या श्रवण करें।

॥ श्री शारदा-स्तोत्रम् ॥१॥

वाग्देवते ! भक्तिमतां स्वशक्ति-कलापवित्रासितविग्रहा[1] मे।
बोध विशुद्ध भवती विधत्ता, कलापवित्रा सितविग्रहा[2] मे ॥ १ ॥

---

१ स्वशक्तिसमूहेन वित्रासितो विग्रहो-युद्ध यया सा। २ शुक्लदेहा।

॥ मन्त्रः ॥

" ॐ ह्रीँ श्रीँ भगवत्यै, केवलज्ञानस्वरूपायै, लोकालोकप्रकाशिकायै, सरस्वत्यै जलं समर्पयामि स्वाहा ॥ "

अिस प्रकार पंच-परमेष्टि स्तोत्र और मन्त्रपाठ पढ़कर वहीके अुपर पानीका सूक्ष्म छटकाव देवें, या वहीके फिरती सूक्ष्म जलधारा देवें ॥ १ ॥

अिसी प्रकार दूसरी चन्दन-पूजा करते वख्त शुद्ध केसर युक्त पानीसे घिसे हुअे चन्दनसे या पानीसें घिसे हुअे अकेले चन्दनसे पूजा करें। अुस वख्त उपरोक्त पंच-परमेष्टि स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " जलं समर्पयामि स्वाहा " के वदल " चन्दनं समर्पयामि स्वाहा " बोले ॥ २ ॥

तीसरी पुष्प-पूजा करते वख्त सुगन्धी और खिले हुअे पुष्प हाथमे लेकर अुपरोक्त स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " पुष्पाणि समर्पयामि स्वाहा " बोल कर पुष्पोंसे वहीकी पूजा करें ॥ ३ ॥

चौथी धूप-पूजा करते वख्त सुगन्धी धूपयुक्त धूपदानी या धूप हाथमे रखकर पूर्वोक्त पंच-परमेष्टि स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " जलं समर्पयामि स्वाहा " के ठिकाने " धूपम् उत्क्षिपामि स्वाहा " बोल कर धूप अुखेवें ॥ ४ ॥

पाँचवीं दीप-पूजा करते वख्त शुद्ध घृतका दीपक करके अुसको रकाबीमें रखकर अुस रकाबीको हाथमें लेकर अुपरोक्त स्तोत्र और मन्त्र-पाठ पढ़ता हुआ " जलं समर्पयामि स्वाहा " के ठिकाने " दीपं दर्शयामि स्वाहा " बोल कर दीपकको वहीकी दाहिनी बाजु रक्खें ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥

क्लृप्तस्तुतिर्निबिडभक्ति-जडत्वपूर्वैः-र्गुम्फैर्गिरामिति गिरामधिदेवता सा।
बालोऽनुकम्प्य इति रोपयतु प्रसाद-स्मेरां दृश मयि जिनप्रभसूरिवर्ण्यां ॥ १३ ॥

अिसके बाद नीचे लिखा मुतानिक श्री शारदाजीका दूसरा स्तोत्र, और दो श्लोक पढ़ें या श्रवण करें—

॥ श्री शारदा-स्तोत्रम् ॥ २ ॥

ॐ अर्हद्वदनाम्भोज-वासिनीं पापनाशिनीम्। सरस्वतीमहं स्तौमि, श्रुतसागरपारदाम् ॥ १ ॥
लक्ष्मीबीजाक्षरमयीं, मायाबीजसमन्विताम्। त्वां नमामि जगन्मात-स्त्रैलोक्यैश्वर्यदायिनीम् ॥ २ ॥
सरस्वति! वद वद, वाग्वादिनि मिताक्षरैः। येनाऽहं वाङ्मयं सर्वं, जानामि निजनामवत् ॥ ३ ॥
भगवति सरस्वति!, ह्रीं नमोऽङ्घ्रिद्वये भगे। ये कुर्वन्ति न ते हि स्यु-र्जाड्याम्बुधिधराशयाः ॥ ४ ॥
त्वत्पादसेविहंसोऽपि, विवेकीति जनश्रुतिः। ब्रवीमि किं पुनस्तेषां, येषां त्वच्चरणौ हृदि? ॥ ५ ॥
तावकीना गुणा मातः!, सरस्वति! वदात्मिके। ये स्मृता अपि जीवानां, स्युः सौख्यानि पदे पदे ॥ ६ ॥
त्वदीयचरणाम्भोजे, मच्चित्त राजहंसवत्। भविष्यति कदा मातः!, सरस्वति वद स्फुटम् ॥ ७ ॥
श्वेताब्जनिधिचन्द्राश्म-प्रासादस्थां चतुर्भुजाम्। हंसस्कन्धस्थितां चन्द्रमूर्त्युज्ज्वलतनुप्रभाम् ॥ ८ ॥
वाम-दक्षिणहस्ताभ्यां, बिभ्रतीं पद्म-पुस्तिकाम्। तथेतराभ्यां वीणाऽक्ष-मालिकां श्वेतवाससम् ॥ ९ ॥
उद्गिरन्तीं मुखाम्भोजाद्, एतामक्षरमालिकाम्। ध्यायेद् योऽग्रस्थितां देवीं, स जडोऽपि कविर्भवेत् ॥१०॥

॥ ९ ॥

अिस प्रकार आरती अुतारनेके बाद नीचे बैठके, अंजलि जोड़कर, नीचे लिखा मुताबिक श्री गौतमाष्टक-स्तोत्र, गौतमाष्टक-स्तुति, आत्मरक्षाकर-वज्रपंजर-स्तोत्र, नमस्कार-महामन्त्र, अुवसग्गहरं-स्तोत्र, और बड़ी शांति पढ़े या अेकाग्र चित्तसें श्रवण करें। सो अिस प्रकार—

॥ श्री गौतमाष्टक-स्तोत्र ॥

श्रीइन्द्रभूतिं वसुभूतिपुत्रं, पृथ्वीभवं गौतमगोत्ररत्नम् ।
स्तुवन्ति देवा-ऽसुर-मानवेन्द्राः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ १ ॥
श्रीवर्धमानात् त्रिपदीमवाप्य, मुहूर्तमात्रेण कृतानि येन ।
अङ्गानि पूर्वाणि चतुर्दशाऽपि, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ २ ॥
श्रीवीरनाथेन पुरा प्रणीतं, मन्त्रं महानन्दसुखाय यस्य ।
ध्यायन्त्यमी सूरिवराः समग्राः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ ३ ॥
यस्याभिधानं मुनयोऽपि सर्वे, गृह्णन्ति भिक्षाभ्रमणस्य काले ।
मिष्टान्नपानाम्बरपूर्णकामाः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ ४ ॥
अष्टापदाद्रौ गगने स्वशक्त्या, ययौ जिनानां पदवन्दनाय ।
निशम्य तीर्थातिशयं सुरेभ्यः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ ५ ॥

॥ ११ ॥

अनन्तलब्धिनिधान-गणधरभगवान्-

श्री गौतमस्वामीजी

सर्वारिष्टप्रणाशाय, सर्वाभीष्टार्थदायिने ।
सर्वलब्धिनिधानाय, गौतमस्वामिने नमः ॥ १ ॥
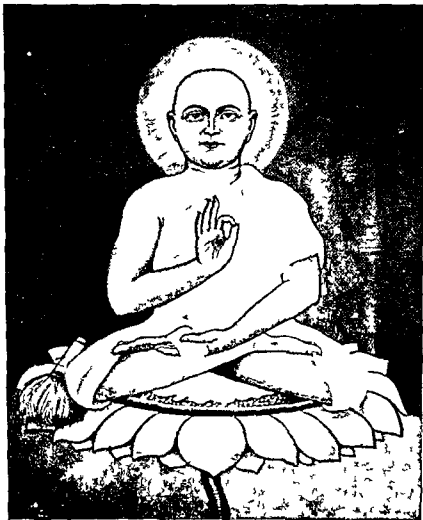
श्रीशारदास्तुतिमिमां हृदये निधाय, ये सुप्रभातसमये मनुजाः स्मरन्ति ।
तेषां परिस्फुरति विश्वविकाशहेतुः, सज्ज्ञानकेवलमहो ! महिमानिधानम् ॥ ११ ॥
यथेप्सया सुरव्यूह-संस्तुता मयका स्तुता । तत्ता पूरयितुं देवि !, प्रसीद परमेश्वरि ! ॥ १२ ॥

श्लोक

कमलदलविपुलनयना, कमलमुखी कमलगर्भसमगौरी । कमले स्थिता भगवती, दद्यात् श्रुतदेवता सौख्यम् ॥१॥
सुवर्णशालिनी देयाद्, द्वादशाङ्गी जिनोद्भवा । श्रुतदेवी सदा मह्य-मशेषा श्रुतसम्पदम् ॥ २ ॥

अिस प्रकार श्री सरस्वती माताजीकी स्तवना करनेके अनन्तर, खडे होकर, नीचे लिखा मुताबिक पढ़ता हुआ श्री सरस्वती माताजीकी आरती अुतारें—

॥ श्री सरस्वती माताजीकी आरती ॥

जय जय आरती देवी तमारी, आशा पूरो हे मात ! अमारी; जय जय आरती० ॥ १ ॥
वीणा पुस्तक कर धरनारी, अमने आपो बुद्धि सारी, जय जय आरती० ॥ २ ॥
ज्ञान अनत हृदय धरनारी, तमने वंदे सहु नर नारी, जय जय आरती० ॥ ३ ॥
मात सरस्वती स्तुति तमारी, करतां जगमां जय जयकारी, जय जय आरती० ॥ ४ ॥

क्लृप्तस्तुतिर्निबिडभक्ति–जडत्वपृक्तै–र्गुम्फैर्गिरामिति गिरामधिदेवता सा।
बालोऽनुकम्प्य इति रोपयतु प्रसाद्–स्मेरां दृशं मयि जिनप्रभसूरिवर्ण्या ॥ १३ ॥

अिसके बाद नीचे लिखा मुताबिक श्री शारदाजीका दूसरा स्तोत्र, और दो श्लोक पढ़ें या श्रवण करें—

॥ श्री शारदा–स्तोत्रम् ॥ २ ॥

ॐ अर्हद्वदनाम्भोज–वासिनीं पापनाशिनीम्। सरस्वतीमहं स्तौमि, श्रुतसागरपारदाम् ॥ १ ॥
लक्ष्मीबीजाक्षरमयीं, मायाबीजसमन्विताम्। त्वां नमामि जगन्मात–स्त्रैलोक्यैश्वर्यदायिनीम् ॥ २ ॥
सरस्वति! वद वद, वाग्वादिनि मिताक्षरैः। येनाऽहं वाङ्मयं सर्वं, जानामि निजनामवत् ॥ ३ ॥
भगवति सरस्वति!, ह्रीँ नमोऽङ्घ्रिद्वये प्रगे। ये कुर्वन्ति न ते हि स्यु–र्जाड्याम्बुधिधराशयाः ॥ ४ ॥
त्वत्पादसेविहंसोऽपि, विवेकीति जनश्रुतिः। ब्रवीमि किं पुनस्तेषां, येषां त्वच्चरणौ हृदि? ॥ ५ ॥
तावकीना गुणा मातः!, सरस्वति! वदात्मिके। ये स्मृता अपि जीवानां, स्युः सौख्यानि पदे पदे ॥ ६ ॥
त्वदीयचरणाम्भोजे, मच्चित्तं राजहंसवत्। भविष्यति कदा मातः!, सरस्वति वद स्फुटम् ॥ ७ ॥
श्वेताब्जनिधिचन्द्राश्म–प्रासादस्थां चतुर्भुजाम्। हंसस्कन्धस्थितां चन्द्रमूर्त्युज्ज्वलतनुप्रभाम् ॥ ८ ॥
वाम–दक्षिणहस्ताभ्यां, बिभ्रतीं पद्म–पुस्तिकाम्। तथेतराभ्यां वीणाऽक्ष–मालिकां श्वेतवाससम् ॥ ९ ॥
उद्गिरन्तीं मुखाम्भोजाद्, एतामक्षरमालिकाम्। ध्यायेद् योऽग्रस्थितां देवीं, स जडोऽपि कविर्भवेत् ॥१०॥

वीरप्रभु सुखिया थया, दीवाली दिन सार। अतर्मुहूरत ततक्षणे, सुखियो सहु ससार ॥ ४ ॥
केवलज्ञान लहे यदा, श्री गौतम गणधार। सुर नर हरख धरी तदा, करे महोत्सव उदार ॥ ५ ॥
सुर-नर परषदा आगले, भाखे श्री श्रुतनाण। नाण थकी जग जाणीए, द्रव्यादिक चउठाण ॥ ६ ॥
ते श्रुतज्ञानने पूजीए, दीप धूप मनोहार। वीर आगम अविचल रहो, वरस एकवीश हजार ॥ ७ ॥
शासन श्री प्रभु वीरनु, समजे जे सुविचार। चिदानद सुख शाश्वता, पामे ते निरधार ॥ ८ ॥

॥ आत्मरक्षाकर श्री नमस्कार-महामन्त्रगर्भित वज्रपञ्जर-स्तोत्रम् ॥

ॐ परमेष्ठिनमस्कार, सार नवपदात्मकम्। आत्मरक्षाकर वज्र-पञ्जराभ स्मराम्यहम् ॥ १ ॥
ॐ नमो अरिहताण, शिरस्क शिरसि स्थितम्। ॐ नमो सिद्धाण, मुखे मुखपट वरम् ॥ २ ॥
ॐ नमो आयरियाण, अङ्गरक्षाऽतिशायिनी। ॐ नमो उवज्झायाण, आयुध हस्तयोर्दृढम् ॥ ३ ॥
ॐ नमो लोए सव्वसाहूण, मोचके पादयो शुभे। एसो पंचनमुक्कारो, शिला वज्रमयी तले ॥ ४ ॥
सव्वपावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः। मगलाण च सव्वेसिं, खादिराङ्गारखातिका ॥ ५ ॥
स्वाहान्त च पद ज्ञेय, पढम हवइ मगल। वप्रोपरि वज्रमय, पिधानं देहरक्षणे ॥ ६ ॥
महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रवनाशिनी। परमेष्ठिपदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः ॥ ७ ॥
यश्चैव कुरुते रक्षा, परमेष्ठिपदैः सदा। तस्य न स्याद् भय व्याधि-राधिश्चापि कदाचन ॥ ८ ॥

॥ श्री नमस्कार—महामन्त्रः ॥

नमो अरिहंताणं ॥ १ ॥ नमो सिद्धाणं ॥ २ ॥ नमो आयरियाणं ॥ ३ ॥ नमो उवज्झायाणं ॥ ४ ॥ नमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ५ ॥ एसो पंचनमुक्कारो ॥ ६ ॥ सव्वपावप्पणासणो ॥ ७ ॥ मंगलाणं च सव्वेसिं ॥ ८ ॥ पढमं हवइ मंगलं ॥ ९ ॥

॥ श्री उवसग्गहरं स्तोत्र ॥

उवसग्गहरं—पासं, पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं। विसहरविसनिन्नासं, मंगल—कल्लाणआवासं ॥ १ ॥
विसहरफुलिंगमंतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ। तस्स गह—रोग—मारी—दुट्ठजरा जन्ति उवसामं ॥ २ ॥
चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ। नर-तिरिएसु वि जीवा, पावन्ति न दुक्ख-दोगच्चं ॥ ३ ॥
तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणि—कप्पपायवब्भहिए। पावन्ति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥ ४ ॥
इअ संथुओ महायस !, भत्तिब्भरनिब्भरेण हियएण। ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास जिणचंद ॥ ५ ॥

॥ बड़ी शान्ति ॥

भो भो भव्याः ! शृणुत वचनं प्रस्तुतं सर्वमेतद्, ये यात्रायां त्रिभुवनगुरोरार्हता भक्तिभाजः।
तेषां शान्तिर्भवतु भवतामर्हदादिप्रभावा—दारोग्य—श्री—धृति—मतिकरी क्लेशविध्वंसहेतुः ॥ १ ॥

भो भो भव्यलोका ! इह हि भरतै-रावत-विदेहसंभवानां समस्ततीर्थकृतां जन्मन्यासंनप्रकम्पानन्तरमवधिना विज्ञाय, सौधर्माधिपति. सुघोषाघण्टाचालनानन्तर सकलसुरासुरेन्द्रैः सह समागत्य, सविनयमर्हद्भट्टारक गृहीत्वा, गत्वा कनकाद्रिशृङ्गे, विहितजन्माभिषेक शान्तिमुद्घोषयति यथा ततोऽह कृतानुकारमिति कृत्वा, महाजनो येन गत स पन्थाः, इति भव्यजनैः सह समेत्य स्नात्रपीठे स्नात्र निधाय शान्तिमुद्घोषयामि । तत्पूजा-यात्रा-स्नात्रादिमहोत्सवानन्तरमिति कृत्वा कर्णं दत्त्वा निशम्यतां निशम्यता स्वाहा ।

ॐ पुण्याह पुण्याह प्रीयन्तां प्रीयन्तां भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनस्त्रिलोकनाथास्त्रिलोकमहितास्त्रिलोकपूज्यास्त्रिलोकेश्वरास्त्रिलोकोद्योतकराः ।'ॐ ऋषभ-अजित-सभव-अभिनन्दन-सुमति-पद्मप्रभ-सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ-सुविधि-शीतल श्रेयास-वासुपूज्य-विमल-अनन्त-धर्म-शान्ति-कुथु-अर-मल्लि-मुनिसुव्रत-नमि नेमि-पार्श्व वर्धमानान्ता जिना' शान्ताः शान्तिकरा भवन्तु स्वाहा ।

ॐ मुनयो मुनिप्रवरा रिपुविजय-दुर्भिक्ष-कान्तारेषु दुर्गमार्गेषु रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ।

ॐ ह्रीँ श्रीँ धृति-मति-कीर्ति-कान्ति-बुद्धि-लक्ष्मी-मेधा-विद्यासाधन-प्रवेश-निवेशनेषु सुगृहीतनामानो जयन्तु ते जिनेन्द्रा' ।

ॐ रोहिणी-प्रज्ञप्ति-वज्रशृङ्खला-वज्राङ्कुशी-अप्रतिचक्रा-पुरुषदत्ता-काली-महाकाली-गौरी-गान्धारी-सर्वास्त्रा-महाज्वाला-मानवी-वैरोट्या-अच्छुप्ता-मानसी-महामानसी षोडश विद्यादेव्यो रक्षन्तु वो नित्य स्वाहा ।

ॐ आचार्योपाध्यायप्रभृतिचातुर्वर्णस्य श्रीश्रमणसंघस्य शान्तिर्भवतु, तुष्टिर्भवतु, पुष्टिर्भवतु ।

ॐ ग्रहाश्चन्द्र-सूर्या-ऽङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर-राहु-केतुसहिताः सलोकपालाः सोम-यम-वरुण-कुबेर-वासवादित्य-स्कन्द-विनायकोपेता ये चान्येऽपि ग्राम-नगर-क्षेत्रदेवतादयस्ते सर्वे प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्, अक्षीणकोष-कोष्ठागारा नरपतयश्च भवन्तु स्वाहा ।

ॐ पुत्र-मित्र-भ्रातृ-कलत्र-सुहृत्-स्वजन-संबन्धि-बन्धुवर्गसहिता नित्यं चामोद-प्रमोदकारिणः, अस्मिंश्च भूमण्डलायतननिवासिसाधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाणां रोगोपसर्ग-व्याधि-दुःख-दुर्भिक्ष-दौर्मनस्योपशमनाय शान्तिर्भवतु ।

ॐ तुष्टि-पुष्टि-ऋद्धि-वृद्धि-माङ्गल्योत्सवाः, सदा प्रादुर्भूतानि पापानि शाम्यन्तु दुरितानि, शत्रवः पराङ्मुखा भवन्तु स्वाहा ।

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्तिविधायिने । त्रैलोक्यस्यामराधीश-मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥ १ ॥

शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शान्ति दिशतु मे गुरुः । शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे ॥ २ ॥

उन्मृष्टरिष्ट-दुष्ट—ग्रहगति-दुःस्वप्न-दुर्निमित्तादि । संपादितहितसंप-न्नामग्रहणं जयति शान्तेः ॥ ३ ॥

श्रीसंघ-जगज्जनपद—राजाधिप-राजसन्निवेशानाम् । गोष्ठिक-पुरमुख्याणां, व्याहरणैर्व्याहरेच्छान्तिम् ॥ ४ ॥

श्रीश्रमणसंघस्य शान्तिर्भवतु, श्रीजनपदानां शान्तिर्भवतु, श्रीराजाधिपानां शान्तिर्भवतु, श्रीराजसन्निवेशानां शान्तिर्भवतु, श्रीगोष्ठिकानां शान्तिर्भवतु, श्रीपौरमुख्याणां शान्तिर्भवतु, श्रीपौरजनस्य शान्तिर्भवतु, श्रीब्रह्मलोकस्य शान्ति-

भवतु । ॐ स्वाहा ॐ स्वाहा, ॐ श्रीपार्श्वनाथाय स्वाहा ।

एपा शान्ति प्रतिष्ठा-यात्रा-स्नात्राद्यवसानेषु, शान्तिकलशं गृहीत्वा, कुङ्कुम-चन्दन-कर्पूरा-ऽगुरु-धूपवास-कुसुमाञ्जलिसमेतः स्नात्रचतुष्किकाया श्रीसंघसमेतः शुचिशुचिवपुः पुष्प-वस्त्र-चन्दना-भरणालङ्कृतः पुष्पमालां कण्ठे कृत्वा शान्तिमुद्घोपयित्वा शान्तिपानीयं मस्तके दातव्यमिति ।

नृत्यन्ति नित्यं मणि-पुष्पवर्षं, सृजन्ति गायन्ति च मङ्गलानि ।
स्तोत्राणि गोत्राणि पठन्ति मन्त्रान्, कल्याणभाजो हि जिनाभिषेके ॥ १ ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः । दोपाः प्रयान्तु नाश, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ २ ॥
अह तित्थयरमाया, सिवादेवी तुम्ह नयरनिवासिनी । अम्ह सिव तुम्ह सिव, असिवोवसम सिव भवतु स्वाहा ॥ ३ ॥

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः । मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥ ४ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्य, सर्वकल्याणकारणम् । प्रधानं सर्वधर्माणां, जैन जयति शासनम् ॥ ५ ॥

अिसके बाद याचकोंको यथाशक्ति दान देना ।

॥ इति श्री शारदा-पूजन विधि, और श्री वही-पूजन विधि समाप्त ॥

॥ श्रीबप्पभट्टिसूरीश्वरप्रणीतं श्रीशारदा-स्तोत्रम् ॥

द्रुतविलम्बितम्—

कलमरालविहङ्गमवाहना, सितदुकूल-विभूषण-लेपना ।
प्रणतभूमिरुहाऽमृतसारिणी, प्रवरदेहविभाभरधारिणी ॥ १ ॥

अमृतपूर्णकमण्डलुहारिणी, त्रिदश-दानव-मानवसेविता ।
भगवती परमैव सरस्वती, मम पुनातु सदा नयनाम्बुजम् ॥ २ ॥ (युग्मम्)

जिनपतिप्रथिताखिलवाङ्मयी, गणधराननमण्डपनर्तकी ।
गुरुमुखाम्बुजखेलनहंसिका, विजयते जगति श्रुतदेवता ॥ ३ ॥

अमृतदीधितिबिम्बसमाननां, त्रिजगतीजननिर्मितमाननाम् ।
नवरसामृतवीचिसरस्वतीं, प्रमुदितः प्रणमामि सरस्वतीम् ॥ ४ ॥

विततकेतकपत्रविलोचने !, विहितसंसृतिदुष्कृतमोचने ! ।
धवलपक्षविहङ्गमलाञ्छिते !, जय सरस्वति ! पूरितवाञ्छिते ! ॥ ५ ॥

भवदनुग्रहलेशतरङ्गिता-स्तदुचितं प्रवदन्ति विपश्चितः ।
नृपसभासु यतः कमलाबला-कुचकलाललनानि वितन्वते ॥ ६ ॥

गतधना अपि हि त्वदनुग्रहात्, कलितकोमलवाक्यसुधोर्मयः ।
चकितबालकुरङ्गविलोचना, जनमनांसि हरन्तितरां नराः ॥ ७ ॥
करसरोरुहखेलनचञ्चला, तव विभाति वरा जपमालिका ।
श्रुतपयोनिधिमध्यविकस्वरो-ज्ज्वलतरङ्गकलाग्रहसाग्रहा ॥ ८ ॥
द्विरद-केसरि-मारि-भुजङ्गमा—ऽसहन तस्कर-राज-रुजा भयम् ।
तव गुणावलिगानतरङ्गिणा, न भविनां भवति श्रुतदेवते ! ॥ ९ ॥

स्रग्धरा—

ॐ ह्रीँ क्लीँ ब्लोँ ततः श्रीँ तदनु हसकलह्रीमथो ऐँ [1]नमोऽन्ते,
लक्षं साक्षाज्जपेद् यः करसमविधिना सत्तपा ब्रह्मचारी ।
निर्यान्तीं चन्द्रबिम्बात् कलयति मनसा त्वां जगच्चन्द्रिकाभां,
सोऽत्यर्थं वह्निकुण्डे विहितघृतहुतिः स्याद् दशांशेन विद्वान् ॥ १० ॥

शार्दूलविक्रीडितम्—

रे रे ! लक्षण-काव्य-नाटक-कथा-चम्पूसमालोकने, क्वायास वितनोषि बालिश ! मुधा किं नम्रवक्त्राम्बुजः ? ।

१ "ॐ ह्रीँ क्लीँ ब्लीँ श्रीँ हसकल ह्रीँ ऐँ नम " इति श्रीसरस्वत्या मन्त्रजाप ।

भक्त्याऽऽराधय मन्त्रराजमहसाऽनेनानिशं भारतीं, येन त्वं कवितावितानसविताऽद्वैतमनुद्भायसे ॥ ११ ॥
चञ्चच्चन्द्रमुखी प्रसिद्धमहिमा स्वाच्छन्द्यराज्यप्रदा—ऽनायासेन सुरासुरेश्वरगणैरभ्यर्चिता भक्तितः ।
देवी संस्तुतवैभवा मलयजालेपाङ्गरङ्गद्युतिः, सा मां पातु सरस्वती भगवती त्रैलोक्यसंजीवनी ॥ १२ ॥

द्रुतविलम्बितम्—

स्तवनमेतदनेकगुणान्वितं, पठति यो भविकः प्रमनाः प्रगे ।
स सहसा मधुरैर्वचनामृतै—र्नृपगणानपि रञ्जयति स्फुटम् ॥ १३ ॥

॥ श्री महालक्ष्मी—स्तोत्रम् ॥ (अष्टक)

ॐ नीरनिर्मल—सुगन्धचन्दन-अखण्डअक्षत-पुष्पकैः, धूप—दीप—नैवेद्य-पग—घृत-शर्करा-फल-वस्त्रकैः ।
पूजा भविसुखदायिकाऽस्तौ दुरितकल्मषखण्डनी, महालक्ष्मि ! महामाये !, पूजायां प्रतिगृह्यताम् ॥ १ ॥
ॐ नमोऽस्तु महामाये, सुरासुरैः प्रपूजिते ! । शङ्ख—चक्र—गदाहस्ते, महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥
जन्मादिरहिते देवि !, आदिशक्ते ! अगोचरे ! । योगिनि योगसंभूते !, महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
पद्मनिवासिनि देवि !, पद्मनित्ये सरस्वति । पद्महस्ते जगन्मातः !, महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
सर्वज्ञे सर्वदे देवि !, सर्वदुःखनिवारिणि । सर्वसिद्धिकरे देवि ! महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
स्थूले सूक्ष्मे महारुद्रे !, सत्ये सत्यमहोदरि ! । महापापहरे देवि !, महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

बुद्धि-सिद्धिप्रदे देवि !, भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनि ! । सौख्यकरे महादेवि !, महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥
लक्ष्मीस्तवनं पुण्य, प्रातरुत्थाय यः पठेत् । न पश्यति स दारिद्र्य, जय प्राप्नोति नित्यशः ॥ ८ ॥

॥ श्री महालक्ष्मी-पूजा ॥

शार्दूलविक्रीडितम्—

आह्वान धनस्थापनं धन-कनककर धान्यस्य सवर्धन, नारिकेल-सशर्करं घृतयुत दुग्धैर्दधिस्नापनम् ।
जाती-चन्दन-कुङ्कु-केसरच्छटा-पञ्चामृतैः पूजन, लक्ष्मीस्नानकरं सुवस्त्रभरणं दिव्याङ्गनाभूषणम् ॥ १ ॥

मन्त्र.—

ॐ आँ क्रौं ह्रीं महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसपत्तिं कुरु कुरु ॥ अत्र आगच्छ आगच्छ स्वाहा । अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा । अत्र सांनिध्यं कुरु कुरु स्वाहा । अत्र पूजाञ्जलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

॥ श्री महालक्ष्मी-पूजनकी विधि ॥

१ जलपूजा— शुद्धतीर्थोदकैर्नीरै-र्हेमकुम्भसुधारया । लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ १ ॥
ॐ आँ क्रौं ह्रीं महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं

सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, जलं गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

२ गन्धपूजा— सुगन्धगन्धमौलाद्यै-रष्टगन्धसमन्वितैः। लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ २ ॥

ॐ आँ क्रौँ ह्रीँ महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, गन्धं गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

३ अक्षतपूजा— अक्षतैरक्षतानन्तै-रर्चितैः कमलाक्षतैः। लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ ३ ॥

ॐ आँ क्रौँ ह्रीँ महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, अक्षतान् गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

४ पुष्पपूजा— नानाजातिबहुपुष्पैः, केतकी-दर्भसंयुतैः। लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ ४ ॥

ॐ आँ क्रौँ ह्रीँ महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, पुष्पाणि गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

५ नैवेद्यपूजा— नैवेद्यैर्बहुपक्वान्नैः, शर्करा-घृतसंयुतैः। लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ ५ ॥

ॐ आँ क्रौँ ह्रीँ महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, पुष्पाणि गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

६ दीपपूजा— रत्नदीपैर्महातेजै-रन्धकारनिवारणैः । लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ ६ ॥

ॐ आँ क्रौं ह्रीँ महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, दीपं गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

७ धूपपूजा— दशाङ्गधूपसौगन्ध्यै—र्दु:ख-दारिद्र्यनाशनैः । लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ ७ ॥

ॐ आँ क्रौं ह्रीँ महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, धूपं गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

८ फलपूजा— दाडिमैर्नारिकेलाद्यै-रखण्डलक्ष्मीदायकैः । लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ ८ ॥

ॐ आँ क्रौं ह्रीँ महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, फलानि गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

९ वस्त्रपूजा— नानाभूषणसंयुक्तै-श्चीरपट्टैर्मनोरमैः । लक्ष्मीपूजा हि सौख्याय, धर्मार्थकामसिद्धये ॥ ९ ॥

ॐ आँ क्रौं ह्रीँ महालक्ष्मि ! चन्द्रमुखे ! सौभाग्यदायिनि ! आकूटभाण्डागारभरपूरणि ! मम ऋद्धिं सिद्धिं सुखसंपत्तिं कुरु कुरु, वस्त्रं गृहाण गृहाण स्वाहा ॥

नीर-गन्धा-ऽक्षतैः पुष्पै—र्नैवेद्यैर्धूप-दीपकैः । फलैरर्घ्यं च अर्चामि, सर्वकार्यसुसिद्धये ॥ १ ॥

॥ २३ ॥

॥ अर्घ्यम् ॥

शान्तिः शान्तिकरः स्वामी, शान्तिधारां प्रवर्षति । सर्वलोकस्य शान्त्यर्थं, शान्तिधारां करोम्यहम् ॥ १ ॥
जाती-चम्पकमालाद्यै—र्मोगरैः पारिजातकैः । यजमानस्य सौख्यार्थं, सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ २ ॥

यह बोलकर अिष्टकी प्रार्थनाके लिये पुष्पांजलिका प्रक्षेप करें ।

॥ महा-प्रभावशाली मन्त्रो ॥

१ ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ऐँ अर्हँ, वं मं हं सं तं, वं वं, मं मं, हं हं, सं सं, तं तं, पं पं, डं डं, क्ष्वीँ क्ष्वीँ, क्ष्वीँ क्ष्वीँ, द्राँ द्राँ द्रीँ द्रीँ, द्रावय द्रावय । नमोऽर्हते भगवते श्रीमते, ॐ ह्रीँ क्रौँ, मम पापं खण्डय खण्डय, हन हन, दह दह, पच पच, पाचय पाचय, सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ॥

२ ॐ नमोऽर्हँ, डँ क्ष्वीँ क्ष्वीँ, हं सं डं वं, व्हः पः हः, क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षेँ क्षैँ क्षोँ क्षौँ क्षँ क्षः, ॐ ह्रूँ ह्राँ ह्रिँ ह्रीँ ह्रुँ ह्रूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रोँ ह्रौँ ह्रँ ह्रः, असिआउसाय नमः, मम पूजकस्य ऋद्धिं वृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ॥

३ ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते, ढः ढः ढः, मम श्रीरस्तु, वृद्धिरस्तु, तुष्टिरस्तु, पुष्टिरस्तु, शान्तिरस्तु, कान्ति-रस्तु, कल्याणमस्तु, मम कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वविघ्ननिवारणार्थं श्रीमद्भगवते सर्वोत्कृष्ट-त्रैलोक्यनाथा-ऽर्चितपादपद्मा-

छिन्धि छिन्धि। मारीकृतोपद्रवान् छिन्धि छिन्धि। डाकिनी-शाकिनी-भूत-भैरवादिकृतोपद्रवान् छिन्धि छिन्धि। सर्वभैरव-देव-दानव-वीर-नर-नारी-सिंह-योगिनीकृतविघ्नान् छिन्धि छिन्धि। भवनवासि-व्यन्तर-ज्योतिष-विमानवासिदेव-देवीकृतदोषान् छिन्धि छिन्धि। अग्निकुमारकृतविघ्नान् छिन्धि छिन्धि। उदधिकुमारकृतविघ्नान् छिन्धि छिन्धि। स्तनितकुमारकृतविघ्नान् छिन्धि छिन्धि। द्वीपकुमारभयानि छिन्धि छिन्धि। वातकुमार-मेघकुमारकृतविघ्नान् छिन्धि छिन्धि। इत्यादिदशदिक्पालदेवकृतविघ्नान् छिन्धि छिन्धि। जय-विजय-अपराजित-माणिभद्र-पूर्णभद्रादिक्षेत्रपालकृतविघ्नान् छिन्धि छिन्धि। राक्षस-वैताल-दैत्य-दानव-यक्षादिकृतदोषान् छिन्धि छिन्धि। नवग्रहकृतग्राम-नगरपीडां छिन्धि छिन्धि। सर्वाष्टकुलनागजनितविषभयानि छिन्धि छिन्धि। सर्वग्राम-नगर-देशरोगान् छिन्धि छिन्धि। सर्वस्थावर-जङ्गम-वृश्चिक-दृष्टिविषजातिसर्पादिकृतविषदोषान् छिन्धि छिन्धि। सर्वसिंहा-ऽष्टापद-व्याघ्र-व्याल-वनचरजीवभयानि छिन्धि छिन्धि। सर्वगो-परशत्रुकृतमारणो-च्चाटन-विद्वेषण-मोहन-वशीकरणादिदोषान् छिन्धि छिन्धि। सर्वदेश-पुरमारीं छिन्धि छिन्धि। सर्ववृषभादितिर्यङ्मारीं छिन्धि छिन्धि। सर्ववृक्ष-फल-पुष्प-लतामारीं छिन्धि छिन्धि॥

७ ॐ आँ क्रौं ह्रीँ श्रीँ वृषभादिवर्धमानचतुर्विंशति-तीर्थङ्करमहादेवाधिदेवाः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्। मम पापानि शाम्यन्तु, घोरोपसर्गाः सर्वविघ्नाः शाम्यन्तु। ॐ आँ क्रौं ह्रीं श्रीँ रोहिण्यादिमहादेव्यः अत्र आगच्छन्तु आगच्छन्तु, सर्वदेवताः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्॥

८ ॐ नमो भगवति चक्रेश्वरि! ज्वालामालिनि! पद्मावति देवि!, अस्मिन् जिनेन्द्रभवने आगच्छ आगच्छ,

एहि एहि, तिष्ठ तिष्ठ, बलिं गृहाण गृहाण। मम धन-धान्यसमृद्धिं कुरु कुरु, सर्वभव्यजीवानन्दं कुरु कुरु, सर्वदेश-ग्राम-पुरमध्ये क्षुद्रोपद्रव-सर्वदोष-मृत्युपीडाविनाशनं कुरु कुरु, सर्वपरचक्र-परचक्रभयनिवारण कुरु कुरु, सर्वदेश-ग्राम-पुरमध्ये सुभिक्ष कुरु कुरु, सर्वविघ्नशान्ति कुरु कुरु स्वाहा ॥

९ ॐ आँ क्रौं ह्रीं श्रीं चक्रेश्वरी-ज्वालामालिनी-पद्मावतीमहादेव्यः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्। ॐ आँ क्रौं ह्रीं श्रीं माणिभद्रादियक्षकुमारदेवा प्रीयन्ता प्रीयन्ताम्। सर्वजिनशासनरक्षकदेवा प्रीयन्ता प्रीयन्ताम्। श्रीआदित्य-सोम-मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-राहु-केतवः सर्वनवग्रहाः प्रीयन्ता प्रसीदन्तु। देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्ति भगवान् जिनेन्द्रः ॥

यत् सुखं त्रिषु लोकेषु, व्याधि-व्यसनवर्जितम्। अभयं क्षेममारोग्यं, भद्रमस्तु च मे सदा ॥ १ ॥
यदर्थं क्रियते कर्म, सप्रीति नित्यमुत्तमम्। शान्तिकं पौष्टिकं चैव, सर्वकार्येषु सिद्धिदम् ॥ २ ॥

॥ दीवाली-आराधनाकी विधि ॥

॥ गुणणा गिननेकी विधि ॥

दीवालीकी रात्रिमें रात्रि–जागरण करना। अुसी रात्रि–जागरणमें रातके नवसें दस बजे तक नीचे लिखा हुआ जाप २००० गिनें, अर्थात् बीस माला गिनें—

॥ “ श्रीमहावीरस्वामिसर्वज्ञाय नमः ” ॥

और प्रातःकाल चार बजे नीचे लिखा हुआ जाप २००० गिनें, अर्थात् बीस नवकारवाली गिनें—

॥ “ श्रीमहावीरस्वामिपारंगताय नमः ” ॥

और सूर्योदयके वक्त नीचे लिखा हुआ जाप २००० गिनें, अर्थात् बीस नवकारवाली गिनें—

॥ “ श्रीगौतमस्वामिकेवलज्ञानाय नमः ” ॥

प्रातःकालमें ठीक-ठीक दो घड़ी रात्रि अवशेष रहें तब श्री महावीर निर्वाण–महोत्सवके अुपलक्ष्यमें अच्छे-अच्छे स्वच्छ अेवं दिव्य वस्त्राभरणोंसें भूषित होकर, किसी पात्रमें मोदक लेकर श्री जिनमंदिरमें प्रवेश करें। दो घड़ी रात्रि अवशिष्टसें पहिले निर्वाणोत्सवका मोदक चढ़ाना यह सिद्धान्तसें विरुद्ध है, और अैसा करनेवाला फल-प्राप्तिके बदल दोषका भागी होता है। अर्थात् दो घड़ी रात्रि अशेष रहें तब ही किसी अच्छे पात्रमें मोदक लेकर, श्री जिनमंदिरमें प्रवेश करके, परमात्माके सन्मुख अुस मोदकको हाथमें ग्रहण करके, नीचे लिखी हुअी स्तुति पढ़कर, अुस मोदकको चढ़ावें—

श्रीदीपमालिका-स्तुतिः—

पापायां पुरि चारुपष्ठतपसा पर्यङ्कपर्यासनः, क्ष्मापालप्रमुहस्तिपालविपुलश्रीशल्कशालामनु ।
गोसे कार्तिकदर्श-नागकरणे तुर्यारकान्ते शुभे, स्वातौ यः शिवमाप पापरहित संस्तौमि वीरं जिनम् ॥ १ ॥
यद्गर्भागमनो-द्भव-व्रत-वरज्ञानाप्ति-भद्रक्षणे, संभूयाशु सुपर्वसंततिरहो चक्रे महस्तत्क्षणात् ।
श्रीमन्नाभिभवादिवीरचरमास्ते श्रीजिनाधीश्वराः, सद्यायाऽनघचेतसे विदधतां श्रेयांस्यनेनांसि च ॥ २ ॥
अर्थात् पूर्वमिदं जगाद जिनपः श्रीवर्धमानाभिधः, तत्पश्चाद् गणनायका विरचयाञ्चक्रुस्तरां सूत्रतः ।
श्रीमत्तीर्थसमर्थनैकसमये सम्यग्दृशां भूस्पृशां, भूयाद् भावुककारक प्रवचन चेतश्चमत्कारि यत् ॥ ३ ॥
श्रीतीर्थाधिपतीर्थभावनपरा सिद्धायिका देवता, चञ्चच्चक्रधरा सुरासुरनता पायादसौ सर्वदा ।
अर्हच्छ्रीजिनचन्द्रगीःसुमतितो भव्यात्मनः प्राणिनो, या चक्रेऽत्रमकुष्टहस्तिमथने शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४ ॥

अिस प्रकार श्री दीपमालिकाकी स्तुति पढ़कर श्री परमात्माको मोदक चढावें।

॥ दीवाली-आरती ॥

जय जय जय जगदीस जिनेसर, जगतारन राजा। धन धन कीरति तेरी, इन्द्र करत वाजा॥
तुम जग आधारा, आरती अमर उतारा, भव आरति टारा॥ जय जय जय जगदीस० ए देशी ॥ १ ॥

॥ २९ ॥

पटकायक प्रतिपालक, अनुकंपा धारी। निश्चय नय व्यवहारी, भविजन निस्तारी ॥ जय जय० ॥ २ ॥
मति श्रुत अवधि सहित तुम, अंबोदर आये। देवन मंगल गाये, पुष्पन बरसाये ॥ जय जय० ॥ ३ ॥
जन्म महोच्छव जाना, चौसठ इन्द्रोंनें। प्रभु-मूरति कर लीनी, मेरु पर वीनें ॥ जय जय० ॥ ४ ॥
क्षीरोदक हिम कलसें, जोजन सत-सतके। जिनतनु लघु चित्त धरके, कर धर सब तनके ॥ जय जय० ॥ ५ ॥
अंतरजामी जानां, सब सुर मन तनकी। पद नख मेरु कंपायो, भू सर जलधरकी ॥ जय जय० ॥ ६ ॥
घड़ड़ घड़ड़ घूम गिर घरके, सुरगण सवि कंपे। प्रभुकुत जाये खमाये, जय जय मुख जंपे ॥ जय जय० ॥ ७ ॥
अगम शक्ति जिन जानां, प्रफुलित जल ढारे। सुरभि वस्त्र सब भूषण, चमरु झपटारे ॥ जय जय० ॥ ८ ॥
थुंगी थुंगी धूनि धपम, पामा दल धोके, भेरन भलकारे। गुड़ड़ गुड़ड़ झांझ झटकारे, नवपद सुर भारे ॥ जय जय० ॥९॥
ता थेइ ता थेइ इम सुर नाचे, रिमझिम नूंपुरका। द्रुपद ताल सुर गावे, आनन्दकी बरखा ॥ जय जय० ॥१०॥
या विधि सब जिन इन्द्रन सेवें, जगनायक जानां। अमृत उदय धन धन जिन नरभन, जिम घट पर वानां ॥ जय जय० ॥११॥

॥ दीपमालिका-श्री महावीरस्वामीका चैत्यवन्दन ॥

जय जय श्री जिन वर्धमान, सोवन सम काय; सिंह लंछन सिद्धार्थराय-त्रिशला सुत भाय ॥ १ ॥
बरस बहुत्तर आउ देह, कर सत्त प्रमाण। ऋषभादिक सम जास वंस, अिक्ष्वाग सम जान ॥ २ ॥
छट्ठ भत्त संजम लियोरा, कुंडलग्राम सुरठाम। गणधर अिग्यारे सहित, आपो शिवपुर स्याम ॥ ३ ॥
चौदह सहस मुनि स्वामि-सीस छत्तीस सहस्स। श्रमणी श्रावक ओक लाख, गुणसट्ठ सहस्स ॥ ४ ॥

तीन लाख श्राविका वली, अधिक सहस्स अढार। सुर मातग सिद्धायिका, नित सानिध्यकार ॥ ५ ॥
अेकाकी पावापुरीअे, छट्ठभक्त सुजाण। प्रभु पहोता अमृतपदे, करो सघ कल्याण ॥ ६ ॥

अिस प्रकार चैत्यवदन पढकर " ज किंचि नाम तित्थ०, नमुत्थुण०, जावति चेइआइ०, जावत केवि साहू०, नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य " पर्यन्त समस्त पाठ पढकर नीचे लिखा हुआ दीपमालिकाका स्तवन पढें—

॥ दीपमालिका-श्रीमहावीरस्वामीका स्तवन ॥

मारग देशक मोक्षनो रे, केवलज्ञान निधान। भावदया सागर प्रभु रे, पर अुपगारी प्रधानो रे, वीरप्रभु सिद्ध थया ॥१॥
सघ सकल आधारो रे, हवे अिण भरतमा। कोण करशे उपगारो रे, वीर प्रभु सिद्ध थया ॥ २ ॥
नाथ विहूणो सैन्य ज्यु रे, वीर विहूणो रे सघ। साधे कुण आधारथी रे, परमानद अभगो रे, वीर प्रभु० ॥ ३ ॥
मात विहूणो बाल ज्यु रे, अरहो परहो अथडाय। वीर विहूणा जीवडा रे, आकुल व्याकुल थाय रे, वीर प्रभु० ॥ ४ ॥
सशय छेदक वीरनो रे, विरह ते केम खमाय?। जे दीठे सुख उपजे रे, ते विण केम रहेवाय रे, वीर प्रभु० ॥ ५ ॥
निर्यामक भवसमुद्रनो रे, भव अटवी सत्थवाह। ते परमेश्वर विण मिल्या रे, किम वाधे अुत्साहो रे, वीर प्रभु० ॥ ६ ॥
वीर थका पण श्रुत तणो र, हुतो परम आधार। हवे अिहा श्रुत आधार छे रे, अहो जिनमुद्रा सारो रे, वीर प्रभु० ॥ ७ ॥
अिण काले सवि जीवने रे, आगमथी आनद। सेवो ध्यावो भविजना रे, जिनपडिमा सुखकदो रे, वीर प्रभु० ॥ ८ ॥
गणधर आचारज मुनि रे, सहुने अेणी पेरे सिद्धि। भव भव आगम सगथी रे, देवचद्र पद लीध रे, वीर प्रभु० ॥ ९ ॥

॥ ३१ ॥

अिस प्रकार स्तवन पढ़नेके अनंतर "जय वीअराय०, अरिहंत चेइआणं० अन्नत्थ ऊससिएणं०" यावत् "अप्पाणं वोसिरामि" पर्यन्त पढ़कर अेक नवकारका काउस्सग्ग करें। काउस्सग्ग पूर्ण होने पर "नमो अरिहंताणं" बोलकर ".नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः" बोलकर नीचे लिखी हुअी स्तुति पढ़ें—

॥ दीपमालिका—श्रीमहावीरस्वामीकी स्तुति—थुई ॥

सिद्धारथ ताता, जगत विख्याता, त्रिशलादेवी माय; तिहां जगगुरु जनम्या, सब दुःख विरम्या, महावीर जिनराय।
प्रभु लेअी दीक्षा, कर हितशिक्षा, देअी संवच्छरी दान; बहु करम खपेवा, शिवसुख लेवा, कीधो तप शुभ ध्यान ॥ १ ॥
वर केवल पामी, अंतरजामी, वदि काती शुभ दीस; अमावस जातें, पीछली रातें, मुगति गया जगदीश।
वली गौतम गणधर, मोटा मुनिवर, पाम्या पंचम ज्ञान; थया तत्त्व प्रकाशी, शील विलासी पहुता मुक्ति निदान ॥ २ ॥
सुरपति संचरिया, रतन अुधरिया, रात थअी तिहां काली; जन दीवा कीधा, कारज सीध्यां, निशा थअी अजुयाली।
संघलोके हरखी, निज रे निरखी, परव कियो दीवाली; वली भोजन भगतें, निज निज सगतें, जीमे सेव सुहाली ॥ ३ ॥
सिद्धायिका देवी, विघन हरेवी, वांछित दे निरधारी; करे संघने शाता, जिम जग माता, अेवी शक्ति अपारी।
जिनगुण अिम गावे, शिवसुख पावे, सुणजो भविजन प्राणी; जिनचन्द्र यतीश्वर, महा मुनीश्वर, जंपे अेहवी वाणी ॥ ४ ॥

॥ इति दीवाली—आराधना विधि ॥

॥ ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नम ॥ ॥ सकलसमीहितपूरक–श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ अनन्तलब्धिनिधानाय गुरु–श्रीगोतमस्वामिने नम ॥ ॥ ऐं नम ॥

आचार्यनय श्रीमद्–वर्धमानसूरीश्वर प्रणीत आचार दिनकरसें, और मुनि श्री शान्तिविजयजीकृत जैन सस्कार विधिसें उद्धृत—

॥ श्राद्धसंस्कार-कुमुदेन्दुः, पूर्वार्द्धम् ॥

हिन्दी अनुवाद ओर विवेचन सह

श्रावकके सोलह सस्कारोमेंसें आदिके-चौदह सस्कार, और जैन शारदा पूजन विधि ॥

प्रकाशिका—
साकरबेन जैन, कच्छ–मोटी रायणवाला.
ठि किंग सर्कल, प्लोट न ३३
सहस्र सदन, मुबई नं. १९, माटुंगा.

सपादक—
सलोत अमृतलाल अमरचद
पालीताणा. (सोराष्ट्र)

॥ श्री श्राद्धसस्कार-कुमुदेन्दुकी प्रस्तावना ॥

मनुष्य-जीवनका परम और चरम उद्देश मोक्ष है। वह अेक ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है-पुरुषकी अिच्छाका विषय है। मनुष्या उसे चाहते है। धर्म अर्थ और काम, ये भी पुरुषकी अिच्छाके विषय है, अर्थात् पुरुषार्थ ह। अिनमे कामसें अर्थ, अर्थसें धर्म, और धर्मसें मोक्ष, अिस प्रकार अुत्तरोत्तर अेकसे अेक श्रेष्ठतर हैं। अिनमे परम पुरुषार्थ मोक्ष है, अथ और काम जघन्य है। अिन चारो पुरुषार्थकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्यकी सारी प्रवृत्तियाँ है। अिन प्रवृत्तियाँसे ही सारा मानव-जीवन भरा हुआ है। अिन् प्रवृत्तियाँमेसे ही सारे शास्त्रोंका और सोश्यालिझ्म काम्युनिझ्म अित्यादि नवीन वादोका आविष्कार हुआ है। अिनमे भी नवीन वादोका आविष्कार तो सिर्फ अर्थकी (द्रव्यकी) बुनियादी पर हुआ है, क्यों कि अिन वादोमे केवल अर्थको ही प्राधान्य दिया गया है। लेकिन केवल अर्थ ही मानव-जीवनका अुद्देश्य नहीं हो सकता, अिस विषयमे प्राय सभी प्राचीन और अर्वाचीन पडितो व साक्षरोका अेकमत है। अिस लिये ही ससारकी जटिल प्रवृत्तियोंमे बधे हुअे मनुष्योंने केवल द्रव्यार्जनमे ही आसक्त होकर रहना, या कामके दास बनकर विषयोपभोगके किचड़मे फँसकर रहना, यह मानव-जीवनकी अुन्नतिके लिये नहीं, बल्कि अध पातके लिये ही है, अिसमे तिलमात्र सदेह नहीं है। क्यो कि, केवल कामकी प्रवृत्तियोंमे फँसे हुअे आदमी पशुके समान है। कहा है कि—

“ आहार-निद्रा-भय-मैथुन च, समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्। ”

अर्थात्—खाना-पीना, सोना, डरना, और मैथुन करना, ये सभी क्रियाअे पशुओमे भी है। अुनके लिये ही द्रव्यार्जन करना, यह केवल अिन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये ही है—विषयोपभोग अिन्द्रियोंकी तृप्तिका ही कारण है। लेकिन—

॥ १ ॥

“ न जातु कामः कामाना-मुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवाऽभिवर्धते ॥ १ ॥ ”

अर्थात्—विषयोंके अुपभोगसें कामकी शान्ति कभी नहीं होती है. बल्कि घीसें अग्निको बुझाने जावें तो वह जिस तरह बूझती नहीं, परं ज्यादह भड़कती है; अुसी तरह विषयोंके अुपभोगसें कामाग्नि शांत नहीं होती, परं ज्यादह भड़कती है। अिस लिये मनुष्य-जन्म जैसा दुर्लभ जन्म पाकर सिर्फ अिन्द्रियोंकी क्षणिक तृप्तिके लिये यत्न करना, मनुष्यको पशु बनना है; क्यों कि मनुष्य-जन्मकी प्राप्ति बड़े पुण्यके योगसे होती है। कहा है कि—

“ मानुष्यमार्यदेशश्च, जातिः सर्वाक्षपाटवम् । आयुश्च प्राप्यते तत्र, कथञ्चित् कर्मलाघवात् ॥ १ ॥ ”

अर्थात्—“ मनुष्यका जन्म, आर्य देश, अुत्तम जाति-अुत्तम कुल, सभी अिन्द्रियोंमें सम्पूर्णता व पटुता, और दीर्घ आयुष्य; ये सब अत्यंत कष्टसें और कर्मोंकी लघुतासे प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ ” मनुष्यदेह महापुण्यकी किंमत देकर खरीदा हुआ अचिन्त्य चिन्तामणि है। अुसका अुद्देश सिर्फ अिन्द्रियोंकी तृप्ति करना, अुसके लिये ही द्रव्यार्जन करना, यह नहीं हो सकता। यदि अैसा होता तो अपने समाज, अपने राष्ट्र, और अपने धर्मके लिये प्राणोंका बलिदान करनेवाले महात्माओं और शूर पुरुषोंका दर्शन भी असंभवित हो जाता। लेकिन अपने समाज, अपने राष्ट्र, और अपने धर्मके लिये प्राणोंको न्योछावर कर देनेवाले शूर-वीरोंका हमारा अितिहास सुप्रसिद्ध है। वह हमारे सामने प्रभु श्री महावीर जैसे सच्चे वीरोंका आदर्श रखता है। क्यों कि—

“ न ते वीरतमाः पुरुषा मता, ये जयन्ति साऽश्व-रथ-द्विपानरीन् । ”

अर्थात्—हाथी घोड़े और रथसे युक्त अैसे शत्रुओंको जीतनेवाले खरा वीर नहीं है, मगर काम क्रोध लोभ और माया

वगेरा अभ्यन्तर शत्रुओको ही जीतनेवाले सच्चे-सच्चे वीर है। तात्पर्य कि—पौद्गलिक पदार्थोका उत्कर्ष मानव-जीवनकी उन्नति नहीं कर सकता, मानव-जीवनमे शान्ति नहीं ला सकता।

आजके वैज्ञानिक युगमे हजारो शस्त्र वनाये गये, वनाये जा रहे है, और वनाये जायेगे। अणुबॉम्ब और हाइड्रोजन बॉम्ब जैसे महा भयकर और विध्वसक अस्त्रोकी खोज की गयी, और उनसे भी अधिक विध्वसक अस्त्रोंकी खोज चल रही है। सब देश उनके जरिये विश्वमे शान्ति करना चाहते हैं, मगर शान्ति नहीं मिलती, यह हम देख रहे हैं, क्यों कि, शान्तिका यह सच्चा उपाय नहीं है। शान्तिके लिये हमे हमारे मनको निर्मल-पवित्र बनाकर अध्यात्म मार्गका सहारा लेना पड़ेगा, उसके विना हम शान्तिको नहीं पा सकते। प्राय बहुत लोग ऐसा समझते है कि—पौद्गलिक पदार्थोंकी (पुष्प, चन्दन, वनिता आदिकी) अनुकूलतासें मिलनेवाला समाधान यही शान्ति है, मगर वह शान्ति सत्यरूपसे शान्ति नहीं है, क्यों कि—वह पौद्गलिक-पदार्थोकी अनुकूलतासे पैदा हुई है। उस अनुकूलताके हट जाने पर दु खाग्नि उस शान्तिको भस्मसात् कर देती है, ऐसी शान्ति हमारे जीवनका लक्ष्य नहीं वन सकती। परन्तु जिन कर्मोंसे हम पौद्गलिकभावोंमे फसकर सुख और दुःखके झूले पर ऊपर-नीचे झूल रहे है, उन कर्मोका ही—दु ख और दुर्बोधके कारणोंका ही ज्ञानरूप तलवारसें छेद करके मिलनेवाली परम और शाश्वत शान्ति हमारे जीवनका परम उद्देश है, उसको ही शास्त्रकारोंने 'मोक्ष' इस नामसें शास्त्रमे निर्दिष्ट किया है। उसको लक्ष्यमे रखकर उसकी-मोक्षकी प्राप्तिके लिये, अर्थात् दु ख और दुर्बोधके नाशके लिये नाना प्रकारके धर्मकृत्योका अनुष्ठान करना चाहिये। शास्त्रज्ञोने धर्मका स्वरूप कहा है कि—

"दुर्गतिप्रपतत्प्राणि-धारणाद्धर्म उच्यते।"

"जो दुर्गतिमे पड़ते हुए प्राणिको धारण करता है, दुर्गतिमे पडनेसें उसको वचा लेता है, और अच्छी गति मिला

॥ ३ ॥

जो प्रतिकूल है, और दुर्गतिमें लेजानेवाला है वही अधर्म है। धर्म जगत्का आधार-
देता है, उसको धर्म कहते है"। जो प्रतिकूल है, और दुर्गतिमें लेजानेवाला है वही अधर्म है। अर्थात् कर्तव्यरूप धर्मकी
स्तम्भ है; धर्म जगत्का आलम्बन, प्रतिष्ठा और प्राण है। धर्म कर्तव्य है, अधर्म त्याज्य है। अत अेव अिसमें जीवन-निर्वाहके योग्य
साधना, बुद्धि मन और अिन्द्रियोंके सम्यक् शास्त्रीय व्यवहारसे ही होती है। अत अेव अिसमें जीवन-निर्वाहके योग्य
कार्योंकी अुपेक्षा नहीं, वलिक जीवनको अुदात्त बनानेवाले कर्तव्य कर्मोंका आदेश है; मन और अिन्द्रियोंकी स्वाभाविक प्रवृ-
त्तियोंकी अुपेक्षा नहीं। अिसका मतलव यह नहीं है कि—हम हमारी बुद्धि और मनके अनुसार चलें, हमारी अिन्द्रियोंके
तन्त्रसें चलें, कर्तव्य और अकर्तव्यका निर्णय हम हमारी बुद्धिसे करें। यहां यह ख्यालमें रखनेका है कि—आचारोंके विप-
यमें बुद्धि-स्वातन्त्र्य नास्तिकता है, आगम-आधीन बुद्धि-स्वातन्त्र्य ही आस्तिकता है। धर्मशास्त्रमें शास्त्र-निरपेक्ष बुद्धि-स्वात-
न्त्र्यमें पाप माना है; कारण कि, अल्पज्ञ-अज्ञानी जीवोंकी बुद्धि कर्तव्याकर्तव्यका निर्णय करनेमें विलकुल ही असमर्थ है।
अतः आगमका सहारा लेकर, बुद्धिसे विचार करके, मनकी और अिन्द्रियोंकी प्रवृत्तियाँको मोक्षोपयोगी बनाकर ही मुक्तिपथ
पर आरूढ होना आवश्यक है। अिस लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, अिस प्रकार चतुर्विध पुरुषार्थ है। अिनमें मोक्षके
अनुकूल धर्म, धर्म-सम्मत अर्थ, और अर्थ-सम्मत ही कामोपभोग होना चाहिये। कहा है कि—

" धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या, यो ह्येकसक्तः स नरो जघन्यः "।

अर्थात्—" धर्म, अर्थ और कामोपभोगका परस्पर अविरोधसे सेवन करना चाहिये; जो अेकमें ही आसक्त होता है वह
मनुष्य जघन्य है"। अिस लिये ही अर्थ और कामका सेवन धर्मानुकूल होना चाहिये। अर्थात्—धर्मानुकूल (धर्म-सम्मत)
अर्थ और काम वही होगा जो मोक्षके अनुकूल हो; और वह अपने साथ ही सारे परिवार, समाज राष्ट्र और विश्व,
किसीका भी परिणाममें अहित करनेवाला न होकर सबका हित करनेवाला हो। अिसी दृष्टिसें वर्णाश्रमका निर्माण, और

प्रत्येक व्यक्तिके लिये शास्त्रोंमे तदनुकूल कर्तव्य-कर्मोंका आदेश है। अुसका अुद्देश अेकमात्र अुपर लिख चूके है कि—चिन्तामणि सदृश मनुष्य-देहकी सार्थकताके लिये अपनी सारी प्रवृत्तियाँ, मनुष्य-जीवनका परम-ध्येयरूप जो मोक्ष, अुसकी प्राप्तिमे लगा देना। समस्त दुःख-क्लेश देनेवाले कर्मोंका छेद करके, परम-शान्ति, परमानन्द और शुद्ध-निर्मल ज्ञान प्राप्त करना, यही मोक्ष है।

मोक्षके लिये यही साधन है कि—सर्वज्ञ-प्रणीत आगममे कहे हुअे नियमोंसें अभ्यन्तर और बाह्य जीवनका सम्यक् प्रकारसें नियन्त्रण और नियोजन करते हुअे श्रद्धा और निष्ठापूर्वक स्वधर्मका अनुष्ठान करना। अुस अनुष्ठानके लिये संस्कारादि विधिद्वारा अुसके योग्य अधिकारकी प्राप्ति कर लेनी चाहिये। कारण कि, असंस्कृत मनुष्य धर्मानुष्ठानमे अधिकारी नहीं बन सकता—वह धर्मानुष्ठानके लिये योग्य नहीं हो सकता। क्यों कि, " आचार प्रथमो धर्म "—आचार यह प्रथम धर्म है, वह धर्मका प्राण है। परमात्मा श्री आदिनाथ भगवान् अनादि तत्त्वोंको जाननेवाले, खुद ज्ञानस्वरूप, और मोक्षको देने वाले थे, तो भी अुन्होंने आचारका आचरण किया था, और लोगोंको भी आचार बतलाया था। सत्यज्ञानसें ही मोक्षमार्गका प्रकाश होता है, और वह सत्यज्ञान आचारवत (आचारोंसें युक्त) मनुष्योंको ही विशेषरूपसें प्राप्त होता है। अिस लिये ज्ञानस्वरूप श्री आदिनाथ भगवतने गर्भावाससे लेकर जिन जिन आचारोंकी साधना की है, वे ही आचार प्रमाणभूत हैं। अुन आचारोंको प्रमाणभूत मानकर श्रावकोंने अपने अपने आचारोंको (कर्तव्य-कर्मोंको) अच्छी तरह समझकर संस्कार आदि विधि करानी चाहिये, और धर्माधिष्ठानके लिये योग्य अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिये। धर्माधिष्ठान यह मोक्ष-मन्दिरमे प्रवेश करनेके लिये अेक पगथीये समान है। अत अेव अपने जीवनको निर्मल, पवित्र और अुज्ज्वल बनानेके लिये अपने-अपने आचारोंको समझकर संस्कार आदि विधिद्वारा धर्माधिष्ठानके योग्य अधिकारको प्राप्त कर लेना श्रावकोंका कर्तव्य

॥ ५ ॥

है। योग्य अधिकारको प्राप्त करके ही धर्मोधिष्ठानसें दुःख और दुर्बोधादिके कारण आठों कर्मका छेद करके परम शान्तिरूप मोक्षको प्राप्त कर लेना चाहिये, जो मानव-जीवनका परम और चरम उद्देश्य है।

मध्यकालमें पाश्चिमात्य शिक्षाके प्रभावसें प्रभावित जैन-समाजमें शास्त्रोक्त संस्कार आदिका प्रचार बहुत कम हो गया है, जिससे "जैन शास्त्रमें श्रावकोंके गर्भाधानसे लेकर अन्त्यविधि तक सोलह संस्कारोंका विधान ही नहीं है" अैसा प्रायः सभी श्रावक समझने लगे हैं। यह मान्यता खुद श्रावकोंकी और अपने समाज और धर्म सबकी घातक है। यह देखकर प्राचीन कालसें प्रचलित जैन विधिसें संस्कारोंको बतलाना; अुन संस्कारोंका महत्त्व-अुनके मन्त्रादिमें भरा हुआ मनको निर्मल और प्रसन्न बनानेवाला, और आत्माकी अुन्नति करनेवाला अर्थ श्रावकोंके सामने रखना, और अुन श्रावकोंको फिरसें अपने पूर्वजोंका आध्यात्मिक वैभव प्राप्त करा देना; अिस अुद्देशको सामने रखकर श्राद्धसंस्कार कुमुदेन्दु नामक अिस ग्रन्थकी रचना की गअी है। ग्रन्थके नाम परसें ही ग्रन्थका विषय वाचकोंके ध्यानमें आ सकता है। चन्द्रमा जिस तरह कुमुदोंका विकास करता है, अुसी तरह श्राद्धोंके-श्रावकोंके संस्कारका विकास करना, अुनमें भरे हुअे अर्थको स्पष्ट करना, यही अिस ग्रन्थका विषय है; जिसके द्वारा फिरसें लुप्त संस्कारोंको अमलमें लानेमें श्रावकोंकी प्रवृत्ति हो जाये। श्री वर्धमानसूरि आचार्य महोदयने "आचार दिनकर" नामक ग्रन्थ रचा हुआ है, जो कि जैनोंमें प्रमाणभूत ग्रन्थ माना जाता है। अुसके ही सोलह संस्काररूप सोलह अुदयोंका यह हिन्दी भाषान्तर है। भाषान्तर करनेका मुख्य अुद्देश संस्कृत और प्राकृत भाषाको न जाननेवालोंको भी अुसमें भरे हुअे गंभीर और महत्त्वपूर्ण अर्थका बोध हो जाये, और अपने संस्कारोंकी महत्ता अुनके मनमें ठँस जायँ। अिस ग्रन्थमें सिर्फ भाषान्तर ही है अैसा नहीं, बल्कि स्थान-स्थान पर प्रायः हरअेक संस्कारमें विशद टिप्पणियाँ देकर संस्कारकी विशेषता दिखलानेका प्रयत्न किया गया है।

तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान्को नमस्कार हो कि—जिनकी बदौलत अिस सुखमय समयचक्रमे धर्म बढा, और मुक्तिका रास्ता हासिल हुआ। जैनोंमे सस्कारका होना कदीमर्से चला आया है। जीतने तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, छत्रपति, और राजे-महाराजे हुअे, सस्कारोंकी फख्र करते चले आये हैं। सब जैनोंकी फर्ज है कि—दूसरे मजहबवालोंके शास्त्रसें जो सस्कार करवाये जाते हैं, अुनको मौकुफ करके जैनशास्त्रोंके मुताबिक कारवाअी जारी रक्खें, जैसे कि पेस्तर भी होती थी। मानवधर्म सहिता और जैनसस्कार विधि, जो पेस्तर छपकर जाहिर हो चूकी है, अुनसे भी सस्कारोंका हाल आमलोगोंको रोशन हो गया है। कअी जगह जैनशास्त्रोंके मुताबिक सस्कारोंका होना जारी भी हो गया है, और श्राद्ध-सस्कार कुमुदेन्दु ग्रन्थके जाहिर होनेसें अुम्मीद रखते है कि, आमजैनोंमि भी जारी हो जायगा।

दुनिया दुरगी है, कभी अेकरगी न हुअी न होगी। कोअी किसी ग्रन्थको छपाकर जाहिर करें, पाँच अुसे अच्छा कहेंगे, तो दो शख्स बुरा कहनेवाले भी मिल जायगे। देख लो! अभव्य जीवोंने तीर्थंकरोंको अच्छे नहीं कहे, तो क्या अुनके कहनेसे तीर्थंकर बुरे हो गये? हर्गिज नहीं। जो अच्छे है हमेशा अच्छे ही रहेंगे। पेस्तर भी यह बात गुजर चुकी है कि, ज्ञानियोंने कितनी ही जिल्लत और परेशानी अुठाअी, मगर अज्ञानियोंने हर्गिज कबुल नहीं किया। अुनकी अकलके दर्मियान वे कमअकल नहीं, बल्कि आलादर्जेके कामिल है। अिसीसे कहा जाता है कि ग्रन्थकर्ता किसीका खौफ-खतर न रखकर सच बातको जाहिर करे, कमअकलोंके कहने पर खयाल न करें। चाहे कोअी भला कहे या बुरा, ग्रन्थकर्ताको तीर्थंकरोंके हुक्म पर खयाल रखना चाहिये। जो शख्स दुनियाके कहने पर रह जायगा, अुससे कुच्छ काम न होगा। अिस लिये कलमके बहादूर बनों, और अिस बातका हरवख्त खयाल रखो कि, कोअी बात खिलाफ हुक्म तीर्थंकरके न लिखी जायँ।

॥ ७ ॥

संस्कार-विधि करानेवाला कैसा होना चाहिये ?

संस्कार-विधि करानेवाला कुलगुरु अैसा होना चाहिये जो धर्मभ्रष्ट और वदचलन न हो। अपने शहरमें अैसा कुलगुरु हाजिर न हो तो पढ़ा-लिखा होशियार श्रावक अिस कामको करा सकता है। यह कोअी ठेका नहीं कि कुलगुरु विदून काम ही न चलें। अगर श्रावक भी अैसा न मिलें तो पंडितलोग, जो विवाह वगेरा संस्कार करानेके लिये मौजुद रहते हैं, अुन्हीको वुलाकर कह दिया जाय कि—अिस कितावमें जिस मुताविक जैनशास्त्रके मन्त्र दर्ज है अुन्हांको पढ़कर संस्कारोंकी कारवाअी कर दिया करो; फौरन अुस मुआफिक संस्कारोंका होना वन सकेगा।

सोलह संस्कारोंमें व्रतारोप-संस्कारको छोडकर कुल पन्द्रह संस्कार कुलगुरु, जानकार श्रावक, या कोअी भी पंडित हो; करा सकते है। व्रतारोप-संस्कार कराना मुनिजनोंका काम है, सो दीक्षा वगेरा व्रत-नियम मुनिलोग कराते ही है। संस्कार करानेवाले कुलगुरु वगेराको खयाल रखना कि—जितने मन्त्र सोलह संस्कारोंमें लिखे है, अुन सव मन्त्रोंको संस्कार कराते वख्त खुल्ले आवाजसें पढ़ें, जिससे सव लोग-जो वहीं पर वैठे हो अुनके कान तक आवाज पहुंच सकें। अैसा न करें कि, दिलमें ही गुन-गुन करता रहें।

श्री जैन वेदमन्त्र संवन्धी खुलासा

अिस ग्रन्थमें प्रत्येक संस्कारमें जो आर्यवेदमन्त्र यानि जैनवेदमन्त्र लिखे हैं, वे प्राचीन ही है; अर्वाचीन नहीं। वस्तुतः पेस्तरके वाह्मणों जैनधर्मी थे। वे धार्मिक क्रियाकांड करनेवाले, त्यागी, दयालु और निःस्पृही थे। मगर कालके प्रभावसे वे शिथिलाचारी, लोभी, और मांसादिमें आसक्त होने लगे। जिससे अुन्होंने अपने भ्रष्टाचारकी पुष्टिके लिये असली वेदोंमें

हिंसादि पापयुक्त क्रियाकाण्डका प्रक्षेप किया, और अपनेको बाधा न पहुँचे अिस लिये सद्गति देनेवाले कतिपय पारमार्थिक तत्त्वोंको अुनमेंसे निकाल दिये, जिससे अभी जो वेद प्रचलित हैं वे अर्वाचीन हैं। आचार्य श्री वर्धमान सूरीश्वरजीने अपने आचार-दिनकर ग्रन्थमें कहा है कि—

इह यदुक्तं जैनवेदमन्त्रा इति, तत्प्रतिपाद्यते—यदा आदिदेवतनून आदिमश्चक्री भरतो धृताऽवधिज्ञानः श्रीमद्युगादिजिनरहस्योपदेशप्राप्तसम्यक्श्रुतज्ञानः सांसारिकव्यवहारसंस्कारस्थितये अर्हन्निदेशमाप्य माहनान् धृतज्ञान-दर्शन-चारित्ररत्नत्रय-करण कारणाऽनुमतित्रिगुणत्रिसूत्रमुद्राङ्कितवक्षःस्थलान् पूज्यान् अकल्पयत्, तदा च निजवैक्रियलब्ध्या चतुर्मुखीभूय वेदचतुष्कमुच्चचार। तद् यथा—संस्कारदर्शन १ संस्थानपरामर्शन २ तत्त्वावबोध ३ विद्याप्रबोध ४ इति चतुरो वेदान् सर्वनयवस्तुप्रकीर्तकान् माहनानपाठयत्। ततश्च ते माहना. सप्ततीर्थङ्करतीर्थं यावद् धृतसम्यक्त्वा आर्हतानां व्यवहारोपदेशेन धर्मोपदेशादि वितेनुः। ततश्च तीर्थे व्यवच्छिन्ने तत्रान्तरे ते माहनाः प्राप्तप्रतिग्रहलोभास्तान् वेदान् हिंसाप्ररूपण-साधुनिन्दनगर्भतया ऋग्-यजुः-सामा-ऽथर्वनामकल्पनया मिथ्यादृष्टिता निन्युः। ततश्च साधुभिर्व्यवहारपाठपराङ्मुखैस्तान् वेदान् विहाय जिनप्रणीत आगम एव प्रमाणतां नीतः। तेष्वपि ये माहनाः सम्यक्त्वं न तत्यजुस्तेषां मुखेष्वद्यापि भरतप्रणीतवेदलेशः कर्मान्तरव्यवहारगत श्रूयते। स चाऽत्रोच्यते। यत उक्तमागमे—

" सिरिभरहचक्कवट्टी, आरियवेआण विस्सुओ कत्ता। माहणपढणत्थमिणं, कहिअ सुहज्झाणववहारं ॥ १ ॥

जिणतित्थे वुच्छिन्ने, मिच्छत्ते माहणेहिं ते ठविआ। असंजयाण पूआ, अप्पाणं कारिआ तेहिं ॥ २ ॥ "

भावार्थ—श्री आदीश्वर भगवान्‌का भरत नामका पुत्र प्रथम चक्रवर्ती और अवधिज्ञानी हुआ। श्रीमान् युगादि जिनेश्वरके रहस्यमय सदुपदेशको सुनकर अुन्होंने सम्यक् श्रुतज्ञानको प्राप्त किया था। ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप तीन रत्नोंको करना कराना और अनुमति देना; अिस प्रकार तीन करण युक्त तीन गुणकी द्योतक तीन सूत्रवाली अुपवीत–जनोओीमुद्राको धारण करनेवाले अैसे माहनोंको (ब्राह्मणोंको) सांसारिक व्यवहार–संस्कारकी स्थितिके लिये भरत चक्रवर्तीने श्री अरिहंत परमात्माकी आज्ञा पाकर पूज्य माना। अर्थात् अुस समय ब्राह्मणों (माहनों) अपने वक्षःस्थल पर जिनोपवीतमुद्राको धारण करते थे। जिनोपवीतमुद्रा श्री जिनेश्वर भगवान्‌की मुद्रा है। वह ज्ञान दर्शन और चारित्ररूप तीन रत्नोंको करना कराना और अनुमति देना, अिस प्रकार तीन करणोंसे तीन गुण धारण करनेकी द्योतक है। अिस लिये श्री भरत चक्रवर्तीने सांसारिक व्यवहार–संस्कारकी स्थितिके लिये श्री अरिहंत परमात्माकी आज्ञा पाकर अैसे जिनोपवीत धारण करनेवाले माहनोंको पूज्य माना, और श्री भरत चक्रवर्तीने अपनी वैक्रिय लब्धिसें चार मुखवाला बनकर चार वेदका अुच्चार किया। सो अिस प्रकार—संस्कार–दर्शन १, संस्थान–परामर्शन २, तत्त्वावबोध ३, और विद्याप्रबोध ४। अिस प्रकार सब नयवस्तुओंको विशद रीतिसें कथन करनेवाले ये चारों वेद अुन्होंने माहनोंको पढ़ाये। अुसके बाद वे माहनों सात तीर्थंकरोंके तीर्थ तक सम्यक्त्वधारी रहें, और वे आर्हत–श्रावकोंको व्यवहारिक अुपदेशसें धर्मोपदेशादि करते रहें। मगर अुसके बाद तीर्थका व्यवच्छेद होने पर वे माहनों कालबलसे परिग्रहके लोभी बन गयें। अुन्होंने प्राचीन वेदोंके नाम पलटकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद; अिस प्रकार कल्पित नामवाले चार वेदकी प्रसिद्धि की; और अपनी स्वच्छंदतासें अुनमें हिंसासे भरे हुअे यज्ञादिका निरूपण, साधु–महात्माओंकी निन्दा, और देव–देवियाँकी स्तुति; वगेरा स्वमति कल्पित पाठ डालकर प्राचीन वेदोंको मिथ्यादृष्टि बना दिये। अुसके बाद व्यवहार पाठसे पराङ्मुख अैसे साधु–मुनिराजोंने अुन वेदोंका त्याग करके वीतराग श्री जिनेश्वर परमात्माने प्ररूपणा किये हुअे आगमोंको ही प्रमाणभूत माना। अर्थात् परमार्थसें रहित, स्वमति कल्पित, और हिंसादि पापयुक्त

यज्ञादि कर्मकांडवाले अैसे मिथ्यात्वी अुन वेदोंको छोड़कर मोक्षके अभिलाषी वैरागी साधु-मुनिराजोंने श्री तीर्थंकर परमात्मा प्ररूपित अैसे आगमोंको ही प्रमाणभूत माना। अुन माहनोंमे भी जिन माहनोंने सम्यक्त्वका त्याग नहीं किया, अर्थात् तीर्थंकरादिके अुपदेशसे जो माहनों सम्यक्त्वमे दृढ रहें, अुनके मुखसें श्री भरत चक्रवर्तीने बनाये हुअे वेदोंका कुच्छ लेश अब भी कर्मकांडके व्यवहारमे सुना जाता है। अुस वेदके लेशमेंसे ही यहा-अिस ग्रन्थमे प्रत्येक संस्कारमे जैनवेदमन्त्र यानि आर्यवेदमन्त्र कहे हैं। आगममे कहा है कि—

"श्री भरत चक्रवर्ती आर्यवेदोंका कर्ता प्रसिद्ध है। शुभ-ध्यान ओर जगत्के व्यवहारके लिये भरत महाराजाने माहनों-ब्राह्मणोंको पढ़नेके लिये ये चार वेद कहे थे ॥ १ ॥ मगर श्री जिनेश्वर-तीर्थंकरके तीर्थका व्यवच्छेद होने पर ब्राह्मणोंने अुन आर्यवेदोंको मिथ्यात्वमे स्थापन कर दिये, और आप असयति होने पर भी अुन ब्राह्मणोंने जगत्मे अपनी पूजा करवाअी ॥२॥"

अिस ग्रन्थमे श्रावकोंके गर्भाधान-सस्कार १, पुंसवन-सस्कार २, जातकर्म-सस्कार ३, चन्द्रार्कदर्शन-सस्कार ४, क्षीराशन-सस्कार ५, षष्ठीजागरण-सस्कार ६, शुचिकर्म-सस्कार ७, नामकरण-सस्कार ८, अन्नप्राशन-सस्कार ९, कर्णवेध-सस्कार १०, चूडाकरण-सस्कार ११, अुपनयन-सस्कार १२, विद्यारम्भ-सस्कार १३, विवाह-सस्कार १४, व्रतारोप-सस्कार १५, और अन्त्य-सस्कार १६, अिन सोलह सस्कारोंका मन्त्र-तन्त्रादिके साथ विवरण किया गया है। मूल मन्त्रोंको छोड़कर प्राय सभी मन्त्रोंके अर्थ भी विशद किये हैं, जिससें श्रावक अिस ग्रन्थको अच्छी तरह पढ़कर सस्कारोंके मन्त्रोंको ओर तन्त्रोंको घर बैठे ही अच्छी तोर पर समझ सकता है। अिन सस्कारोंका विस्तृत और यथार्थ स्वरूप तो ग्रन्थके पढ़नेसें ही मालुम हो सकता है, लेकिन अुनकी अशात्मक कल्पना यहाँ करा देना अनुचित नहीं होगा।

(१) गर्भाधान सस्कार—अिस सस्कारसें जनतामे गर्भकी प्रसिद्धि होती है। अपने कुलमें पैदा हुअे लोगोंको आनद

होता है। शान्तिक-कर्मसे गर्भका रक्षण होता है। प्रत्येक संस्कारमें बीजयुक्त मन्त्रोंका प्रयोग रक्षण करनेवाला और विघ्नोंका नाश करनेवाला है। अिस लिये प्रत्येक संस्कार कराते वख्त अिस ग्रन्थमें तत्तत् स्थान पर लिखे हुअे आर्यवेदमन्त्रके पाठ पढ़ना आवश्यक है। (२) पुंसवन संस्कार—गर्भ रहनेसे आठ मास व्यतीत होने पर, माताके सव दोहले पूर्ण करने पर, शरीर और अवयवोंसे गर्भ परिपूर्ण हो जाने पर, माताके स्तनमें दूधकी अुत्पत्तिको सूचन करनेवाला और गर्भका शरीर पूर्ण हो जानेका प्रमोदको प्रगट करनेवाला यह संस्कार किया जाता है। (३) जन्म संस्कार—यह जन्मोत्सवका आदेश देता है, और आनन्दका कारण है। अिस संस्कारमें दास, दासी, नौकर, चाकर, आप्त और अिष्टादि प्रियजनोंमें अुदार दिलसे द्रव्य-व्यय करना चाहिये। (४) सूर्येन्दुदर्शन संस्कार—सूर्य और चन्द्र विश्वमें प्रकाश करनेवाले प्रत्यक्ष देव है, अिस लिये वालकको पहिले अुनका दर्शन कराना योग्य है, अैसा समझकर यह सस्कार किया जाता है। यह संस्कार वच्चेके जन्म-दिनसे तीसरे दिन किया जाता है। (५) क्षीराशन संस्कार—यह आहारका आरंभक संस्कार है। वच्चेको जिस समय क्षीराशन-स्तनपान कराया जाता है, अुस समयसे आहारका आरंभ गिना जाता है। प्राप्त जन्ममें प्राणी आहारसे ही तृप्त रहता है, अिस लिये आहारका आरंभ भी संस्कारसे ही होना योग्य है। यह संस्कार भी वच्चेके जन्मसें तीसरे दिन ही किया जाता है। (६) षष्ठीजागरण संस्कार—वच्चेके जन्मसें छठवें दिनके सन्ध्या-समयमें यह संस्कार किया जाता है। वालककी रक्षाके लिये अिसमें षष्ठीदेवी और दूसरी भी देवियाँकी पूजा की जाती है, और अुस रातमें सोहागन औरतें गीत-गान करती हुअी जागरण करती है। प्राणिमात्रके भालमें जो कुच्छ अपने कर्मोंके अनुसार लिखे जानेका लोक-व्यवहार है, अुसकी निश्चयरूपता अिस संस्कारसें प्राप्त होती है। (७) शुचिकर्म संस्कार—गर्भकी आर्द्रता वहार निकल जाने पर शरीरमें रही हुअी और पैदा हुअी खरावीको यह संस्कार स्नानादि कर्मोंते हटा देता है, और शरीरको पवित्र वनाता है। अिस कारण अशुचि शरीरको पवित्र वनानेके लिये शुचिकर्म-संस्कार कराना आवश्यक है। यह संस्कार अपने वर्णके

अनुसार ब्राह्मणोंको दस दिनोंके बाद, क्षत्रियोंको बारह दिनोंके बाद वैश्योंको सोलह दिनोंके बाद, और शूद्रोंको अेक महिनेके बाद किया जाता है। (८) नामकरण संस्कार—बिना नामके मनुष्य आलापादि व्यवहारको नहीं कर सकते, अिस लिये अुस बालकको बुलानेके लिये या अुसको किसी काममें जोडनेके लिये नाम रखनेका संस्कार किया जाता है। बालकका नाम रखनेके समय अितनी याद रखना आवश्यक है कि, चाहे वैसा खराब अर्थको बतानेवाला नाम नहीं रखना चाहिये, बल्कि सुन्दर अर्थयुक्त नाम रखना चाहिये, जिससे नाम सुनते ही सुननेवालेका मन प्रसन्न हो, और जिस व्यक्तिका नाम है अुसको भी आनन्द हो। अिस संस्कारमें ज्योतिषीके द्वारा लग्नसाधन किया जाता है, वह अुसके भावी भाग्यको सूचानेके लिये है, अुसके बिना वह अपने भाग्यको नहीं समझ सकता। अिस संस्कारमें मंडलीपूजा भी की जाती है, वह सन्निहित देवोंको संतोष करनेके लिये और गुरु महाराजका आदर-सत्कारके लिये की जाती है। यह संस्कार शुचिकर्मके दिन या अुसके दूसरे अथवा तीसरे दिन शुभ मुहूर्तमें किया जाता है। (९) अन्नप्राशन संस्कार—भोजनके आरम्भके लिये यह संस्कार कराया जाता है। कारण कि—शुभ मुहूर्तमें अन्न खाया तो वह (अन्न) आरोग्य, बल और वीर्यसे संपन्न बना देता है। यह संस्कार पुत्रको छट्ठे महिनेमें और कन्याको पांचवें महिनेमें कराया जाता है।

१० कर्णवेध संस्कार—यह संस्कार तीसरे पांचवें या सातवें वर्षमें निर्दोष मास और दिन देखकर कराया जाता है। वेदमन्त्रसे अिसका मुख्य अुद्देश अैसा विदित होता है कि—आगम और धर्मशास्त्रोंके अक्षरोंको छोडकर अन्य हीन अक्षरोंको और पौद्‌गलिक पदार्थोंमें प्रवृत्तिको बढानेवाले शब्दोंको कानोंसे न सुने। अुस बालकके कानों पर हमेशा आगमके और धर्मशास्त्रोंके अक्षरोंका ही आघात होता रहें। (११) चूडाकरण संस्कार—अिसमें केशवपन–केशोंका मुंडन किया जाता है। बिना केशवपन अुपनयनादि कर्म नहीं हो सकते। अुपनयन संस्कारमें, धर्मकार्यमें और प्रव्रज्या–दीक्षाधारणमें देहके सिंगाररूप केशोंका छेदन किया जाता है–मुंडन कराया जाता है, वह देहके अुपर अनासक्तिका द्योतक है, अिस लिये धार्मिक लोगोंने

॥ १३ ॥

पहले केशोंका मुंडन कराना चाहिये। (१२) अुपनयन संस्कार—यह संस्कार मनुष्योंको ब्राह्मण आदि वर्णकी प्राप्ति कराता है, तथा वेष-मुद्राका वहन कराके गुरुजीने अुपदेश किये धर्ममार्गमें स्थापन कराता है। अिसमें जिनोपवीत, जो श्री जिनेश्वर भगवंतकी गृहस्थाश्रम-अवस्थाकी मुद्रा है, अुसको धारण करनेकी विधि और मन्त्र हरअेक वर्णके लिये अलग अलग हैं, अुनका सविस्तर वर्णन अिस ग्रन्थमें किया गया है वहाँसे देख लेना। अिस संस्कारमें जो जिनोपवीत-मुद्राको धारण की जाती है वह ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप मोक्षमार्गके स्वीकारका द्योतक है। वह मर्यादाका सूचक है. गुरुवाक्य और कुलकी मर्यादा सूत्रमात्र भी अलंघ्य है अिस वातका व्यंजक है; अिस लिये श्रावकने जिनोपवीत अवश्य धारण करना चाहिये। अिस संस्कारसे गुरुमुखद्वारा नमस्कार-मन्त्रका पढ़ना शुरु होता है। यह संस्कार ब्राह्मणोंको गर्भाधानसे या जन्मसे आठवें वर्षमें, क्षत्रियोंको ग्यारहवें वर्षमें, और वैश्योंको बारहवें वर्षमें किया जाता है। (१३) विद्यारम्भ संस्कार—अुपनयन संस्कार किये हुअे ब्रह्मचारीको यह संस्कार कराया जाता है। (१४) विवाह संस्कार—यह संस्कार अपने अपने कुलके सगे-संबन्धो और आप्तजनोंकी हाजरीमें किया जाता है। लोगोंके सामने किया हुआ कर्म अपवादके लिये नहीं होता। प्रच्छन्न किया हुआ कर्म अन्याय है, पाप है। अिस लिये विवाहका प्रारम्भ अुत्सवसे किया जाता है। जिसमें प्रच्छन्नता है, बलात्कार है, लोक-प्रत्यक्षता नहीं है, मात-पिताकी सम्मति नहीं है, वे सब विवाह पाप-विवाह तरीके माने गये हैं; अुन विवाहोंको शास्त्रकी मान्यता नहीं है, अिस लिये अिस प्रकारके विवाह त्याज्य है। यह संस्कार समान कुल-शीलवालोंमें ही होता है।

(१५) व्रतारोप संस्कार—यह संस्कार सब संस्कारोंका सिरताज है। गर्भाधानसे लेकर विवाह तक चोदह संस्कारोंसे संस्कार पाया हुआ भी मनुष्य व्रतारोप-संस्कारके विना कीर्ति और मोक्षरूप लक्ष्मीके लिये पात्र-योग्य नहीं होता है। अिस लिये व्रतारोप-संस्कार यही परम संस्कार है, जैनधर्मका प्राणभूत संस्कार है। श्रुत-सामायिक, अुपधान-विधि, देशविरति-सामायिक और श्रावक-दिनचर्या; अिन चारोंका सविस्तर और विशद वर्णन अनेक ग्रन्थोंमें किया है। दिनचर्यामें जिनार्चन-

विधि और लघुस्नात्र-विधि, अिनका वर्णन अर्हत्कल्पके अनुसार अर्थ सहित स्पष्टरूपसें किया हैं। अिसका विशेष और विस्तार विविध पुस्तकोंमेंसें देख लेना। (१६) अन्त्य संस्कार—श्रावकने शास्त्रोक्त व्रतोंके आचरणसें अपनी जींदगानीका पालन करनेके बाद कालधर्मके प्राप्त होने पर आराधना करनी चाहिये। क्यो कि—अन्तकालमे जैसी मति होती है वैसी ही गति मिलती है। अिस लिये अन्तकालमे शुभ-ध्यानमे स्थित रहना चाहिये। अन्त होने पर अुसके पुत्रादिसें अुसके शवका संस्कार कराना चाहिये।

अिस प्रकार सोलह संस्कारोंका संक्षिप्त स्वरूप ही यहा दिखाया है। अुन्होंका विशेष स्वरूप ग्रन्थके पढनेसें ही मालुम हो सकता हैं। आशा है कि—ग्रन्थको पढ़कर सब श्रावक-श्राविकायें अपने उक्त संस्कारोंको अमलमे लानेके लिये बद्धपरिकर होंगे, और अिस ग्रन्थके नामको और ग्रन्थकी लेखिकाके परिश्रमको सार्थक बनायेंगे, और अिस ग्रन्थ-रचनाके लिये जिन महाशयोंसें प्रेरणा मिली, अुनकी आशा-आकाक्षायें अंकुरित होकर वृक्षके रूपमे परिणत होगी।

श्राद्धसंस्कार-कुमुदेन्दुके अिस प्रथम भागमे श्रावकके अिन सोलह संस्कारोंमेंसें पेस्तरके चौदह संस्कार छपवाये गये हैं। व्रतारोप-संस्कार और अन्त्य-संस्कार, ये दो अंतिम संस्कार तय्यार हो रहे हैं, सो दूसरे भागमे थोडे ही समयमे प्रकाशित किये जायेंगे।

अिस प्रथम भागमे चौदह संस्कारके अुपरांत श्री जैन शारदा-पूजनकी विधि भी छपवाअी है। जैन शास्त्र-सम्मत शारदा-पूजनकी विधि विद्यमान होने पर भी अुसका प्रचार कम हो जानेके सबब सांप्रत कालमे बहुत ठिकाने श्रावकोंको शारदा-पूजनकी विधि ब्राह्मण वगेरा अपने शास्त्रानुसार कराते है, मगर वह मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली होनेसें त्याज्य है। अिस लिये जैन शास्त्र-सम्मत शारदा पूजनकी विधिकी अुपयोगिता जानकर अिस ग्रन्थमे वह विधि भी छपवाअी है। अिसमे शारदा-

॥ १५ ॥

पूजनकी विधि, वही-पूजनकी विधि, लक्ष्मी-पूजनकी विधि, महाप्रभावशाली मन्त्रों, और दीवाली-आराधनाकी विधि; वगेरा अुपयोगी विषयोंका संग्रह किया है। आशा है कि—अवसे सब श्रावकों अिसी विधिसें शारदा-पूजन वगेरा करनेका लाभ अुठायेंगे।

विक्रम संवत् २००४ में पूज्य श्री चतुरश्रीजी महाराजकी निश्रामें हमारा चौमासा हिंगणघाटमें हुआ था। चौमासेके समाप्त होनेमे दो रोज ही कम रहे थे, तब कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन हिंगणघाट निवासी श्रीमान् श्रेष्ठिवर्य बंसीलालजी कोचरके घरमें पुत्र-युगलका (दो पुत्रोंका) जन्म हुआ। अुसके महोत्सवमें शान्तिस्नात्रादि धर्मविधि बड़े ठाठसे कराअी गअी। सेठजीके अनुमोदनीय धर्मप्रेमसें आकर्षित होकर हिंगणघाटके श्रीसंघने अुनको मानपत्र देनेका समारंभ किया। अुस समारंभमें मानपत्रका अुत्तर देते हुअे अुन्होंने अिस ग्रन्थको छपवानेके लिये १०००) अेक हजार रूपये देनेकी घोषणा की। अुसके बाद हिंगणघाटसे विहार करते करते पोष शुक्ला १० को जब हम भाण्डक (भद्रावती) तीर्थमें आये; तब वहां हमको धर्मानुरागी, दृढ श्रद्धावान्, दान शील तप और भावरूप चतुर्विध धर्मके पालनमें तत्पर, सत्य विनय और विवेकादि गुणोंसें अलंकृत, तीर्थादि क्षेत्रोंमें अनवरत दान देनेमें तत्पर हिंगणघाट निवासी परम श्रावक श्रेष्ठिवर्य श्रीमान् वंसीलालजी कोचरसे हमें अिस ग्रन्थ-रचनाकी प्रेरणा मिली। श्रीमान् श्रेष्ठिवर्यकी जैनधर्ममें अितनी दृढ श्रद्धा है कि—अुन्होंने अपनी सुपुत्री चि. कमलाबेनका विवाह अन्य शास्त्रोंके मन्त्र-तन्त्रद्वारा न कराके जैन-वेदमन्त्रोंके द्वारा ही कराया, अुस वख्त भी शान्ति-स्नात्र कराया था। सेठजीने अपनी धर्मपत्नीके साथ चतुर्थ-व्रत अंगीकार किया है। आपने अुपधान किया और करवाया। आप हर साल संत-महात्माओंको चातुर्मास कराते हैं, अिस तरह धर्मके कार्योंमें अपनी लक्ष्मीका सद्व्यय करते हुअे अच्छा लाभ ले रहे हैं। धर्मकी अुन्नति करनेकी अुत्कट अभिलाषा रखते हैं, धर्मके सब कार्योंमें बड़ा

अुत्साह रखते है। धार्मिक शुभ-व्यवहारमे बडे दक्ष-होशियार है, और धर्मके सभी कार्यमे अग्रेसर होकर प्रथम भाग लेते है। अिस तरह मनुष्य-जीवन सफल करते है, और दूसरेको अच्छी तरह समझाके धर्ममें लगाते है।

श्रीमान् धर्मनिष्ठ सेठ श्री बँसीलालजीने अपने बगलेके पास शिखरबधी भव्य जिनमदिर बनवाया है। अुसमें श्री जिनेश्वर परमात्माकी प्रतिमाजीकी अजनशलाका और प्रतिष्ठा-विधि करानेके लिये तीर्थोद्धारक आचार्यदेवेश श्री चन्द्रसागर सूरीश्वरजी महाराज साहबको विनति करनेको सेठजी गये थे। आचार्यजी महाराज साहबने अुस विनतिका स्वीकार किया है, और खुद आचार्यजी महाराजके शुभ हस्तसें थोडे ही वख्तमें बडी धामधूमसें प्रतिष्ठा होगी।

श्रेष्ठिवर्य श्री बसीलालजीकी मान्यता अैसी है कि—जैनशास्त्रमे सब सस्कारोंके मन्त्र-तन्त्र रहते हुअे भी अन्य-मिथ्यात्वियोंके द्वारा मिथ्यात्ववाले शास्त्रोंके मन्त्र-तन्त्रोंसें सस्कार कराना यह जैनागमका अपमान है, घोर मिथ्यामार्गका आलबन है, दुर्गतिका मूल है। जैनधर्मियोंकी मिथ्यामार्गमे प्रवृत्ति देखकर श्रीमान् श्रेष्ठिवर्यका हृदय हलचला अुठा, और अुन्होंने हमको कहा कि—"जैनोंमे सब सस्कार विद्यमान है, अुन्होंके मन्त्र-तन्त्र भी विद्यमान है, मगर वे सब सस्कृत-प्राकृतमें होनेसें श्रावकोंको समझनेमे नहीं आते, अिस कारणसें सब श्रावकोंकी प्रवृत्ति मिथ्यामार्गमे हो रही है, चारों ओर मिथ्यात्वका पटल छाया हुआ है। अुस मिथ्यात्वको हटाकर श्राद्धसस्काररूप कुमुदोंका (रात्रिविकासी कमलोंका) विकास करनेके लिये इन्दु-चन्द्रमा समान अैसा "श्री आचार-दिनकर" ग्रन्थरत्नके सस्कारवाले विभागका हिन्दी भाषान्तर करके अेक ग्रन्थ-चन्द्रका अुदय होना आवश्यक है, जिसके अुदयसें श्रावकोंके नेत्र पर छाया हुआ मिथ्यात्वरूप अन्धकार समूल नष्ट हो जायगा, और फिरसें जैनवेदके मन्त्र-तन्त्रोंमे अुनकी प्रवृत्ति होने लगेगी"। अैसा कहकर श्रेष्ठिवर्यने अिस कार्यके लिये हमको विनति की। लेकिन हम विना गुरुजीकी आज्ञाके कोअी भी कार्य नहीं कर सकते। अिस लिये अुस वख्त सूर्यपुरमें (सुरतमें)

॥ १७ ॥

विराजमान, प्रातःस्मरणीय, परम वन्दनीय, आगमोद्धारक, जैनशासन प्रभावक, परम पूज्यपाद, आचार्यदेव श्री [1]सागरानन्द सूरीश्वरजी गुरुदेवकी छत्रछायामें विराजमान, प्रातःस्मरणीय, परम वन्दनीय, न्याय–व्याकरण–तन्त्र-शास्त्रविशारद, श्री सिद्धचक्र आराधक, तीर्थोद्धारक, परम पूज्यपाद, पंन्यास[2] प्रवर, श्री चन्द्रसागर गणीन्द्र गुरुदेवसें आज्ञा पानेके लिये पत्र लिख भेजा। अुन्होंका आदेश मिल जाने पर आचार–दिनकर ग्रन्थके सोलह संस्कार–विषयक भागका हिन्दी अनुवाद करनेका प्रारंभ किया गया, जिसका आज पेस्तरके चोदह संस्काररूप प्रथम भाग प्रकाशित हुआ है। अंतिमके दो संस्कारका हिन्दी अनुवाद हो रहा है, सो तय्यार हो जाने पर थोड़े ही समयमें दूसरा भाग भी प्रकाशित हो जायगा।

अिसके पहले भी आचार–दिनकरके संस्कार–विभागका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ था, फिर और भी अनुवाद करनेकी चर्वित–चर्वण और पिष्ट–पेषण जैसी निरर्थक क्रिया करनेकी क्या जरूरत थी? अैसा प्रश्न अुपस्थित होता है। सच है, यदि पूर्व प्रकाशित ग्रन्थके मुकाबले अिस ग्रन्थके प्रकाशनसें अधिकतर प्रबोध–विशद रीतिसें ज्ञान नहीं हुआ तब तो फिरसें भाषान्तर करनेकी क्रिया निरर्थक है अैसा सिद्ध होगा। लेकिन पहलेके ग्रन्थके होते हुअे भी फिरसें स्थान–स्थान पर श्रावकोंसें होनेवाली अिस प्रकारके ग्रन्थकी माँग द्योतित करती है कि—पहलेके ग्रन्थसें पूर्ण समाधान और संशय–निवृत्ति नहीं होती है। अिस लिये ही हमने पहले अनुवादित ग्रन्थको दृष्टिक्षेपमें लेकर ही अिस ग्रन्थकी सजावट अैसी करनेका प्रयत्न किया है कि—अिस ग्रन्थको पढ़नेसें श्रावक–श्राविकाओंको (श्रमणोपासक वर्गको) प्रायः संशय नहीं रहेगा। पहलेके ग्रन्थमें लघु–

---

१ अुस वख्त आचार्यदेवेश श्री सागरानन्द सूरीश्वरजी महाराज साहब विद्यमान थे।

२ आचार्यजी महाराज श्री चन्द्रसागर सूरीश्वरजी महाराज साहबने अुस वख्त पंन्यास और गणि पदवीको प्राप्त की थी।

स्नात्रविधिमें आनेवाले श्लोकोंका अर्थ नहीं है, वह यहाँ विशदरूपसें दिये है, जिनार्चन-विधिका भी अर्थ स्पष्ट किया है, प्रत्येक सस्कारकी विधिके मूल पाठ भी दाखिल किये है, और पूर्व-प्रकाशित ग्रन्थकी ही मानों यह अेक सस्कारित नयी आवृत्ति खडी की है। अिस लिये यह पिष्ट-पेषण जैसा निरर्थक व्यापार है अैसा नहीं कहा जा सकेगा।

अिस कार्यमे श्लोकोंके अर्थको विशद करनेमे तथा स्थान-स्थान पर सुधारा करनेमे जलगाँव निवासी पडित लक्ष्मण वासुदेव माडवगणे शास्त्री वरणगाँवकर "काव्यतीर्थ, न्यायतीर्थ, वेदान्ततीर्थ, राष्ट्रभाषा-कोविद" अुन्होंने बहुमोल सहाय की है। पडितवर्य जैन साधु-साध्वीओंको पढानेसे जैन-सिद्धान्तसे अच्छे परिचित है। वे जैनधर्मकी तरक्कीमे हमेशा तत्पर रहेंगे, अैसी आशा प्रगट करके और अुन्होंको धर्मलाभ-शुभाशीर्वादपूर्वक धन्यवाद देकर प्रस्तावनाको गुरुचरणोंमे समर्पण करती हू।

अिस ग्रन्थको छपवानेमे सावधानी रक्खी है। क्वचित् अशुद्धि रह गअी है अुसका शुद्धि-पत्रक दिया है, अुसको देखकर वाचक-वर्ग अुस-अुस स्थान पर सुधार लेंगे अैसी आशा है। तो भी दृष्टिदोषद्वारा या प्रेसके साधनों द्वारा मुद्रणमे काना, मात्रा, अनुस्वार, विसर्ग, अक्षरकी अदल-बदल, और विराम आदि चिह्नोंमे स्खलना हुअी हो, तो वाचकवर्ग विवेक-पुरस्सर सुधारके वाचेंगे अैसी आशा प्रगट करके, स्थान पुरस्सर सबको अुचित धन्यवाद देकर और आभार मानके लेखनको समाप्त करती हूँ।

निवेदिका—साध्वी सुज्ञानश्री

॥ १९ ॥
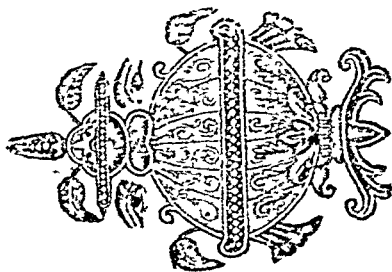
मोक्षदानायाऽलम्भूष्णुर्भवति । सोऽपि द्वादशव्रतधारण–यतिजनोपासना-ऽर्हदर्चन–दानशीलतपोभावनासंश्रयादिभिरुपचीयमानो मोक्षप्रदानाय पतेरिव ॥

भाषा—जिनमें यति (साधु) धर्म तो महाव्रतको पालन करना, समिति गुप्तिको धारण करना, परिषह उपसर्गोंको सहन करना, कषाय और विषयोंको जीतना, श्रुतज्ञानको धारण करना, ओर बाह्य–अभ्यतर बारह प्रकारका तप करना, अित्यादि योगोंसे मोक्षको देनेवाला, अर्थात्–मोक्षका रास्ता है, परंतु वह है दुष्प्राप्य (प्राप्त करनेके लिये अत्यत कठिन) अर्थात् साधुधर्म प्राप्त करना मुश्किल है ॥

गृहस्थधर्म—परिग्रह रखना, मियाना पालखी वगैरहमे बैठना, अपनी अिच्छानुसार विचरना, और भोगोपभोगादिकोंसे यद्यपि औदारिक सुखलेशको देनेवाला है, मगर मोक्ष देनेमे समर्थ नहिं है । तो मी बारह व्रतोंको धारण करना, मुनिराजोंकी सेवा करना, भगवान् श्री अरिहंतका पूजन करना, दान देना, शील पालना, तपस्या करना और शुभ भावनायें भावना, अित्यादि पुण्यकार्योंसे पुष्ट किया हुवा वह गृहस्थधर्म मी परंपरासे साधुधर्मकी तरह मोक्ष देनेके लिये समर्थ है ।

संस्कृत–यत उक्तमागमे–

" विसमो वि निअडगमणो, मग्गो मुक्खस्स इह जईधम्मो । सुगमो वि दूरगमणो, गिहत्थधम्मो वि मुक्खपहो ॥ १ ॥

भाषा—आगममें कहा है कि " यद्यपि मुनिधर्म विषम–कठिन है, मगर वह धर्म मोक्षका निकट मार्ग है, और गृहस्थ धर्म जो कि सुगम है, मगर वह धर्म मोक्षका दूर मार्ग है, अर्थात् चिरकालके बाद मोक्ष देता है । "

“ जह मेरु–सरिसवाणं, खज्जोअ–रवीणं चंद–ताराणं ।
तह अंतरं महंतं, जइधम्म–गिहत्थधम्माणं ॥ १ ॥ ”

भापा—जैसे मेरु और सरसव, खजूआ और सूर्य, तथा चन्द्र और तारा; इनमें जीतना अंतर है उतना मुनिधर्म और गृहस्थधर्ममें बड़ा भारी अंतर है । ”

अत एव यतिधर्मग्रहणस्य पूर्वसाधनभूतम् अनेकसुरासुरयतिलिङ्गिप्रीणनपरं जिनार्चन–साधुसेवादिसत्कर्मपवित्रितं गृहिधर्मं व्याचक्ष्महे । तत्रापि गृहिधर्मे पूर्वं व्यवहारसमुद्देशः, ततश्च गृहस्थधर्मकथनम् । व्यवहारोऽपि प्रमाणं, यत ऋषभाद्या अर्हन्तोऽपि गर्भाधान–जन्मकालप्रभृतिव्यवहारं समाचरन्ति ।

भापा—अिसी लिये साधुधर्म ग्रहण करनेका पहला साधनभूत, अनेक सुर असुर साधु और लिंगियोंको संतोष देनेवाला. जिनेश्वर भगवान्का पूजन और साधुओंकी सेवा; अित्यादि सत्कर्मोंसे पवित्रित अैसे गृहस्थधर्मको कहते है । उस गृहस्थधर्ममें भी पहले व्यवहारको उद्देश करके कहते है, उसके बाद गृहस्थधर्मका कथन करेंगे । व्यवहारको भी प्रमाणभूत मानना चाहिये, क्यों कि श्री ऋषभदेवादि तीर्थंकरों भी गर्भाधान और जन्मकाल वगैरह व्यवहारको आचरते हैं ।

स–यत उक्तमागमे–“ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मा–पियरो पढमे दिवसे ठिइवडियं करेन्ति । तईए दिवसे चंद–सूर दंसणियं करेन्ति । छट्ठे दिवसे धम्मजागरियं जागरेन्ति । एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते, निव्वत्तिए असुइजम्मकम्मकरणे, संपत्ते बारसाहे दिवसे विउलं असण–पाण–खाइम–साइमं उवक्खडावेन्ति ” । इत्यादि व्यवहारकर्म भगवद्भिरप्याचीर्णम् ।

व्यवहार
धर्मकी
प्रमाणिकता

भापा—आगममे कहा है कि–" श्रमण भगवान् महावीरका जन्म होने पर उनके माता–पिता पुत्रजन्मके प्रथम दिनमे महोत्सवादिरूप कुलमर्यादा करते है । तीसरे दिन पुत्रको विधिपूर्वक चन्द्र और सूर्यका दर्शन कराते हैं । छट्ठे दिन कुलधर्म मुताबिक धर्म जागरणका महोत्सव करते है । ग्यारहवाँ दिन खत्म होने पर, और नालच्छेदादि अशुचि जन्मक्रियाओं समाप्त करनेके बाद, और पुत्रजन्मका बारहवाँ दिन प्राप्त होने पर श्रमण भगवान् महावीरके माता–पिता विपुल ओसा अशन पान खादिम और स्वादिम, इस प्रकार चारों प्रकारके आहार तैयार कराते है "। अित्यादि व्यवहार क्रियाओका खुद भगवान्ने भी आचरण किया है, अिससे उसको प्रमाणभूत मानना चाहिये ।

स –आगमे निर्दि ' च । यत'–

" ववहारो वि हु बलवं, जं वंदइ केवली वि छउमत्थं । आहाकम्म भुंजइ, तो ववहारो पमाण तु ॥ १ ॥ "

लौकिकेऽपि–चतुर्णामपि वेदाना, धारको यदि पारगः । तथापि लौकिकाचार, मनसाऽपि न लङ्घयेत् ॥ १ ॥

भापा—आगममे कहा है कि–" व्यवहार भी बलवान् है । क्यों कि छद्मस्थको जब तक ' यह केवली है ' ओसा मालुम न होवे, और वंदन करता हुवा केवलीको छद्मस्थ ना न कहे, तब तक केवली भी छद्मस्थ गुरुको वन्दन करता है । और छद्मस्थ अपनी ज्ञानशक्तिके अनुसार शुद्ध जान कर आहार लाया हो, उस आहारको केवली भगवान् केवलज्ञानसे आधाकर्मादि दूषणयुक्त जानते हुओ भी व्यवहारको प्रमाणभूत रखनेके लिये खाते है " ॥ १ ॥

लौकिक शास्त्रमे भी कहा है कि–" यद्यपि जो कोओ चारों वेदोंको धारण करनेवाला हो, और शास्त्रोंमे पारगामी हो, तो भी वह लौकिक आचारका मनसे भी उल्लंघन न करें " ॥ १ ॥

सोलह संस्कारके नाम

सर्वज्ञ श्री ऋषभदेव परमात्माको वन्दन करके श्रावकोंकी संस्कारविधि दिखाते है। जैनधर्ममें संस्कारविधि अनादि प्रवाहसे प्रचलित है। इस विधिको जैन पंडित, जैन ब्राह्मण और कुलगुरु सबको कराते चले आये है। मगर कालदोषसे वर्तमान समयमें जैनधर्मी श्रावक लोग ब्राह्मण मिथ्यात्वियोंके मुखसे संस्कार कराने लगे, परन्तु वह सर्व विधि मिथ्यात्व-युक्त होनेसे आचरण करनेके योग्य नहीं है। दक्षिणी ब्राह्मण जैन धर्मियोंको ऐसे मिथ्यात्वयुक्त संस्कार कराते हुए देखे है। जैनधर्मके संस्कार विद्यमान रहते हुवे भी जैनधर्मियों अन्य कल्पित शास्त्र मुताबिक संस्कार कराके अपने धर्मकी न्यूनता क्यों कराते है?। आशा है कि, अबसे जैनधर्मी लोग अपनी प्राचीन संस्कार विधिसे ही संस्कार करायेंगे।

यह संस्कारविधि श्री आवश्यकसूत्र, श्री कल्पसूत्र, और श्री आचारदिनकरादि शास्त्रोंसे उद्धृत करके यहाँ लिखी है।

सं.–आदौ गृहस्थधर्मकथने षोडश संस्काराः। तद् यथा–

गर्भाधानं पुंसवनं, जन्म चन्द्रार्कदर्शनम्। क्षीराशनं चैव षष्ठी, तथा च शुचिकर्म च ॥ १ ॥

तथा च नामकरण–मन्नप्राशनमेव च। कर्णवेधो मुण्डनं च, तथोपनयनं परम् ॥ २ ॥

पाठारम्भो विवाहश्च, व्रतारोपोऽन्तकर्म च। अमी षोडश संस्कारा, गृहिणां परिकीर्तिताः ॥ ३ ॥

भाषा—गर्भाधान संस्कार १, पुंसवन संस्कार, जन्म संस्कार ३, चन्द्र–सूर्य दर्शन संस्कार ४, क्षीराशन संस्कार ५, षष्ठी-पूजन संस्कार ६, शुचिकर्म संस्कार ७, नामकरण संस्कार ८, अन्नप्राशन संस्कार ९, कर्णवेध संस्कार १०, मुंडन (केशवपन) संस्कार ११, उपनयन संस्कार, १२, विद्यारंभ संस्कार १३, विवाह संस्कार १४, व्रतारोप संस्कार १५, और अंतकर्म संस्कार १६; गृहस्थियोंके ये सोलह संस्कार कहे हैं ॥

व्रतारोप परित्यज्य, सस्कारा दश पञ्च च । गृहिणा नैव कर्तव्या, यतिभिः कर्मवर्जितै' ॥ १ ॥

यत उक्तमागमे—

" विज्जयं जोइस चेव, कम्मं ससारिअ तहा । विज्जामंतं कुणंतो अ, साहू होइ विराहओ ॥ १ ॥ "

अिन सोल्ह सम्कारोंमेंसे व्रतारोप सस्कारको छोड कर गृहस्थोंके शेप पद्रह सस्कार सावद्य क्रिया वर्जित अैसे साधु-मुनिराजोंको नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥ क्यों कि आगममे कहा है कि-" वैद्यक, ज्योतिप, सासारिक कार्य और विद्यामन्त्र करनेवाला साधु श्रीजिनाज्ञाका विराधक होता है " ॥ १ ॥

सन्ते पञ्चदश सस्कारा केन कर्तव्या ? इत्युच्यते—

" अर्हन्मन्त्रोपनीतश्च, ब्राह्मण' परमार्हत । क्षुल्लको वाऽऽत्तगुर्वाज्ञो, गृहिसंस्कारमाचरेत् " ॥ १ ॥

भापा—गृहस्थके ये पद्रह सस्कार किसकी पास कराना ? सो कहते है-" जिसका अर्हन्मन्त्रसे उपनयन सस्कार किया गया हो अैसा आर्हत धर्ममें परम श्रद्धालु ब्राह्मण, अथवा गुरुमहाराजकी आज्ञाको पालन करनेवाला अैसा क्षुल्लक (श्रावक विशेष) गृहस्थका सस्कार करावें " ॥ १ ॥

सस्कार करानेवाला कुलगुरु धर्मभ्रष्ट और दुराचारी न होना चाहिये, सदाचारी और धर्मकी श्रद्धावाला होना चाहिये। अपना गाँव या शहरमें यदि कुलगुरु न हो तो पठित श्रावक भी सस्कार करा सकता है । यदि वैसा श्रावक भी नहीं मीले तो सदाचारी पडित ब्राह्मणसे अिसमें लिखी हुई विधिद्वारा जैन मन्त्रोंसे सभी सस्कार करा लेना चाहिये । सस्कार करानेवाला मन्त्रोंका उच्चारण शुद्ध और प्रकटतया करे ।

॥ प्रथमा कला ॥ गर्भाधान संस्कार विधिः ॥ १ ॥

सं-प्रथमं गर्भाधानसंस्कारविधिः । स यथा-

संजाते पञ्चमे मासे, गर्भाधानादनन्तरम् । गर्भाधानविधिः कार्यो, गुरुभिर्गृहमेधिभिः ॥ १ ॥
गर्भाधाने पुंसवने, जन्मन्याह्वानके तथा । शुद्धिर्मास-दिनादीना-मालोक्यावश्यकर्मणि ॥ २ ॥
श्रवणश्च करः पुनर्वसू, निऋतिर्भं च सपुष्यको मृगः । रवि-भूसुत-जीववासराः, कथिताः पुंसवनादिकर्मसु ॥३॥

भाषा—प्रथम गर्भाधान संस्कारकी विधि कहते है। वह अिस प्रकार-गर्भाधानके अनन्तर पाँचवां महिना होने पर गृहस्थ गुरु गर्भाधानविधि करें ॥ १ ॥ गर्भाधान १, पुंसवन २, जन्म ३, और नाम ४; अिन अवश्यकर्मोमें मास दिन वगैरहकी शुद्धि देख कर विधि करनी चाहिये ॥ २ ॥ श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, मूल, पुष्य और मृगशीर्ष, ये नक्षत्र; तथा रवि मंगल और बृहस्पति, ये वार पुंसवनादि कर्मोमें कहे हैं ॥ ३ ॥

अतश्च पञ्चमे मासे शुभतिथि-वारर्क्षेषु पतिचन्द्रबलाद्यवलोक्य देशविरतो गुरुः कृतस्नानो वद्धशिखो धृतोपवीतोत्तरासङ्गो धौतनिवसनपरिधानो धृतपञ्चकक्षश्चन्दनतिलकाऽङ्कितललाटः सुवर्णमुद्रिकाऽङ्कितमानित्रीकः मकोष्ठवद्धपञ्चपरमेष्ठिमन्त्रोद्दिष्टपञ्चग्रन्थियुतः सदर्भकौसुम्भसूत्रकङ्कणो रात्र्युपासितब्रह्मव्रतः कृतोपवासा-ऽऽचाम्ल-नैर्विकृतिके-काशनादिप्रत्याख्यानः संप्राप्तऽऽजन्मयतिगुर्वनुज्ञो जैनब्राह्मणः क्षुल्लको वा गृहिणा संस्कारकर्म कारयितुमर्हति । उक्तं च-

संपूर्ण अंगवाला, सरल स्वभाववाला, सद्गुरुकी हमेशां सेवा करनेवाला; ॥ ३ ॥ विनयवाला, बुद्धिशाली, क्षमावाला, किसीने अपने उपर किया हुवा उपकारको जाननेवाला, तथा बाह्य और अभ्यंतर दोनों प्रकारसें पवित्र; असा गुरु गृहस्थोंके संस्कार कार्योंमें योग्य है ॥ ४ ॥ स्त्रीको गर्भ रहनेके बाद पांचवे मासमें सोम बुध गुरु या शुक्रवार हो, दूज तीज पंचमी सप्तमी या दशमी तिथि हो, रोहिणी हस्त स्वाति अनुराधा श्रवण शतभिषा, तीनों उत्तरा या रेवती नक्षत्र हो, मेष और मकर लग्नको छोडके दूसरे लग्नोंमें ग्रहोंकी शुद्धि देखकर गर्भाधान संस्कार कराना चाहिये । यदि स्त्री स्वरोदय ज्ञानको जानती हो तो चन्द्रस्वरमें जल या पृथ्वी तत्त्व चलते वख्त संस्कार करावे ।

सं–ईदृशो गुरुर्गर्भाधानकर्मणि पूर्वं गुर्विण्याः पतिमनुजानीयात् । स च गुर्विणीपतिर्नख–शिखान्तं स्नातो धृत-शुचिवस्त्रो निजवर्णानुसारधृतोपवीतोत्तरीयोत्तरासङ्गः प्रथमम अर्हत्प्रतिमां शास्त्रोक्तबृहत्स्नपनविधिना स्नपयेत् । तच्च स्नात्रोदकं शुभे भाजने स्थापयेत् । ततश्च जिनप्रतिमां गन्ध–पुष्प–धूप–दीप–नैवेद्य–गीत–वादित्रैः शास्त्रोदितैः पूज-येत् । पूजान्ते गुरुर्गुर्विणीम् अविधवाकरैर्जिनस्नानोदकैरभिषेचयेत् । ततश्च सर्वजलाशयजलानि संमील्य सहस्रमूल-चूर्णं प्रक्षिप्य शान्तिदेवीमन्त्रेणाऽभिमन्त्रयेत्, तद्गर्भितस्तोत्रेण वा । शान्तिदेवीमन्त्रो यथा–

भाषा—असा कुलगुरु गर्भाधान क्रियामें प्रथम गर्भवतीके पतिको विधि–विधानके लिये तैयार होनेकी आज्ञा देवें । वह गर्भवतीका पति नखसे लेकर चोटी तक यानि सारे शरीरमें स्नान करके पवित्र वस्त्र पहिनके, अपने वर्णानुसार उपवीत और उत्तरीय वस्त्रका उत्तरासंग करके; प्रथम शास्त्रमें कही हुई बृहत्स्नात्रविधिसे अर्हत्प्रतिमाका स्नात्र करें । उस स्नात्रके पानीको पवित्र भाजनमें स्थापन करें । असके बाद शास्त्रोक्त विधिसे गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, गीत और वादित्रोंसे श्रीजिनेश्वरकी प्रतिमाकी पूजा करें । पूजाके अंतमें कुलगुरु गर्भवतीको सौहागन स्त्रीयोंके हस्तोंसे स्नात्रोदक द्वारा सिंचनरूप अभिषेक करावें ।

अिसके बाद सब जलाशयके जलको इकट्ठा करके उसमें सहस्रमूलका चूर्ण डालके, अुस जलको शान्तिदेवीके मन्त्रसे अभिमन्त्रित करें, अथवा शान्तिदेवीके मन्त्रगर्भित स्तोत्रसे अभिमन्त्रित करें। शान्तिदेवीका मन्त्र अिस प्रकार है—

म—" ॐ नमो निश्चितवचसे भगवते पूजामर्हते जयवते यशस्विने यतिस्वामिने सकलमहासंपत्तिसमन्विताय त्रैलोक्यपूजिताय सर्वाऽसुरामरस्वामिसपूजिताय अजिताय भुवनजनपालनोद्यताय सर्वदुरितौघनाशनकराय सर्वाऽशिवप्रशमनाय दुष्टग्रह-भूत-पिशाच-शाकिनीनां प्रमथनाय। तस्येति नाम-मन्त्र-स्मरणतुष्टा भगवती तत्पदभक्ता विजयादेवी। ॐ ह्रीँ नमस्ते भगवति विजये, जय जय परे परापरे जये अजिते अपराजिते जयावहे, सर्वसंघस्य भद्र-कल्याण-मङ्गलप्रदे साधूनां शिव-तुष्टिप्रदे, जय जय, भव्यानां कृतसिद्धे, सत्त्वानां निर्वृति-निर्वाणजननि, अभयप्रदे स्वस्तिप्रदे भविकानां जन्तूनां शुभप्रदानाय नित्योद्यते सम्यग्दृष्टीनां, धृति-रति-मति-बुद्धिप्रदे जिनशासनरतानां शान्तिप्रणतानां जनानां श्री-संपत्कीर्ति-यशोवर्द्धिनि, सलिलाद् रक्ष रक्ष अनिलाद् रक्ष रक्ष, विषधरेभ्यो रक्ष रक्ष, राक्षसेभ्यो रक्ष रक्ष, रिपुगणेभ्यो रक्ष रक्ष, मारीभ्यो रक्ष रक्ष, चौरेभ्यो रक्ष रक्ष, ईतिभ्यो रक्ष रक्ष, श्वापदेभ्यो रक्ष रक्ष, शिवं कुरु कुरु, शान्ति कुरु कुरु, तुष्टिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु, स्वस्ति कुरु कुरु, भगवति, गुणवति, जनानां शिव-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि-स्वस्ति कुरु कुरु। ॐ नमो ह्रूँ ह्रूं यः क्ष ह्रीँ फट्[1] फट् स्वाहा "।

[1] पाठान्तर-फुट् फुट्।

अथवा—

"ॐ नमो भगवतेऽर्हते शान्तिस्वामिने सकलातिशेषकमहासंपत्समन्विताय त्रैलोक्यपूजिताय, नमः शान्ति-देवाय सर्वामरसमूहस्वामिसंपूजिताय भुवनपालनोद्यताय सर्वदुरितविनाशनाय सर्वाऽशिवप्रशमनाय सर्वदुष्टग्रह-भूत-पिशाच-मारि-डाकिनीप्रमथनाय, नमो भगवति विजये अजिते अपराजिते जयन्ति जयावहे, सर्वसंघस्य भद्र-कल्याण-मङ्गलप्रदे, साधूनां शिव-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि-स्वस्तिदे, भव्यानां सिद्धि-वृद्धि-निर्वृति-निर्वाणजननि, सत्त्वा-नाम् अभयप्रदाननिरते, भक्तानां शुभावहे, सम्यग्दृष्टीनां धृति-रति-बुद्धिप्रदानोद्यते, जिनशासननिरतानां श्रीसं-पत्कीर्ति-यशोवर्धिनि, रोग-जल-ज्वलन-विष-विषधर-दुष्टज्वर-व्यन्तर-राक्षस-रिपु-मारि-चौरेति-श्वापदोपसर्गादि-भयेभ्यो रक्ष रक्ष, शिवं कुरु कुरु, शान्तिं कुरु कुरु, तुष्टिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु, स्वस्ति कुरु कुरु, भगवति श्री-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि-स्वस्ति कुरु कुरु, ॐ नमो नमो हूँ हः यः क्षः ह्रीँ फट् फट् स्वाहा" ॥

अनेन मन्त्रेण पूर्वोक्तेन वा स सहस्रमूलिकं सर्वजलाशयजलं सप्तवारमभिमन्त्र्य सपुत्रसधवाकरैः मङ्गलगीतेषु गीयमानेषु गुर्विणीं स्नपयेत् । ततश्च गुर्विण्या गन्धानुलेपनं सदशवस्त्रपरिधानं यथासंपत्त्याभरणधारणं कारयित्वा पत्या सह वस्त्राञ्चलग्रन्थिबन्धनं विधाय पतिवामपार्श्वे गुर्विणीं शुभासने कृतस्वस्तिकमाङ्गल्ये निवेशयेत् । ग्रन्थियोजनमन्त्रः—

भाषा—सहस्रमूल चूर्णसे युक्त अैसा इकट्ठा किया हुवा सभी जलाशयके पानीको गुरु इस मन्त्रसे या पूर्वोक्त मन्त्रसे सात दफे मन्त्रित करके मंगलगीत गाते गाते पुत्रवाली सोहागन औरतोंके हाथसे गर्भवतीको अुस पानीसे स्नान करावें । अुसके बाद

गर्भवतीको सुगधी पदार्थोंसे विलेपन करके सदश वस्त्र (विवाह समय पहिननेका वस्त्र) पहिनाकर, सपत्ति अनुसार आभूषण धारन करवाकर पतिके दुपट्टेके साथ वस्त्र अचलमे ग्रन्थिबंधन करके पतिके बाँय भागमें स्वस्ति–मंगल किया हुवा शुभ आसन पर गर्भवतीको वैठावें ।

जिस रोज गर्भाधान सस्कार कराना पक्का ठहर जाय, अुस रोज कुलगुरु न्हा–धोकर अच्छे कपडे पहने, और केसरका तिलक लगाकर अुस गृहस्थके घर जावें । जिस औरतको गर्भाधान सस्कारकी विधि करानी हो वह गर्भवती स्वच्छ पानीसे स्नान करें, और अच्छे कपडे पहनके बिरादरीकी औरतोंको साथ ले कर याजे वगैरा जुलससे जिनमदिरमे जावें । जिस गाँवमें जिनमदिर न हो वहा अेक मकानमे सिद्धचक्र यन्त्र रखके अुसके सामने जावें । रास्तेमें औरतें गीत–गान करती चले । जिनमदिरमे जा कर कुलगुरु वहाँ स्नात्रपूजन करावें, और जिनप्रतिमाका स्नात्रजल अेक झारीमें ले कर अुसी तरह जुलुसके साथ फिर घरको आवें । अुस वख्त अेक सोहागन औरत गर्भवतीके शरीर पर केसर चदन वगैरा खुशबूवाली चीजें लगावें, और कुलगुरु पतिके दुपट्टेके साथ गर्भवतीकी साडीका ग्रन्थिबधन करें । पीछे नीचे बतलाया हुवा ग्रन्थियोजन मन्त्रको पढें—

“ ॐ अर्हं । स्वस्ति ससारसवन्ध–वद्धयोः पति–भार्ययो । युवयोरवियोगोऽस्तु, भववासान्तमाशिषा ” ॥ १ ॥

भाषा—ॐ अर्हं परमात्माका स्मरण करते हैं । ससार सबन्धसे बंधे हुवे तुम पति–पत्नीका आशीर्वादसे ससारवास पर्यंत वियोग न हो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ १ ॥

विवाह वर्जयित्वा सर्वत्र अनेनैव मन्त्रेण दम्पत्योर्ग्रन्थि बध्नीयात् । ततो गुरुस्तस्याः पुरः शुभे पट्टे पद्मासना-

सीनो मणि-स्वर्ण-रूप्य-ताम्रपत्रपात्रेषु सजिनस्नात्रजलं तीर्थोदकं संस्थाप्य कुशाग्रपृषतैः आर्यवेदमन्त्रैर्गुर्विणीमभिषिञ्चेत् । आर्यवेदमन्त्रो यथा-

भाषा—विवाहको छोड कर सब जगह अिसी मन्त्रसे पति-पत्नीका ग्रन्थिबंधन करना चाहिये । ग्रन्थिबंधन करनेके वाद गर्भवतीके आगे शुभ पट्टे पर पद्मासन लगाके बैठे हुवे गुरु मणि स्वर्ण चांदी या ताम्रपत्रके पात्रोंमें जिनस्नात्रके जलसे संयुक्त किया हुवा तीर्थोदक स्थापन करें । पीछे नीम्न लिखित आर्यवेदका मन्त्र पढ कर दर्भके अग्र भाग पर रहे हुवे उस जलके बिंदुओंसें गर्भवतीके शरीर पर थोडा थोडा सिंचन करें-छांटता रहें । आर्यवेदका मन्त्र इस प्रकार है—

"ॐ अर्हं, जीवोऽसि, जीवतत्त्वमसि, प्राण्यसि, प्राणोऽसि, जन्म्यसि, जन्मवानसि, संसार्यसि, संसरन्नसि, कर्मवानसि, कर्मबद्धोऽसि, भवभ्रान्तोऽसि, भवसंविभ्रमिपुरसि, पूर्णाङ्गोऽसि, पूर्णपिण्डोऽसि, जातोपाङ्गोऽसि, जायमानोपाङ्गोऽसि; स्थिरो भव, नन्दिमान् भव, वृद्धिमान् भव, पुष्टिमान् भव, ध्यातजिनो भव, ध्यातसम्यक्त्वो भव, तत् कुर्या न येन पुनर्जन्म-जरा-मरणसंकुलं संसारवासं गर्भवासं प्राप्नोषि । अर्हं ॐ" ॥

भाषा—उपर लिखा हुवा आर्यवेदका मन्त्र पढे

इति मन्त्रेण दक्षिणकरधृतकुशाग्रतीर्थोदकबिन्दुभिः सप्तवेलं गुर्विणीं शिरसि शरीरे अभिषिञ्चेत् । ततः पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रपठनपूर्वं दम्पती आसनादुत्थाप्य जिनप्रतिमापार्श्वं नीत्वा शक्रस्तवपाठेन जिनवन्दनं कारयेत् । यथाशक्ति

फल–वस्त्र–मुद्रा–मणि–स्वर्णादि जिनप्रतिमाग्रे ढौकयेत् । ततश्च गुर्विणी गुरवे स्वसपत्त्या वस्त्रा–ऽऽभरण–द्रव्य–स्वर्णादिदान दद्यात् । ततो गुरुः सपतिका गुर्विणीमाशीर्वादयेत् । यथा–

ज्ञानत्रयं गर्भगतोऽपि विन्दन्, संसारपारैकनिरुद्धचित्त ।
गर्भस्य पुष्टिं युवयोश्च तुष्टिं, युगादिदेव' प्रकरोतु नित्यम् ॥ १ ॥

ततश्च आसनादुत्थाप्य ग्रन्थिं वियोजयेत् । ग्रन्थिवियोजनमन्त्र'–

भाषा—इस मन्त्रको पढ कर दाहिने हाथमे धारण किये हुवे दर्भके अग्र भाग पर रहे हुवे तीर्थजलके विन्दुओंसे गर्भवतीके सिर और शरीरके उपर सिंचन करें–छटकाव करें। ऐसा सात दफे मन्त्र पढ कर सात दफे तीर्थजलका छटकाव करें। उसके बाद नमस्कार मन्त्रको पढके पति–पत्नीको आसन परसे उठा कर, जिनप्रतिमाके पास ले जाकर शक्रस्तव (नमुत्थुण) के पाठसे जिनवन्दन करावें ।.जिनप्रतिमाके आगे फल, वस्त्र, मुद्रा, मणि, स्वर्ण वगैरह यथाशक्ति रक्खें । उसके बाद गर्भवती कुलगुरुको अपनी सपत्तिके अनुसार वस्त्र, आभूषण, रूपिये, महोर, नारियल, और स्वर्णादिका दान देवें । पीछे पति सहित गर्भवतीको गुरु इस प्रकार आशीर्वाद देवें–" गर्भमे रहते हुए भी मति श्रुत और अवधि इन तीनों ज्ञानको जानते हुवे और ससार पार करनेके लिये ही लगा हुवा है अत करण जिनका ऐसे श्री ऋषभदेव भगवान् हमेशा गर्भकी पुष्टि और तुम दोनों पति–पत्नीकी तुष्टि (प्रसन्नता) करो " ॥ १ ॥ इसके बाद पति–पत्नीको आसनसे उठा कर ग्रन्थिको छोड देवे। ग्रन्थि छोडते वक्त इस मन्त्रको पढे—

॥ १७ ॥

“ॐ अर्हं। ग्रन्थौ वियोज्यमानेऽस्मिन्, स्नेहग्रन्थिः स्थिरोऽस्तु वाम्। शिथिलोऽस्तु भवग्रन्थिः, कर्मग्रन्थिदृढीकृतः” ॥१॥

भाषा—“ॐ अर्हं परमात्माका स्मरण करते हैं। अिस गांठको छोडने पर तुम दोनोंकी स्नेहरूप गांठ स्थिर हो, और कर्मकी गांठसे मजबुत वनी हुअी संसाररूप गांठ शिथिल हो” ॥ १ ॥

इति मन्त्रेण ग्रन्थिं वियोज्य धर्मागारे दम्पतिभ्यां सुसाधुगुरुवन्दनं कारयेत्। साधुभ्यो निर्दोषभोजन–वस्त्र–पात्रादि दापयेत्। ततः स्वकुलाचारयुक्त्या कुलदेवता–गृहदेवता–पुरदेवतादिपूजनम्।

भाषा—अिस मन्त्रसे गांठ खोल कर धर्मागारमें (उपाश्रयमें) दंपतिको ले जाके सुसंयमी अैसे गुरु महाराजको वंदना करवावें, और साधुओंको निर्दोष आहार वस्त्र पात्रादि दिलावें। अुसके वाद अपने कुलके आचार मुताविक कुलदेवता, गृहदेवता और पुरदेवताका पूजन करें। विरादरीके लोग मर्द और औरतें जो गर्भाधान संस्कारके लिये आये हो अुन सवको नारियल मिठाई मुआफिक अपनी अिजतके अनुसार बाँटे। जिनमंदिरमें अंगी–रोशनी करावें। दुनियामें अुमदा चीज धर्म है; जिसने धर्मकी तरक्की की उसने सव कुच्छ किया, अिसमें कोअी शक नहीं।

अिस गर्भाधान संस्कारमें अितनी वस्तु चाहिये।

पञ्चामृतं स्नात्रवस्तु, सर्वतीर्थोद्भवं जलम्। सहस्रमूलं दर्भश्च, कौसुम्भं सूत्रमेव च ॥ १ ॥
द्रव्यं फलानि नैवेद्यं, सदशं वसनद्वयम्। शुभमासनपट्टं च, स्वर्ण–ताम्रादिभाजनम् ॥ २ ॥
वाद्यं च सधवा नार्यः, पतिश्चापि समीपगः। गर्भाधानस्य संस्कारे, वस्तून्येतानि कल्पयेत् ॥ ३ ॥

भाषा—पंचामृत १, स्नात्रकी वस्तु २, सब तीर्थोंका पानी ३, सहस्रमूल चूर्ण ४, दर्भ ५, कोसुम सूत्र ६, ॥ १ ॥ द्रव्य ७, फल ८, नैवेद्य ९, छेडा सहित दो वस्त्र–दो चूनडी १०, शुभ अैसा बैठनेके लिये पट्ट ११, स्वर्ण–ताम्रादिका पात्र १२, ॥ २ ॥ वादित्र १३, सोहागन औरतें १४, और गर्भवतीका समीपमे रहा हुवा पति १५, गर्भाधानके सस्कारमे अितनी वस्तु होनी जरुरी हैं ॥ २ ॥

॥ इति श्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ गर्भाधानसस्कारकीर्तनरूपा प्रथमा कला ॥ १ ॥

॥ १९ ॥

॥ द्वितीया कला ॥ पुंसवन संस्कार विधिः ॥ २ ॥

भाषा—अब दूसरा पुंसवन संस्कारकी विधि कहते हैं—

गर्भादष्टमे मासे व्यतीते, पूर्णेषु सर्वदोहदेषु, संजाते साङ्गोपाङ्गे गर्भे, तच्छरीरपूर्णीभानप्रमोदरूपं स्तन्योत्पत्ति-सूचकं पुंसवनकर्म कुर्यात् । तत्र नक्षत्र—वारादि यथा—

" मूल पुनर्वसू पुष्यो, हस्तो मृगशिरस्तथा । श्रवणः कुज—गुर्वर्का, वाराः पुंसवने मताः ॥ १ ॥ "

भाषा—गर्भ रहनेसे आठ मास व्यतीत होने पर, माताके सब दोहले पूर्ण करने पर, और शरीर और अवयवोंसे गर्भ परिपूर्ण हो जाने पर; गर्भका शरीर पूर्ण हो जानेका प्रमोदरूप और माताके स्तनमें दूधकी उत्पत्तिको सूचन करनेवाला पुंसवन संस्कार करना चाहिये । उसमें नक्षत्र वार वगैरह इस तरह—"मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मृगशिर और श्रवण ये नक्षत्र; तथा मंगल, गुरु और रवि ये वार पुंसवन संस्कारमें संमत है ॥१॥ तिथिमें—दूज, तीज, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी या पूर्णिमा संमत है । उस दिन लग्नशुद्धि इस तरह देखना—केन्द्र त्रिकोनमें बृहस्पतिका होना अच्छा है । जितने पापग्रह है, केन्द्र त्रिकोन आठवाँ और बारहवाँ स्थानको छोड कर चाहे जिस स्थानमें बैठे हो—अच्छे है ।

षष्ठे मास्यथवाऽष्टमे तदधिपे वीर्योपपन्ने तिथौ, नैष्टे दृष्टतनौ नृनामभगते पुंलग्नभागेऽपि च ।
धीधर्माख्यचतुष्टयेऽमरगुरौ पापैस्तु तद्व्यायगै—र्मृत्युद्वादशवर्जितैश्च मुनिभिः सीमन्तकर्म स्मृतम् ॥ १ ॥

भाषा—लग्न देखते समय छट्ठा या आठवाँ मास होना चाहिये, अुस मासका स्वामी बलवान् होना चाहिये । चन्द्र भी बलवान् होना चाहिये । सभी ग्रह अिष्ट होने चाहिये । लग्न पर अिष्ट ग्रहकी दृष्टि होनी चाहिये । पुष्य नक्षत्र, पुरुष लग्न और पुरुष नवमांश होना चाहिये । ५–९–१–४–७ या १० वें स्थानमें बृहस्पति होना चाहिये । पापग्रह ३–६–११ वे स्थानमें होने चाहिये । आठवें और बारहवें स्थानमें कोअी भी ग्रह नहीं होने चाहिये । अिसमें प्राचीन ऋषियोंने सीमन्तकर्म करनेका कहा है ।

स–रिक्ता दग्धाः क्रूरा अहस्पृशः अवमाः'षष्ठ्यष्टमी–द्वादश्यमावास्यास्तिथीर्वर्जयित्वा गण्डान्तोपहतनक्षत्रा–ऽशुभ-नक्षत्रवर्जिते दिने पूर्वोक्तनक्षत्र–वारसहिते पत्युश्चन्द्रबले पुंसवनमारभेत ।'

भाषा—रिक्ता, दग्धा, क्रूर, तीन दिनको स्पर्श करनेवाली, टूटी तिथि (क्षय तिथि), षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी और अमावास्या, अिन तिथियोंको छोड कर, गंडांत और अशुभ नक्षत्रको छोड कर पूर्वोक्त नक्षत्र वार सहित दिनमें पतिको चन्द्रमाका बल होने पर पुंसवनका आरंभ करें ।

स–तद्यथा–गुरुः पूर्वोक्तरूपस्तद्वेषः पत्यौ समीपगे असमीपगे वा गर्भाधानकर्मणोऽनन्तरं धारिततद्वस्त्रवेषा तत्केशवेषां गुर्विणीं निशाचतुर्थप्रहरे, सतारके गगने, मङ्गलगानमुखीभिः सभूषणाभिरविधवाभिः अभ्यङ्गोद्वर्तन–जलाभिषेकैः स्नपयेत् । ततश्च जाते प्रभाते तां गुर्विणीं भव्यवस्त्र–गन्ध–माल्य–भूषणभूषितां साक्षिणीं विधाय गृहार्हत्प्रतिमां तत्पतिना वा तद्देवरेण वा तत्कुलयेन वा स्वयं गुरुः पञ्चामृतस्नात्रेण बृहत्स्नात्रविधिना स्नपयेत् । ततः सहस्रमूली-

स्नानं प्रतिमायाः कुर्यात् । तत्तीर्थोदकस्नात्रं च तत्सर्वं स्नात्रोदकं स्वर्ण-रूप्य-ताम्रादिभाजने निधाय शुभासने सुखोपविष्टां गुर्विणीं साक्षीभूतपति-देवरादिकुलजां दक्षिणकरधृतकुशः कुशाग्रविन्दुभिस्तेन स्नात्रोदकेन गुर्विणीशिरः-स्तनोदराणि अभिषिञ्चन्नमुं वेदमन्त्रं पठेत्-

भाषा—सो अिस प्रकार-पूर्वोक्त वेष और स्वरूपवाला गुरु, गर्भवतीका पति समीप रहने पर या नहीं रहने पर, गर्भाधान विधिके बाद जिसने वस्त्रवेष और केशवेष धारन किया है अैसी गर्भवतीको, रात्रिके चौथे प्रहरमें तारे सहित आकाश होवे तब, मांगलिक गीतगान गाती हुई और आभूषणों पहनी हुई सोहागन बिरादरी औरतोंद्वारा तेलका मालिश और उद्वर्तन कराके जलाभिषेकोंसे स्नान करावें । पीछे प्रभात होने पर उत्तम वस्त्र, सुगंधी पदार्थोंका विलेपन, पुष्पमाला और आभूषणोंसे अलंकृत अैसी गर्भवतीको साक्षी करके घरमंदिरमें अरिहंत परमात्माकी प्रतिमाको गर्भवतीके पतिद्वारा देवरद्वारा या अुसके कुलके पुरुषद्वारा खुद वह कुलगुरु पंचामृतस्नात्रसे बृहत्स्नात्रकी विधिसे स्नात्र करावें । अुसके बाद सहस्रमूल चूर्ण युक्त तीर्थजलसे श्री जिनप्रतिमाका स्नात्र करें । अुन सब तीर्थजलके स्नात्रपानीको स्वर्ण चांदी या ताम्रादिके पात्रमें रख कर, गुरु अपने दाहिने हाथमें दर्भको धारन करके, जिसके पति देवर वगैरह कुलके पुरुषों साक्षीभूत बने हैं अैसी शुभ आसन पर सुख-चैनसे बैठी हुअी गर्भवतीको दर्भके अग्र भाग पर रहे हुअे स्नात्रजलके बिंदुओंसे सिर स्तन और उदरके उपर छंटकाव करता हुवा अिस निम्न लिखित वेदमन्त्रको पढ़ें—

जिस शहर या गाँवमें जिनमंदिर न हो वहाँ पेस्तर गर्भाधान संस्कारमें लिखा मुताबिक श्री सिद्धचक्र यन्त्रके आगे श्री-जिनप्रतिमाकी तरह विधि-विधान करें । गुरु उच्च स्वरसे निम्न लिखित वेदमन्त्रको पढ़ें—

" ॐ अर्हँ । नमस्तीर्थङ्करनामकर्मप्रतिबन्धसम्प्राप्तसुरासुरेन्द्रपूजायाऽर्हते । आत्मन् ! त्वमात्मायुःकर्मबन्धमवाप्य मनुष्यजन्मगर्भावासमवाप्तोऽसि । तद् भव जन्म–जरा–मरण–गर्भावासविच्छित्तये प्राप्ताऽर्हद्धर्मः अर्हद्भक्त सम्यक्त्व निश्चल कुलभूषणः । सुखेन तव जन्माऽस्तु । भवतु तव त्वन्मातापित्रो कुलस्याऽभ्युदय । ततः शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, वृद्धि ऋद्धि कान्तिः सनातनी । अर्हँ ॐ ॥ "

भाषा—गुरु उपर बताया हुवा वेदमन्त्रको पढ़ें ।

स–इति वेदमन्त्रमष्टवार पठन् गुर्विणीमभिषिञ्चेत् । ततो गुर्विणी आसनादुत्थाय सर्वजातिफलाष्टक स्वर्ण–रूप्यमुद्राष्टक प्रणामपूर्व जिनप्रतिमाग्रे ढौकयेत् । ततश्च गुरुपादौ प्रणम्य वस्त्रयुग्म स्वर्ण–रूप्यमुद्राष्टक क्रमुकाष्टक सताम्बूल गुरवे दद्यात् । ततो धर्मागारे साधुवन्दन, साधुभ्यो यथाशक्ति शुद्धाऽन्न–वस्त्र–पानदानं, कुलवृद्धेभ्यो नमस्कारः । ततः स्वकुलाचारेण कुलदेवतादिपूजनम् ।

भाषा—गुरु इस वेदमन्त्रको आठ दफे पढता हुवा गर्भवतीको स्नात्रजलसे अभिषेचन करें–छटकाव करें । उसके बाद गर्भवती आसनसे उठ कर सब तरहके आठ आठ फल, सोने और चादीकी आठ आठ मुद्रा यानि आठ सोनामहोर और आठ रूपिये नमस्कारपूर्वक श्रीजिनप्रतिमाके आगे रक्खे । उसके बाद गुरुके चरणोंको नमस्कार करके दो वस्त्र, सोने–रूपेकी आठ आठ मुद्रा, और ताम्बूल सहित आठ सुपारी गुरुको देवें । उसके बाद पोषधशालामें जाकर साधु–मुनिराजको वंदन करें, और उनको अपनी शक्तिके अनुसार शुद्ध आहार वस्त्र और पात्रका दान देवें । कुलवृद्धोंको नमस्कार करे, और अपने कुलाचार मुताबिक कुलदेवताका पूजन करें ।

॥ २३ ॥

पुंसवन संस्कारमें क्या क्या चीज़ चाहिये ? सो कहते हैं—

पञ्चामृतं स्नात्रवस्तु, स्त्रीवस्त्राणि नवानि च । नवीनं वस्त्रयुग्मं च, स्वर्णमुद्राष्टकं तथा ॥ १ ॥
रूप्यमुद्राष्टकं चैव, तयोरष्टाष्टकं पुनः । षोडशाख्या फलजातिः, कुशस्ताम्बूलमुत्तमम् ॥ २ ॥
गन्धाः पुष्पाणि नैवेद्यं, सधवा गीतमङ्गलम् । वस्तु पुंसवने कार्यं, संस्कारप्रगुणं परम् ॥ ३ ॥

भाषा—पंचामृत १, स्नात्रकी वस्तु २, स्त्रीके नये वस्त्र ३, नये दो वस्त्र ४, सोनेकी आठ मुद्रा–सोनामहोर ५, ॥ १ ॥ रूपेकी आठ मुद्रा–रूपिये ६, फिर सोनेकी आठ और रूपेकी आठ मुद्रा यानि आठ सोनामहोर और आठ रूपिये अैसी सोलह मुद्रा ७, फलकी जाति यानि सब जातिके फल, ८, दर्भ ९, उत्तम ताम्बूल १०, ॥ २ ॥ सुगंधी पदार्थ ११, पुष्प १२, नैवेद्य १३, सोहागन स्त्रियाँ १४, और मंगलगीत १५; अितनी वस्तु पुंसवन संस्कारमें होनी चाहिये ॥ ३ ॥

पुंसवन संस्कारके दिन जिनमंदिरमें नैवेद्यका थाल भेजे, और अंगी–रोशनी करवाकर धर्मकी तरक्की करें । शक्ति हो तो अुस रोज़ जिनमंदिरमें पंच कल्यानककी पूजा पढावें । जो जो औरतें गीतगान करनेको आयी हो अुनको नारियल या मिठाअी मुआफिक अपनी अिज्जत अनुसार बाँटे, और शामके वख्त जात–बिरादरियोंको खाना खिलावें । जिनको पुंसवन संस्कारके खान–पानकी कसम हो वे वेशक खाना न खावें ।

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ पुंसवनसंस्कारकीर्तनरूपा द्वितीया कला ॥ २ ॥

॥ तृतीया कला ॥ जन्म संस्कार विधि ॥ ३ ॥

स–जन्मकाले पूर्णेषु मास–दिनेषु गुरुर्ज्योतिषिकसहित सूतिकागृहासन्नगृहे एकान्ते निष्कलकलके स्त्री–बाल–प्रमुखप्रचाररहिते सघटिकापात्रे सदाऽवहितचेता पञ्चपरमेष्ठिजापपरायणस्तिष्ठेत्। अत्र च दिने पूर्वं न तिथिवार–नक्षत्रादि विलोकयते, जीवकर्म–कालायत्तमेतत्। यतः—

"जन्म मृत्युर्धनं दौस्थ्यं, स्वस्वकाले प्रवर्तते। तदस्मिन् क्रियते हन्त, चेतश्चिन्ता कथं त्वया? ॥ १ ॥

उक्तं चागमे–श्रीवर्धमानस्वामिवाक्यम्—

"समय जम्मणकाल, काल मरणस्स कम्मइ सुरनाह। सपत्तजोग हुन्ति, न अइसया वीअरापहिं ॥ २ ॥

भाषा—जब बालकका जन्मसमय आवे तब, मास दिन वगैरह पूर्ण होने पर, ज्योतिषी सहित गुरु सूतिकागृहके नजदिक घरमे अेकात स्थानमे, जहाँ कोलाहल न हो, और जहाँ स्त्री बालक पशु वगैरहका विशेष आना–जाना न हो अैसे स्थानमें बैठा हुवा समय देखनेके लिये घडियालमे बराबर अुपयोग सहित चित्तवाला हो कर पञ्चपरमेष्ठिके मन्त्रके जापमे तत्पर रहें। अिसमे पहिले तिथि वार और नक्षत्रादि न देखना चाहिये, क्यों कि जन्म तो कर्म और कालके आधीन है। कहा है कि–
"जन्म, मरण, धन और दारिद्र्य, ये अपने अपने समयमे प्रवर्तते है, तो पीछे हे चित्त! अिस विषयमे तू क्यों चिन्ता करता है? ॥ १॥"

आगममें भी श्री वर्धमानस्वामीने कहा है कि—" हे सुरनाथ ! जन्मका काल और मरणका काल, ये दोनों कर्मके अनुसार अुनके योग आवें तब होते हैं; अुनमें वीतराग भगवान्‌के भी अतिशय उपयुक्त नहीं होते ॥ १ ॥ "

सं–अतो जाते बालके स गुरुः समीपस्थो ज्यौतिषिकं जन्मक्षणपरिज्ञानाय निर्दिशेत् । तेनाऽपि सम्यग् जन्मकालः करगोचरं विधायाऽवधार्यः । ततश्च बालकपितृ–पितृव्य–पितामहैरच्छिन्ने नाले गुरुर्ज्यौतिषिकश्च बहुभिर्वस्त्र-भूषण–वित्तादिभिः पूजनीयः, छिन्ने नाले सूतकम् । गुरुर्बालकपितृ–पितामहादीनाशीर्वादयति । यथा–

" ॐ अर्हं । कुलं वो वर्धताम् । सन्तु शतशः पुत्र–पौत्र–प्रपौत्राः । अक्षीणमस्त्वायुर्धनं यशः सुखं च । अर्हं ॐ ॥"

इति वेदाशीः । तथा चोक्तम्–

" यो मेरुशृङ्गे त्रिदशाधिनाथै-र्दैत्याधिनाथैः सपरिच्छदैश्च ।
कुम्भामृतैः संस्नपितः स देव, आद्यो विदध्यात् कुलवर्धनं च ॥१॥

ज्यौतिषिकाशीर्वादो यथा–

आदित्यो रजनीपतिः क्षितिसुतः सौम्यस्तथा वाक्पतिः, शुक्रः सूर्यसुतो विधुन्तुदशिखी श्रेष्ठा ग्रहाः पान्तु वः ।
अश्विन्यादिभमण्डलं तदपरो मेषादिराशिक्रमः, कल्याणं पृथुकस्य वृद्धिमधिकां सन्तानमप्यस्य च ॥ १ ॥ "

भाषा—बालकका जन्म होने पर समीपमें रहा हुवा गुरु अुसी वक्त ज्योतिषीको जन्मका समय जाननेकी आज्ञा करें । वह ज्योतिषी भी सम्यक् प्रकारसें जन्मकाल हस्तगत करके निश्चय कर लेवें । जिस समयमें बेटा–बेटीका जन्म हो, लाज़िम

सं०-ततोऽवधारितजन्मलग्ने ज्योतिषिके स्वगृहं गते, गुरुः सूतिकर्मणे कुलवृद्धाः सूतिकाश्च निर्दिशेत्। अन्यगृहस्थित एव बालस्नपनार्थं जलमभिमन्त्र्य दद्यात्। जलाऽभिमन्त्रणमन्त्रो यथा–

भाषा—अुसके बाद जन्मलग्न निश्चय करके ज्योतिषी अपने घर जाने पर, गुरु सूतिकर्मके लिये कुलवृद्धा स्त्रियोंको और प्रसूतिकर्म करनेवाली औरतोंको निर्देश करें, और आप दूसरे घरमें रहा हुवा ही बालकको स्नान करानेके लिये पानीको मन्त्र कर देवें। पानीको मन्त्रनेका मन्त्र अिस प्रकार है—

"ॐ अर्हं। नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः।
क्षीरोदनीरैः किल जन्मकाले, यैर्मेरुशृङ्गे स्नपितो जिनेन्द्रः।
स्नानोदकं तस्य भवत्विदं च, शिशोर्महामङ्गल-पुण्यवृद्ध्यै ॥ १ ॥"

भाषा—अिस मन्त्रसे गुरु पानीको अभिमन्त्रित करें। अिसका भावार्थ अैसा है कि—"ॐ अर्हं परमात्माका स्मरण करते हैं। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, अुपाध्याय और सर्व साधु-मुनिओंको नमस्कार करते हैं। जिनेन्द्रके जन्मसमयमें मेरुपर्वतके शिखर पर क्षीरसमुद्रके जलसे जिस जिनेन्द्रको स्नान कराया, अुसका यह स्नात्रजल अिस बालकको महामंगल और पुन्यकी वृद्धिके लिये हो ॥ १ ॥"

सं०-अनेन सप्तवेलं जलमभिमन्त्रयेत्। तेन जलेन कुलवृद्धाः स्नपयन्ति बालम्। नालच्छेदश्च स्वकुलाचारेण सर्वेषाम्। ततो गुरुः स्वस्थानस्थ एव चन्दन-रक्तचन्दन-बिल्वकाष्ठादि दग्ध्वा भस्म कुर्यात्। तद् भस्म श्वेतसर्षप-लवणमिश्रितं पोट्टलिकायां बध्नीयात्। रक्षाभिमन्त्रणमन्त्रः–

भाषा—गुरु अिस मन्त्रद्वारा जलको सात दफे अभिमन्त्रित करें । अुस जलसें कुलवृद्धा स्त्रियाँ बालकको स्नान करावें, और अपने कुलाचारके अनुसार नालच्छेद करें । प्रसूतिवाली औरत भी गरम पानीसें स्नान करें, जिससे तमाम बदन साफ हो जाय । अगर कमजोरीके सबब स्नान न कर सकें तो दूर्वासे बदन पर पानी छाट कर भावशुद्धि कर लेवें । अुसके बाद गुरु अपने ही स्थानमें बैठा हुवा चदन, लालचदन और बिल्वकाष्ठादि जला कर भस्म करें । अुस भस्मको सफेद सरसव और लवणसे मिश्रित करके रक्षापोट्टलिका बाधे । अुस रक्षापोट्टलिकाको निम्न लिखित मन्त्रसे सात दफे अभिमन्त्रित करें—

"ॐ ह्रीँ श्रीँ अम्बे जगदम्बे शुभे शुभङ्करे, अमु बालं भूतेभ्यो रक्ष रक्ष, ग्रहेभ्यो रक्ष रक्ष, पिशाचेभ्यो रक्ष रक्ष, वेतालेभ्यो रक्ष रक्ष, शाकिनीभ्यो रक्ष रक्ष, गगनदेवीभ्यो रक्ष रक्ष, दुष्टेभ्यो रक्ष रक्ष, शत्रुभ्यो रक्ष रक्ष, कार्मणेभ्यो रक्ष रक्ष, दृष्टिदोषेभ्यो रक्ष रक्ष, जयं कुरु कुरु, विजयं कुरु कुरु, तुष्टिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु, कुलवृद्धिं कुरु कुरु । ॐ ह्रीँ ॐ भगवति श्रीअम्बिके नमः ।"

भाषा—गुरु अिस मन्त्रसे रक्षापोट्टलिकाको सात दफे अभिमन्त्रित करें ।

अनेन सप्ताभिमन्त्रिता रक्षापोट्टलिका कृष्णसूत्रेण बद्धा सलोहखण्डा सवरुणमूलखण्डां सरक्तचन्दनखण्डां सवराटिकां कुलवृद्धाभिः शिशुहस्ते बन्धयेत् ।

भाषा—अिस मन्त्रसे सात दफे अभिमन्त्रित की हुअी रक्षापोट्टलिको काले सूतसे बाधे । पीछे लोहेका टुकडा, वरुण-मूलका टुकडा, रक्तचदनका टुकडा और कौडीके साथ अुस रक्षापोट्टलिको गुरु कुलवृद्धा स्त्रियोंद्वारा बालकके हाथमें बधावे ।

॥ २९ ॥

जन्मसंस्कारमें क्या क्या तैयार रखना चाहिये ? सो कहते हैं—

सांवत्सरो घटीपात्रं, चन्दनं रक्तचन्दनम्। समीपैकान्तगेहं च, सिद्धार्थ-लवणं तथा ॥ १ ॥
कौशेयं कृष्णसूत्रं च, कपर्दी गीतमङ्गलम्। लोह-रक्षा तथा वस्त्रं, दक्षिणार्थं धनानि च ॥ २ ॥
सूतिकाः कुलवृद्धाश्च, जलं सर्वजलाशयात्। आनेयं जन्मसंस्कारे, एतद्वस्तु विचक्षणैः ॥ ३ ॥

भाषा—ज्योतिषी, घडियाल, चंदन, लालचंदन, समीपमें अेकांतवाला घर, सरसव, लवण, ॥ १ ॥ रेशमी वस्त्र, काला सूत, कौडी, गीतमंगल, लोहा, रक्षा, वस्त्र, दक्षिणा देनेके लिये धन, ॥ २ ॥ सूतिकाकर्ममें कुशल औरतें (सूयाणी), कुलवृद्धा स्त्रियाँ, और सब जलाशयसे लाया हुवा पानी; विचक्षण पुरुषोंने जन्मसंस्कारमें अितनी वस्तु लानी चाहिये-तैयार रखनी चाहिये ॥३॥

अथ कदाचिदश्लेषा-ज्येष्ठा-मूलेषु गण्डान्ते भद्रायां शिशोर्जन्म भवति, तच्च तस्य तत्पित्रोः तस्य कुलस्य च दुःख-दारिद्र्य-शोक-मरणदम्। अत एव पिता कुलज्येष्ठश्च तद्विधाने अकृते शिशुमुखं नाऽवलोकयेत्। तद्विधानकरणं प्रक्रमविशेषेण शान्तिकविधौ कथयिष्यते।

भाषा—बालकका जन्म कदाचित् अश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल, गंडान्त या भद्रामें हो तो वह जन्म बालकको, बालकके माता-पिताको, और अुसके कुलको दुःख दरिद्रता, शोक और मरणादि कष्ट देता है। अिसी कारणसें अिस अुपद्रवकी शान्तिके लिये शान्तिकविधिमें कहा हुवा विधि-विधान न करें वहाँ तक बालकका पिता और कुलमें जो बडा हो वह बालकका मुख न देखें। अिसका विधि-विधान प्रकरणविशेषसें आगे शान्तिकविधिमें कहेंगे।

१ संतानका जन्म होने पर अपनी शक्तिके अनुसार राजा सेठ वगैरा सभी गृहस्थी अपने कुलक्रम मुताबिक अुत्सव करें।

जिनमंदिरमें पूजा अंगी और रोशनी कराना । गुरुपूजा और ज्ञानपूजा करना । अनाथ और गरीबोंको दान देना । जिसने धनको पा कर सुपात्रोंमें दान नहीं दीया अुसका धन पाना व्यर्थ है ।

२ जिसके घर बेटा पैदा हुआ हो अुसके घर दस दिनका अशौच–सूतक, यानि अुस घरकी यनी रसोअी खानेवाला शख्स दस दिन तक जिनप्रतिमाकी पूजा न करें, दूसरे स्पर्श करें अुसमें कोअी हर्ज नहीं । धर्मशास्त्र और स्थापनाचार्यजीको छुअे नहीं । मुनिराज और साध्वीजी महाराजको अपने हाथसे खान–पान न दे, सबब कि अशौच ठहरा । स्तवन, स्वाध्याय, सामायिक और प्रतिक्रमणादि धार्मिक क्रियाअें मनमें करें तो कोअी दोष नहीं । जो मनुष्य अुस घरकी यनी रसोअी न खावें, और दूसरेके घर खाना खावें, तो चाहे अुस औरतका पति क्यों न हो ?—अुस लडकेका पिता ही क्यों न हो ? अुसको अशौच–सूतक नहीं लगता । अगर दूसरा घरका खान–पान करता हो तो अुसको सूतक नहीं लगता । यह जिनपूजन, प्रतिक्रमण, और स्वाध्यायादि धार्मिक क्रियाअें करें, और मुनिजनोंको आहारादिका दान देवें, कोअी हर्ज नहीं । ३ जिसके घर लड़की पैदा हुअी हो अुसके घर ग्यारह दिनका सूतक । ४ सगे भाअीके घर बेटा–बेटीका जन्म हुआ हो, और नजदिकमें घर होने पर खान–पानकी चीजोंका मेल–मिलाप रहता हो तो अुसको पांच रोजका सूतक, अगर मेल–मिलाप न हो तो बिलकुल सूतक नहीं । ५ दूसरे गांव शहर या देशमें अपनी औरतको लड़का या लड़कीका जन्म हुआ हो तो जिस रोज सुने अुसी अेक रोजका सूतक । ६ खास रहनेके घरमें किसी दासीको लड़का या लड़की हो तो चोवीस पहरका यानि तीन दिनका सूतक । ७ गौ, भैंस, घोडी, उठणी या बकरीको अपने खास रहनेके घरमें बच्चा जन्में तो अेक रोजका सूतक । ८ जितने महिनेका गर्भ गिरे यानि जितने महिनेकी गर्भपात हुअी हो अुसके घर अुतने दिनका सूतक । ९ अगर कोअी अैसा खयाल करें कि हमारे घर सूतक होनेमें जिनमंदिरमें अंगी–रोशनी कैसे करावें ? तो अुसका खयाल गलत है । मगर रुपिये भेज कर जिनमंदिरमें बेशक अंगी–रोशनी करा सकते हो, अिसमें कोअी हर्ज नहीं ।

॥ बयान जन्मग्रहोंका, और तीर्थंकर श्री महावीरस्वामीके जन्मग्रह ॥

कअी लोग ज्योतिप शास्त्रको जुठा बतलाते हैं, मगर यह अुनकी गलती है। ज्योतिप हर्गिज जुठा नहीं है, बहुत सच्चा और काबिल मंजुर करने योग्य है। मगर शर्त यह है कि, वख्त सच्चा होना चाहिये, और ज्योतिपी भी ज्योतिप शास्त्रका पूरा जानकार होना चाहिये। चन्द्र-सूर्य किसीका भला या बुरा नहीं करते, क्यों कि वे खुद स्वर्गमें रहनेवाले बडे देव हैं; अुनको तुम्हारी भलाअी या बुराअीसे कोअी गर्ज नहीं। जैसे तुम किसी कामके लिये चलते हो, अुस वख्त अगर अचानक सुरीले बाजोंकी अवाज सुनाअी देवें, या डंका-निशान सामने मिल जायं तो जान जाते हो कि हमारी फतेह होगी। अिसी तरह जब कोअी लडका पैदा हुआ तब आस्मानमें चन्द्र सूर्य वगैरा ग्रह अुमदा तौरसे चल रहे हो तो जान लो कि लड़का नसीबदार होगा। चन्द्र सूर्य वगैरह ग्रह भले-बुरेके द्योतक है, कारक नहीं। ज्ञानी लोगोंने अिनके ज़रीये अेक तरिका निकाला, जिसको जाहिरातमें ज्योतिप कहा गया। कअी ग्रन्थोंमें ग्रहोंको भले-बुरेका बनानेवाला फरमाया है, मगर सिर्फ यह कहनेकी रीति है; असलमें ग्रह भले-बुरेका कारक नहीं, परंतु द्योतक है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव और प्रतिवासु-देव अैसे नसीबदार हुवे कि दुनियामें अुनकी सानी कोअी नहीं हुवा, यह अुन्हींके जन्मग्रहोंकी स्थिति देखकर बयान कर सकते हो। देखो! हम आगे अैसे नसीबदार महर्पिके जन्मग्रह दिखलाते है कि जिसको देखकर तुम खुद कहोगे कि बेशक! वे अिसी लाअिक थे। मुल्क मगधके क्षत्रियकुंड नगरमें सिद्धार्थ राजाके घर जिनका जन्म हुवा था। अुमर अुनकी ७२ वर्पकी थी। चैत सुदि १३ के रोज मकर लग्नके वख्त आधी रातको अिनका जन्म हुवा। आगे देख लो! अिनके जन्मग्रह भी दिखलाये जाते हैं।

॥ जन्म कुंडली ॥

११ १ १२ १० के म ८ १ सू बु ७ श २ गु ४ रा बृ ६ च ३ ५
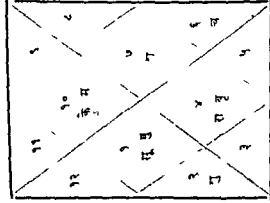
तीर्थंकर श्री महावीरस्वामीके जन्मग्रह ।

देखो ! अिसमे चारो केन्द्र शुभ ग्रहोंसे भरे है । केन्द्र त्रिकोणमें सब ग्रहोंका आवाना निहायत शुभ है । लग्नका मालिक दसवें स्थानमें, दसवेंका मालिक पाचवें स्थानमें, और पाँचवका मालिक भी पाँचवे स्थानमें है । यह त्रिखंड योग हुवा, यानि स्वर्ग मृत्यु और पातालमें पैदा हुवे लोग अुनकी खिदमत करें। शुक्र स्वगृहमें, और दर्शनावरणीय कर्मको दूर होनेका सूचक चन्द्रमा धर्मभुवनमे पडा है, जिससे बडे धर्मात्मा होना सबुत हुवा । लग्नमें शुभ ग्रह हो तो हमेशा दौलत बनी रहें। चौथे भुवनमें शुभका ग्रह हो तो हमेशा दौलत मिलती रहें, सातवें भुवनमें शुभका ग्रह हो तो निहायत अुमदी ओरत मिलें, और दसवें भुवनमें अुच्चका ग्रह हो तो राजयोग मिलें । ये सब योग तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीके मौजुद थे। अुन्होने तीन लोगका राज्य पाया, ज्ञान पाया, और अखीरमें मोक्ष पाया, जिससे ज्यादे बात क्या होगी जो अुन्होंने न पाओी हो ? ।

बयान जन्मग्रहोका आमलोगोके लिये–

१ लग्नेश-धनेश लग्नमें पडे हो तो वह शख्स दौलतमंद होगा। लग्नेश लग्नमें या धनेश धनमें हो, या लग्नेश-धनेश धर्म भुवनमें पडे हो तो भी कहो अुसकी दौलत झलाझल होगी । २ चन्द्र, बुध, बृहस्पति और शुक्र, ये चारो शुभ ग्रह जिसके

केन्द्रमें पडे हो अुसको हमेशां फायदा होता रहें । सूर्य, मंगल, शनि और राहु जिसके त्रिकोणमें पडे हो अुसको हमेशां नुकसान होता रहे, अुसके पास दौलत अिकट्ठी न होवे । ३ जिसके कोअी भी शुभ ग्रह उच्च, मित्रक्षेत्री या स्वगृही हो कर लग्न या धनभुवनमें पडा हो, अुसको कहो फायदा जरूर होता रहेगा । ४ जिसके धनभावमें कोअी अुच्चका ग्रह पडा हो, या ग्यारहवें भुवनमें अुच्चका कोअी ग्रह हो, या जिसको बलिष्ठ चन्द्रमा ग्यारहवें भावमें पडा हो: अुसको भी कहो हमेशां फायदा होता रहेगा । ५ लग्नेश–लग्नमें पडा हो, लाभेश उदय हो, या अपने अुच्चको जानेवाला हो; अुसको भी कहो तरह–तरहकी दौलत मिलती रहेगी । ६ लाभभुवनमें जिसके शुक्र बृहस्पति चन्द्रमा या अुसका स्वामी खुद लाभेश पडा हो, उसको कहो हमेशां फायदा होगा, दूसरेकी दौलतका स्वामी बनेगा यानि गोद जायगा । ७ लग्नमें चौथे भुवनमें और पांचवें स्थानमें जिसके अुचके ग्रह पडे हो, और अुनको शुभ ग्रह देखते हो, या मीनका शुक्र होकर लाभमें पडा हो; अुसको गाँव, शहर प्रांत या देश जागीरमें मिलें । ८ सिंह लग्नमें लाभभुवन मिथुन आया हो, अगर अुसमें चन्द्रमा बैठा देखो; अुसको कहो फायदा थोडा होगा, सबब कि चन्द्रमा बुधका निहायत दुश्मन है । ९ लाभभुवनमें कोअी भी शुभ स्वगृही या मित्रक्षेत्री ग्रह अुदित हो कर पड़ा हो, चन्द्रमा अुसको देखता हो, तो कहो अुसको हजारोंका फायदा हमेशां होता रहें, अिसमें शक नहीं । १० जिसको लाभभुवन चर राशिका हो, और शुभ ग्रह करके युक्त हो, या बलिष्ठ चन्द्रमा अुसमें बैठा हो, अुसको भी कहो हमेशां चमन और चैन रहेगी; किसी बातकी फिक्र न होगी । ११ जहाँ कोअी योग फायदेका न देखो वहाँ देख लो कि नववें भुवनको कोअी भी शुभग्रह देखता है या नहीं ? । अगर देखता हो तो जान लो कि अिसको जरूर फायदा होता रहेगा । जिसके कोअी भी ग्रह केन्द्र और त्रिकोणमें बैठे हो अुसको भी कहो, हमेशां फायदा होता रहेगा । १२ बारह भावोंमें जिस जिस भाव पर उच्च मित्रक्षेत्री या स्वगृही ग्रह बैठे हो, अुस अुस भावके जरीये अुसको सुख–चैन और धन–दौलत मिलती रहें । जिस जिस भाव पर नीच अस्त और शत्रुक्षेत्री ग्रह बैठे हो, अुस अुस भावकी अुसको हानि होती रहें ।

॥ बयान राजयोगका ॥

१३ सभी ग्रहोंकी दृष्टि लग्न पर आती हो, और लग्नेश अुच्च मित्रक्षेत्री या स्वगृही हो अैसे वख्त पर जन्मा हुवा शख्स राजा बनें । १४ सभी ग्रह केन्द्रमें पडे हो, लग्नेश अुच्च हो और लग्नको देखता भी हो, अैसे वख्त पर जन्मा हुवा शख्स चक्रवर्ती राजा हो । आज-कल चक्रवर्ती वासुदेव या प्रतिवासुदेव नहीं रहे, अगले जमानेमें जब कि नसीबा तेज था अैसे बडे राजे होते थे । आज-कल जो राजा-बादशाहें दीख पडते हैं वे अुनकी अपेक्षासें कमजोर और छोटे हैं । १५ धनेश तुर्येश और भाग्येश अुदय हो, और तीनों मिल कर चौथे भुवनमें बैठे हो, अैसे वख्त पर जन्मा हुवा शख्स कोटि-ध्वज होगा । आज-कल अैसे दौलतमंद भी बहोत कम रह गये हैं । १६ भाग्येश और चन्द्रमाके बीचमें या लग्नेश और भाग्येशके बीचमें जिस वख्त सभी ग्रह पडे हो, अैसे योगमें जन्मा हुवा शख्स हमेशा आराम और चैन करें, कोअी दिन अुसे तकलीफ न हो । १७ लग्नमें बृहस्पति और राहु, चौथे भुवनमें शुक्र, सातवें चन्द्रमा, और दसवें सूर्य जिसको पडे हो वह शख्स बडा नसीबदार होगा । १८ लग्नमें बृहस्पति, चौथे स्थानमें चन्द्रमा, आठवें शुक्र, और दसवें सूर्य स्वगृही या मित्रक्षेत्री हो कर जिसके पडे हो, अुसको सारी उम्र सुख-चैन रहे, हमेशा फतेह हो, और अुसकी अिज्जतमें धब्बा कभी न लगें । १९ लग्नेश वृषके नवांशमें अुदय हो, और भाग्येश भाग्यको देखता हो, अैसे वख्त पर जन्मा हुवा शख्स हमेशा अैश-आराम भोगे । २० लग्नेश वृषके नवांशमें अुदय हो, अपने अुच्च स्थानको जानेवाला हो, और लग्नको देखता भी हो, अैसे वख्त पर जन्मा हुवा शख्स अुम्रभर दौलतमंद बना रहे । २१ चौथे भुवनमें जितने शुभ ग्रह पडे हो अच्छे जानो, अगर दूसरे शुभग्रह अुनको देखते हो तो और भी अच्छे है । २२ लग्नके या लग्नेशके दूसरे या बारहवें स्थानमें सूर्य और चन्द्रमा पडे हो तो तोरणयोग हुवा । यह योग निहायत अुमदा है, हरसुरत फायदा पहुचावें । २३ सजीवनीविद्या शुक्रके

ताल्लुक है, बृहस्पतिके नहीं; अिस लिये बृहस्पतिसे शुक्र बलवान् कहा गया। जिसको शुक्र स्वगृही हो कर चाहे जिस भुव-नमें बैठा हो, निहायत फायदेमंद होगा। वह शख्स अैश-आराम ज्यादे भोगे, और स्त्रीवल्लभ होवे। २४ बृहस्पति जिसके स्वगृही हो कर चाहे जिस भुवनमें बैठा हो, निहायन अुमदा है। अुसके दिलमे देव-गुरुकी भक्ति बनी रहे; और अुसको आराम-चैन हमेशां बने रहे। २५ जिस शख्सकी जो जन्मराशि हो, अुस राशिका स्वामी जब जब अुच्च या मुदित हो; तब तब अुसको जरूर फायदा मिलें। २६ जिस भावमें लग्नेश बैठा हो अुस भावका स्वामी जब जब अुसको पूर्ण दृष्टिसे देखे तब तब अुसको जरूर फायदा होवे। २७ जिसको राशिका स्वामी और धनभावका स्वामी लग्नमें धनभावमें या त्रिको-णमें पडे हो, या आपसमें देखते हो, तो अुसको भी हमेशां फायदा होता रहे; कोअी रौज़ भी रोटियोंसे मोहताज न रहें।

॥ बयान औरत पानेका ॥

२८ जिसका लग्नेश लग्नमें पडा हो अुसकी औरत अुसके कहनेमें चलें। और जिसका लग्नेश सप्तम भावमें पडा हो, वह खुद औरतके कहनेमें चलें। २९ जिसका लग्नेश सप्तममें और सप्तमेश भी सप्तममें पडा हो अुसके और अुसकी और-तके-आपसमें बडा प्रेम रहें। सप्तमेश लग्नमें और लग्नेश सप्तममें पडा हो तो भी निहायत अुमदा प्रेम रहें। ३० लग्नेश-सप्तमेश लग्नमें या सप्तमेश-लग्नेश सप्तममें पडे हो तो भी दोनोंमें निहायत अुमदा प्रेम रहें अैसा कहो। ३१ जिसके सप्तमभावमें अुच्चका ग्रह बैठा हो अुसे निहायत खबसुरत औरत मिलें। जिसके सातमभावमें गुरु शुक्र चन्द्र या बुध अिन-मेंसे कोअी भी ग्रह अुच्चका होकर पडा हो, अुसे भी खूबसुरत औरत मिलें; चाहे खुद दरिद्रीकी औलाद क्यों न हो?। ३२ जिसके सप्तमभावमें राहु पडा हो अुसको औरतका सुख नहीं। विवाहते ही मर जाय, या जीती रहें तो तकलीफ देवें। ३३ जिसके सातमभावमें या चतुर्थभावमें सूर्य, मंगल, शनि, राहु, या केतु; अिनमेंसे कोअी भी ग्रह पडा हो; और शुक्र

नीच अस्त या शत्रुक्षेत्री होकर चाहे जहाँ पडा हो, अुसको न विवाही हुअी, न रक्खी हुअी, कोअी भी औरत न होगी। अुसको जींदगी तक औरतकी चाहना घनी रहें, मगर मिले नहीं। ३४ जिसके सप्तमभाव या चतुर्थभावमें शुभ या अशुभ कोअी भी ग्रह पडा हो, अुसको घरकी और परायी दोनों तरहकी औरतसे प्रेम रहेगा। ३५ जिसके गुरु, शुक्र, चन्द्र या बुध, ये चारों शुभग्रह मित्रक्षेत्री होकर चाहे जहाँ पडे हो, अुसको निहायत अैसी खूबसुरत औरत मिले कि दूसरीसें निगाह भी न मिलावें। जिसके ये चारों ग्रह शत्रुक्षेत्री हो, अुसको परायी औरतसें प्रेम और घरकी औरतसें लडाअी-टंटा रहें। ३६ जिसके सप्तमभावमें सूर्य मंगल शनि राहु या केतु, अिनमेंसे कोअी भी क्रूरग्रह पडा हो, और चतुर्थ स्थानमें गुरु शुक्र चन्द्र या बुध, अिनमेंसे कोअी शुभग्रह पडा हो, अुसको अपनी विवाही हुअी और दूसरी रक्खी हुअी-दोनों तरहकी औरतोंसें सुख रहें, हजारह रुपिये अिसी काममें अुड़ा देवें। ३७ चन्द्रमा या लग्नसें सातवें सूर्य हो तो अुसको अच्छी औरत न मिलें, मंगल हो तो बडी मिजाजन औरत मिलें, बुध हो तो बदचलनवाली औरत मिलें, बृहस्पति हो तो नेकचल-नवाली औरत मिलें, शुक्र हो तो अुस पर सौत आवे अैसी औरत मिलें, और शनि हो तो बांझ औरत मिलें। ३८ जिसको सप्तमभावमें गुरु या शुक्र पडा हो तो अुसको निहायत अुमदी औरत मिलें। सप्तमभावमें क्रूर ग्रह पड़ना बुरा और शुभ पड़ना अच्छा है।

॥ बयान औरतके जन्मग्रहोंका ॥

१ कर्क लग्नमें जन्मी हुअी औरत अैश-आराम ज्यादे भोगे। जिसके लग्नमें राहु मंगल और सूर्य अेकसाथ पड़े हो वह कुच्छ दिन बाद विधवा होवे। २ जिसके वह जल्दी विधवा हो जाय। जिसको अेकीला राहु मंगल या सूर्य पडा हो वह गुप्त व्यभिचार करें, मगर जाहिरातमें सती कहलावें। ३ जिसके सप्तमभावमें सूर्य मंगल या धनभुवनमें शुक्र पड़ा हो

शनि पडा हो, और शुभग्रह अुसको देखते हो वह अपने पतिको छोड़कर चली जाय, और घर-घर डोलती फिरें । ४ जिसके सप्तमभावमें मंगल नीचका होकर पडा हो, या शनि अस्त होकर बैठा हो, और अुसके साथमें राहु भी शामील हो; वह उम्रभर ब्याह न करें, और अपने मिजाजमें बनी रहें । ५ जिसके सप्तमभावमें अेक क्रूरग्रह पडा हो, अुसको अपने पतिसे हमेशां लडाओ-झघड़ा रहें । जिसके चारों ग्रह-सूर्य मंगल शनि और राहु अेक साथ पड़े हो, फिर अुसका तो कहना ही क्या ? बात-बातमें लडाओ और टंटा-फिसाद करें, यहां तक कि अपने घरवालेंको छोड कर दूसरेसें दोस्ती करें । ६ जिसके सप्तमभावमे कोओ शुभ ग्रह अपने नवांशका होकर पड़ा हो वह हमेशां अैश-आराममें मस्त रहें ।

७ जिसके मेष सिंह वृश्चिक मकर और कुंभ, ये लग्न हो, और लग्नेश लग्नको न देखता हो; वह अपने घरवालोंसे हमेशां लड़ती रहें, और बातबातमें जिद चलावें । ८ जिसको कर्कराशिका मंगल हो, फिर अुसका तो कहना ही क्या ? अिस औरतको अपने पतिके साथ अेक दिन भी लड़ाओ-झघड़ा विना चैन नहीं । ९ जिसके बृहस्पति और शुक्र शत्रुक्षेत्री हो, और लग्नमें चारों क्रूरग्रहमेंसें अेक या दो पडे हो, अैसे लग्नमें जन्मी हुओ कन्या विषकन्या जानना । १० जिसके आठवें या बारहवें मंगल या कोओ भी क्रूरग्रह पड़ा हो, और लग्नमें राहु हो वह जल्दी विधवा हो जाय; अुसको भोगान्तराय कर्मका सख्त अुदय जानना । ११ जिसके लग्नमें मंगल सूर्य और शनि अेक साथ पडे हो, वह हमेशां तकलीफ भोगे, अुसको कोओ दिन चैनका न गुजरें । १२ जिसके शुभग्रह स्वक्षेत्री या अुच्चके हो, या अुच्चके नवांशमें हो, वह हमेशां अैश-आराम भोगे, और अुमदा महल पर फूलोंकी सेजमें सोवें । कहा है कि—

" लग्ने तुङ्गे सदा लक्ष्मी-स्तुर्ये तुङ्गे धनागमः । तुङ्गजायाऽस्तगे तुङ्गे, खे तुङ्गे राज्यसंभवः ॥ १ ॥
लाभे तुङ्गे महालाभो, भाग्ये तुङ्गे च दीक्षितः । "

भाषा—" यदि पहले स्थानमे शुभ राशिका ग्रह आया हो तो हमेशा लक्ष्मी मिलें, चौथे स्थानमे शुभ राशिका ग्रह आया हो तो धनकी आमदानी होवे, सातवे स्थानमे शुभ राशिका ग्रह आया हो तो शुभदा स्वभाववाली भाग्यशाली औरत मिलें, दसवें स्थानमे शुभ राशिका ग्रह आया हो तो राज्यकी प्राप्तिका संभव है । ग्यारहवें स्थानमें उच्च राशिका ग्रह आया हो तो महान् लाभ होवे, और नवमे स्थानमें उच्च राशिका ग्रह आया हो तो वह शख्स दीक्षा लेवें ॥ "

ज्योतिषी अिस तरह जन्मग्रहोंका हाल सुनावें, और घरवाले आदमी अपनी शक्ति अनुसार अुसको सोनामहोर रूपिये वगैरा अिनाममे देवे ।

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ जन्मसंस्कार-कीर्तनरूपा तृतीया कला ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थी कला ॥ सूर्येन्दुदर्शन–संस्कारविधिः ॥४॥

यथा–जन्मदिनाद् दिनद्वये व्यतीते तृतीयेऽह्नि गुरुः समीपगृहेऽर्हदर्चनपूर्वं जिनप्रतिमाग्रतः स्वर्ण–ताम्रमयीं रक्त–चन्दनमयीं वा दिनकरप्रतिमां स्थापयेत्। तस्या अर्चनम् अनन्तरोक्तशान्तिक–पौष्टिकप्रतिष्ठाप्रक्रमोक्तविधिना कुर्यात्।

भाषा—सूर्येन्दु–दर्शन संस्कारकी विधि कहते हैं। सो अिस प्रकार–जन्मदिनसे दो दिन वीत जाने पर तीसरे दिन गुरु प्रसूतिवाली औरतके मकानके समीपके घरमें धातुकी छोटी श्रीजिनप्रतिमा रखकर अुसकी अष्टद्रव्यसे पूजा करें। पीछे जिनप्रतिमाके आगे अेक पट्टे पर (चौकी पर) सुन्ने तांबे या रक्तचन्दनकी बनी सूर्यमूर्ति स्थापन करें। अुस प्रतिमाका पूजन अनंतर प्रतिष्ठा प्रकरणमें कही हुअी शान्तिक–पौष्टिक विधिसे करें। यानि आगे लिखा हुआ सूर्यपूजनमन्त्र पढकर कुलगुरु गंध पुष्प अक्षत फल वगैरा चीजोंसे सूर्यकी पूजा करें। सूर्यपूजनका मन्त्र अिस प्रकार पढ़ें—

"ॐ नमः सूर्याय सहस्रकिरणाय जगत्कर्मसाक्षिणे। इह जन्ममहोत्सवे सायुधः सवाहनः सपरिच्छदः आगच्छ आगच्छ आगच्छ। इदम् अर्घं पाद्यं बलिं गृहाण गृहाण। सन्निहितो भव भव स्वाहा। जलं गृहाण गन्धं पुष्पम् अक्षतान् फलानि धूपं दीपं नैवेद्यं मुद्रां सर्वोपचारान् गृहाण। शान्तिं कुरु कुरु, तुष्टिं कुरु कुरु, ऋद्धिं वृद्धिं सर्वसमीहितं देहि देहि स्वाहा।"

अिस प्रकार सूर्यपूजनका मन्त्र पढ़ कर कुलगुरु सूर्यप्रतिमाकी गंध–पुष्पादिसे पूजा करें।

ततश्च स्नातां सुवसनां सुभूषणां शिशुमातरं करद्वयधृतशिशुं प्रत्यक्षसूर्यसम्मुखं नीत्वा सूर्यवेदमन्त्रमुच्चरन् माता-पुत्रयोः सूर्यं दर्शयति । सूर्यवेदमन्त्रो यथा-

भाषा—अुसके बाद स्नान की हुअी और अच्छे वस्त्र-आभूषणासें अलङ्कृत और जिसने दोना हाथमें बालकको धारन किया है अैसी अुस बालककी माताको प्रत्यक्ष सूर्यके सन्मुख लेजाके, कुलगुरु सूर्यवेदमन्त्रका अुच्चारण करता हुवा माता-पुत्रको सूर्यका दर्शन करावे । सो सूर्यवेदमन्त्र निम्न लिखित है—

" ॐ अर्हं । सूर्योऽसि, दिनकरोऽसि, सहस्रकिरणोऽसि, विभावसुरसि, तमोपहोऽसि, प्रियकरोऽसि, शिवकरोऽसि, जगच्चक्षुरसि, सुरवेष्टितोऽसि, मुनिवेष्टितोऽसि, विततविमानोऽसि, तेजोमयोऽसि, अरुणसारथिरसि, मार्तण्डोऽसि, द्वादशात्माऽसि, चक्रबान्धवोऽसि । नमस्ते भगवन् ! प्रसीद, अस्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु कुरु । सन्निहितो भव । अर्हं ॐ ॥ "

अिस प्रकार सूर्यका वेदमन्त्रको पढ़ता हुवा गुरु माता-पुत्रको सूर्यका दर्शन करावे ।

इति पठति गुरौ, सूर्यमवलोक्य माता सपुत्रा गुरुं नमस्कुर्यात् । गुरुः सपुत्रां मातरमाशीर्वादयेत् । यथा-

(आर्या)—" सर्वसुरासुरवन्द्य , कारयिता सर्वधर्मकार्याणाम् । भूयात् त्रिजगच्चक्षु-र्मङ्गलदस्ते सपुत्रायाः ॥ १ ॥ "

गुरु अिस प्रकार सूर्यका वेदमन्त्र पढ रहे तब और सूर्यका दर्शन करनेके बाद पुत्र सहित माता गुरुको नमस्कार करें । गुरु पुत्र सहित माताको अुपर लिखा हुवा आर्याछंदसें आशीर्वाद देवे । अिसका भावार्थ अैसा है कि—" सब सुर और

॥ ४१ ॥

अुसुरोंसें बंदनीय, सभी तरहके धर्मकार्यको करानेवाले, और तीनों जगत्के लोगोंके नेत्रसमान; अैसे सूर्यदेव पुत्र सहित तुमको मंगल देनेवाले हो ॥ १ ॥"

दक्षिणा सूतके नास्ति । ततो गुरुः स्वस्थानमागत्य जिनप्रतिमां स्थापितसूर्यं च विसर्जयेत् । मातापुत्रौ सूतकभयात् तत्र नाऽऽनयेद् ।

भाषा—सूतकमें दक्षिणा नहीं है । अुसके बाद गुरु अपने स्थानमें आकर जिनप्रतिमाको और स्थापित की हुअी सूर्य-प्रतिमाको विसर्जन करें । सूतकके भयसें माता और पुत्रको वहाँ न लावें; और अशौचके संबधसे घरके लोग भी अुसको छुहे नहीं ।

तस्मिन्नेव दिवसे सन्ध्याकाले गुरुर्जिनपूजापूर्वं प्रतिमाग्रतः स्फटिक–रूप्य–चन्दनमयीं चन्द्रमूर्तिं स्थापयेत । अन्यत्र गृहे तं च शशिनं शान्तिकादिप्रक्रमोक्तविधिना पूजयेत् ।

भाषा—अुसी दिन संध्याकालमें गुरु अलग मकानमें जहां सूर्यदर्शनका संस्कार कराया था वहां श्रीजिनप्रतिमा रख कर अुसकी वासक्षेपसे पूजा करें । पीछे श्री जिनप्रतिमाके आगे अेक पट्टे पर स्फटिक, चांदी, या चंदनकी बनी चन्द्रमाकी मूर्ति स्थापन करें । अुसका पूजन अनन्तर प्रतिष्ठा प्रकरणमें कही हुअी शान्तिक–पौष्टिक विधिसें करें । यानि आगे लिखा हुआ चन्द्रपूजन मन्त्र पढ़ कर कुलगुरु गंध, पुष्प, अक्षत और फल वगैरह चीजोंसे चन्द्रकी पूजा करें । चन्द्रपूजनका मन्त्र अिस प्रकार पढें—

"ॐ नमश्चन्द्राय तारागणाधीशाय सुधाकराय । इह जन्ममहोत्सवे सायुधः सवाहनः सपरिच्छदः आगच्छ आगच्छ । इदं अर्घ्यं पाद्यं बलिं गृहाण गृहाण । सन्निहितो भव भव स्वाहा । जलं गृहाण गन्धं पुष्पं अक्षतान् फलानि धूपं दीपं नैवेद्यं मुद्रां सर्वोपचारान् गृहाण । शान्तिं कुरु कुरु, ऋद्धिं वृद्धिं सर्वसमीहितं देहि देहि स्वाहा ॥"

अिस प्रकार चन्द्रपूजनका मन्त्र पढ़ कर कुलगुरु चन्द्रप्रतिमाकी गन्ध-पुष्पादिसें पूजा करे ।

ततश्च तथैव सूर्यदर्शनरीत्या चन्द्रोदये प्रत्यक्षचन्द्रसंमुखं माता-पुत्रौ नीत्वा वेदमन्त्रमुच्चरन् तयोश्चन्द्रं दर्शयति । चन्द्रस्य वेदमन्त्रो यथा–

भाषा—अिस तरह चन्द्रमूर्तिकी पूजा करनेके बाद आकाशमे जब चन्द्रमाका अुदय हुवा हो तब माता और पुत्रको प्रत्यक्ष चन्द्रमाके समुख ले जाकर वेदमन्त्रका अुच्चारण करता हुवा गुरु माता-पुत्रको सूर्यदर्शनकी रीतिसें चन्द्रका दर्शन करावे । सो चन्द्रका वेदमन्त्र निम्न लिखित है—

"ॐ अर्हं । चन्द्रोऽसि, निशाकरोऽसि, सुधाकरोऽसि, चन्द्रमा असि, ग्रहपतिरसि, नक्षत्रपतिरसि, कौमुदीपतिरसि, निशापतिरसि, मदनमित्रमसि, जगज्जीवनमसि, जैवातृकोऽसि, क्षीरसागरोद्भवोऽसि, श्वेतवाहनोऽसि, राजाऽसि, राजराजोऽसि, औषधीगर्भोऽसि, वन्द्योऽसि, पूज्योऽसि । नमस्ते भगवन्! प्रसीद । अस्य कुलस्य ऋद्धिं कुरु, वृद्धिं कुरु, तुष्टिं कुरु, पुष्टिं कुरु, जयं कुरु, विजयं कुरु, भद्रं कुरु, प्रमोदं कुरु । श्रीशशाङ्काय नमः । अर्हं ॐ ॥"

भाषा—अिस प्रकार चन्द्रका वेदमन्त्रको पढ़ता हुवा गुरु माता-पुत्रको चन्द्रमाका दर्शन करावे ।

इति पठन् माता-पुत्रयोश्चन्द्रं दर्शयित्वा तिष्ठेत् । सा च सपुत्रा गुरुं नमस्कुर्यात् । गुरुराशीर्वादयति । यथा—

" सर्वौषधीमिश्रमरीचिजालः, सर्वापदां संहरणप्रवीणः ।
करोतु वृद्धिं सकलेऽपि वंशे, युष्माकमिन्दुः सततं प्रसन्नः ॥ १ ॥ "

दक्षिणा सूतके नास्ति । ततो गुरुर्जिनप्रतिमा-चन्द्रप्रतिमे विसर्जयेत् । नवरं कदाचित्तस्यां रजन्यां चतुर्दश्यमावास्यावशात् साभ्राकाशवशाद्वा चन्द्रो न दृश्यते तदापि पूजनं तस्यामेव सन्ध्यायां कार्यम्, दर्शनमपरस्यामपि रात्रौ चन्द्रोदये भवतु ।

भाषा—अिस प्रकार चन्द्रका वेदमन्त्र पढ़ता हुवा गुरु माता-पुत्रको चन्द्रमाका दर्शन कराके खड़ा रहें, तब पुत्र सहित माता गुरुको नमस्कार करें । पीछे गुरु अिस तरह आशीर्वाद देवें—" सभी औषधियोंसे मिश्रित किरणोंके समूहवाले, और सभी आपत्तियोंका नाश करनेमें कुशल अैसे चन्द्रदेव निरंतर प्रसन्न होकर तुम्हारे सभी वंशमें वृद्धि करो ॥ १ ॥ " सूतकमें दक्षिणा नहीं है । अिसके बाद गुरु श्री जिनप्रतिमा और चन्द्रप्रतिमाका विसर्जन करें । अिसमें अितना विशेष है कि, अुस रात्रिमें यदि चतुर्दशी या अमावास्या होनेसे या बादल सहित आकाश होनेसे कदाचित् चन्द्रमा न दिखाओ देवें तो भी चन्द्रमूर्तिका पूजन तो अुसी रात्रिकी संध्यामें करना, और माता सहित पुत्रको चन्द्रकी प्रतिमाका दर्शन कराना । साक्षात् चन्द्रमाका दर्शन तो दूसरी रात्रिमें भी चन्द्रका अुदय होने पर हो सकता है ।

श्री जिनप्रतिमाको और चन्द्रप्रतिमाको घरके लोग अशोचके समय छुवे नहीं । गृहस्थको अच्छे काम देव-गुरुको आगे करके करना चाहिये, अिसी लिये श्री जिनप्रतिमाका लाना और विसर्जन करना फरमाया है। आज-कलके लोग सूर्य-चन्द्र-दर्शन-संस्कारकी जगह आरिसा ही लड़केको दिखलाते हैं । जमाना अैसा ही आया है और आयगा कि सब चीजोंकी कमी होती जाती है, और अिससे भी ज्यादे कमी हो जायगी ।

सूर्य और चन्द्रदर्शन-संस्कार विधिमें क्या क्या चीजे चाहिये ? सो कहते हैं—

सूर्या-चन्द्रमसोर्मूर्ती, तत्पूजावस्तुसंगतम् । सूर्येन्दुदर्शने योग्य, संस्कारेऽत्र समानयेत् ॥ १ ॥

भाषा—सूर्य और चन्द्रका दर्शन-संस्कारमें सूर्य और चन्द्रमाकी प्रतिमा, और उनका पूजनके लिये योग्य वस्तु लानी चाहिये ॥१॥

॥ इति श्रीआद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ सूर्येन्दुदर्शन-संस्काररूपा चतुर्थी कला ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमी कला ॥ क्षीराशन-संस्कारविधिः ॥५॥

तस्मिन्नेव जन्मतस्तृतीये चन्द्रार्कदर्शनस्याऽह्नि शिशोः क्षीराशनम्। तद् यथा—गुरुः पूर्वोक्तवेषधारी तीर्थोदकैरमृतामन्त्रेण अष्टोत्तरशतवारमभिमन्त्रितैः शिशुं मातुः स्तनौ चाऽभिषिच्य जनन्यङ्कस्थितं शिशुं स्तन्यं पाययेत्।

भाषा—जन्मसे अुसी ही तीसरे दिन यानि चन्द्र-सूर्यके दर्शनके दिनमें बालकको क्षीराशन संस्कार कराना चाहिये। तीन रोज तक निरोगी गौके दूधसे या बकरीके दूधसे लड़केका गुजरान चलाना गुनासिब है। सबब कि, अुन दिनोंमें प्रसूता औरतका दूध बिगड़ा हुवा रहता है। अिसी कारण जन्मसे तीसरे दिन बालकको क्षीराशन संस्कार करानेका फरमाया है। सो अिस प्रकार-पूर्वोक्त वेषको धारन किया हुवा गुरु तीर्थजलको निम्न लिखित अमृतामन्त्रसे अेकसौ आठ दफे अभिमन्त्रित करें—

" ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि ! अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा ॥ "

भाषा—अुपर लिखा हुवा अमृता-मन्त्रद्वारा अेकसौ आठ दफे मन्त्रित किया हुवा तीर्थजलमें बालकको और बालककी माताके स्तनोंको अभिषेक करें। पीछे माताकी गोदमें रखा हुवा बालकको स्तन्यपान करावें।

पूर्णाङ्गनासिकासक्तं स्तनं पूर्वं पाययेत्। स्तन्यं पिबन्तं शिशुं गुरुराशीर्वदेत्। यथा वेदमन्त्रः—

भाषा—पूर्णांग नासिका यानि जिस बाजूकी नासिका पूर्णरूपसे चलती हो अुस बाजूका स्तन बालकको पहिला चुषावे । कुलगुरु अुस वख्त अेक चोकी पर सामने बैठ कर स्तन्य-दूध पीते हुअे बालकको निम्न लिखित वेदमन्त्रसें आशीर्वाद देवें—

“ ॐ अर्हं । जीवोऽसि, आत्माऽसि, पुरुषोऽसि । शब्दज्ञोऽसि, रूपज्ञोऽसि, रसज्ञोऽसि, गन्धज्ञोऽसि, स्पर्शज्ञोऽसि । सदाहारोऽसि, कृताहारोऽसि, अभ्यस्ताहारोऽसि, कावलिकाहारोऽसि, लोमाहारोऽसि । औदारिकशरीरोऽसि । अनेनाहारेण तवाङ्गं वर्धतां, बलं वर्धतां, तेजो वर्धतां, पाटवं वर्धतां, सौष्ठं वर्धताम् । पूर्णायुर्भव । अर्हं ॐ ॥ ”

इति त्रिराशीर्वादयेत् ।

भाषा—अुपर लिखा हुवा वेदमन्त्रसें गुरु बालकको तीन दफे आशीर्वाद देवें । अिस प्रकार विधि कराके कुलगुरु अपने घर जावें ।

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ क्षीराशन-संस्काररूपा पञ्चमी कला ॥ ५ ॥

॥ षष्ठी कला ॥

षष्ठीजागरण–संस्कारविधिः ॥ ६ ॥

षष्ठे दिने सन्ध्यासमये गुरुः प्रसूतिगृहमागत्य षष्ठीपूजनमारभेत । न सूतकं तत्र गण्यम् । यत उक्तम्—

“ स्वकुले तीर्थमध्ये च, तथा वश्ये बलादपि । षष्ठीपूजनकाले च, गणयेन्नैव सूतकम् ॥ १ ॥ ”

इति वचनबलात् । सूतिकागृहभित्तिभाग–भूमिभागौ सधवाहस्तैर्गोमयाऽनुलिप्तौ कारयेत् । ततो दृश्यशुक्र–बृहस्पतिवर्तितदिग्भित्तिभागं खटिकादिभिर्धवलयेत्, तद्भूमिभागं च चतुष्कमण्डितं कारयेत् ।

भाषा—बालकके जन्मसे छट्ठे दिन संध्याके समय गुरु प्रसूतिघरमें आकर षष्ठीपूजनविधिका आरंभ करें । षष्ठीपूजनमें सूतक नहीं गिनना । कहा है कि—“ अपने कुलमें, तीर्थमें, बलात्कारसे वश होना पड़े अैसे–कैदखाना वगैरा स्थानमें, और षष्ठीपूजनके समयमें सूतक नहीं गिनना चाहिये ॥ १ ॥ ” अिस वचनबलसे षष्ठीपूजनमें सूतक नहीं गिनना । कुलगुरु सूतिकाके घरमें आकर सूतिकाघरकी भींत और भूमि अिन दोनोंको सोहागन औरतोंके हाथसे गोबरसे लिंपन करावें । अुसके बाद शुक्र या बृहस्पतिकी दृष्टि पड़े अैसी दिशामें वर्तनेवाली भींतको खड़ी वगैरहसे सफेद करावें, और अुस भूमिभागको चौक जैसा अलंकृत करावें ।

ततश्च धवलभित्तिभागे सधवाकरैः कुङ्कुम-हिङ्गुलादिभिर्वर्णकैरष्ट मातृरूर्ध्वा लेखयेत्, अष्ट चोपविष्टाः, अष्ट च प्रसुप्ताः । कुलक्रमान्तरे गुरुक्रमान्तरे षट् षट् लिख्यन्ते । ततश्च गुरुः सधवाभिर्गीतमङ्गलेषु गीयमानेषु चतुष्के शुभासने समासीनोऽनन्तरोक्तपूजाक्रमेण मातृः पूजयेत् । यथा—

भाषा—पीछे अुस सफेद भींतके अुपर सोहागन ओरताके हस्तद्वारा कुंकुम-हिंगुल वगैरह वर्णोंसे खड़ी हो अैसी आठ माताओंका आलेखन करावें, अैसे ही बैठी हुअी आठ माताओंका और सोती हुअी आठ माताओंका आलेखन करावें । दूसरे कोअी कोअी कुल और गुरुकी परपरामे तो छे छे माताओका आलेखन करते हैं । अुसके बाद अुस अलङ्कृत किया हुवा चौकमें अच्छे आसन पर बैठा हुवा गुरु, सोहागन औरतोंद्वारा मगलगीत गाते हुअे, निम्न लिखित पूजनके क्रमसें अुन माताओंकी पूजा करे । सो अिस प्रकार—

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति ब्रह्माणि वीणा-पुस्तक-पद्मा-ऽक्षसूत्रकरे हंसवाहने श्वेतवर्णे ! इह षष्ठीपूजने आगच्छ आगच्छ स्वाहा ॥ ' ॥"

इति त्रिवेलं पठित्वा पुष्पेणाऽऽह्वानम् । ततः—

भाषा—अिस प्रकारसें मन्त्रको तीन दफे पढकर पुष्पसें आह्वान करें । अुसके बाद निम्न लिखित मन्त्रको तीन दफे पढ़कर सन्निधान करें । सो अिस प्रकार—

“ ॐ ह्रीं नमो भगवति ब्रह्माणि वीणा–पुस्तक–पद्मा–ऽक्षसूत्रकरे हंसवाहने श्वेतवर्णे ! मम सन्निहिता भव भव स्वाहा ॥ २ ॥ ”

इति त्रिवेलं सन्निहितीकरणम् । ततः–

भाषा—अिस प्रकारसें मन्त्रको तीन दफे पढ़ कर सन्निधान करें । अुसके बाद निम्न लिखित मन्त्रको तीन दफे पढ कर स्थापन करें । सो अिस प्रकार—

“ ॐ ह्रीं नमो भगवति ब्रह्माणि वीणा–पुस्तक–पद्मा–क्षसूत्रकरे हंसवाहने श्वेतवर्णे ! इह तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा ॥ ३ ॥ ”

इति मन्त्रपूर्वकं त्रिः स्थापनम् । ततः–

भाषा—अिस प्रकारसें मन्त्रको तीन दफे पढ़ कर स्थापन करें । अुसके बाद—

“ ॐ ह्रीं नमो भगवति ब्रह्माणि वीणा–पुस्तक–पद्मा–ऽक्षसूत्रकरे हंसवाहने श्वेतवर्णे ! गन्धं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ॥ ”

भाषा—अिस मन्त्रको पढ़ कर चन्दनादि खुशबूवाली चीज़ें चढ़ावें । पीछे—

“ ॐ ह्रीं नमो भगवति ब्रह्माणि वीणा–पुस्तक–पद्मा–क्षसूत्रकरे हंसवाहने श्वेतवर्णे ! पुष्पं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ॥”

भाषा–अिस मंत्रको पढ़ कर पुष्प चढ़ावें ।

एव धूप-दीपा-ऽक्षत-नैवेद्यदानपूर्वं "धूपं गृह्ण गृह्ण स्वाहा" "दीप गृह्ण गृह्ण स्वाहा" "अक्षतान् गृह्ण गृह्ण स्वाहा" "नैवेद्य गृह्ण गृह्ण स्वाहा" इत्येकैकवेल मन्त्रपाठपूर्वं एभिर्वस्तुभिर्भगवतीं पूजयेत् ॥ १ ॥

भाषा—अिसी प्रकार धूप दीप चावल और नैवेद्यका दानपूर्वक "धूप गृह्ण गृह्ण स्वाहा, दीप गृह्ण गृह्ण स्वाहा, अक्षतान् गृह्ण गृह्ण स्वाहा, नैवेद्य गृह्ण गृह्ण स्वाहा" अैसे अेक अेक दफे मन्त्रपाठ पूर्वक अिन पूर्वोक्त धूप वगैरह वस्तुओंसें भगवतीकी पूजा करें। यह प्रथम माताकी पूजन-विधि पूर्ण हुअी ॥ १ ॥

अनयैव युक्त्या सप्ताना परासा मातॄणा पूजनम् । नवर मन्त्राः-

भाषा—अिसी युक्तिसें अन्य सात माताओंकी पूजा करें। मगर अिन सभी माताओंके मन्त्रोंमें भेद है, सो नीचे लिखते हैं-

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति माहेश्वरि शूल-पिनाक-कपाल-खट्वाङ्गकरे चन्द्रार्धललाटे गजचर्मावृते शेषाहिबद्धकाञ्चीकलापे त्रिनयने वृषभवाहने श्वेतवर्णे इह षष्ठीपूजने आगच्छ आगच्छ स्वाहा २ ॥" शेष पूर्ववत्। तथा—

भाषा—अिस प्रकार दूसरी माताके मन्त्रको तीन दफ पढ़ कर पुष्पसे आह्वान करें। शेष विधि पूर्वकी तरह करना। यानि मन्त्रमें "आगच्छ आगच्छ स्वाहा" के ठिकाने "मम सन्निहिता भव भव स्वाहा" बोलकर, तीन दफे मन्त्र पढ़के सन्निधान करें। पीछे "आगच्छ आगच्छ स्वाहा" के ठिकाने "इह तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा" पढ़कर तीन दफे मन्त्र बोल कर स्थापन करें। पीछे अिसी मन्त्रको पढ़के गन्ध-पुष्पादिसें क्रमसर पूर्वकी तरह पूजा करें ॥ २ ॥

अुसके बाद तीसरी मातासें आठवीं माता तक अुन-अुनके निम्न लिखित भिन्न-भिन्न मन्त्र पढ कर पूर्वोक्त सब पूजनादि विधि-विधान करें—

॥ ५१ ॥

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति कौमारि षण्मुखि शूल-शक्तिधरे वरदा-ऽभयकरे मयूरवाहने गौरवर्णे ! इह षष्ठीपूजने आगच्छ आगच्छ स्वाहा ॥" शेषं पूर्ववत् ३ ॥

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति वैष्णवि शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-खड्गकरे गरुडवाहने कृष्णवर्णे ! इह षष्ठीपूजने आगच्छ आगच्छ स्वाहा ॥" शेषं पूर्ववत् ४ ॥

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति वाराहि वराहीमुखि चक्र-खड्गहस्ते शेषवाहने श्यामवर्णे ! इह षष्ठीपूजने आगच्छ आगच्छ स्वाहा ॥" शेषं पूर्ववत् ५ ॥

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति इन्द्राणि सहस्रनयने वज्रहस्ते सर्वाभरणभूषिते गजवाहने सुराङ्गनाकोटिवेष्टिते काञ्चनवर्णे ! इह षष्ठीपूजने आगच्छ आगच्छ स्वाहा ॥" शेषं पूर्ववत् ६ ॥

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति चामुण्डे शिराजालकरालशरीरे प्रकटितदशने ज्वालाकुन्तले रक्तत्रिनेत्रे शूल-कपाल-खड्ग-प्रेतकेशकरे प्रेतवाहने धूसरवर्णे इह षष्ठीपूजने आगच्छ आगच्छ स्वाहा ॥" शेषं पूर्ववत् ७ ॥

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति त्रिपुरे पद्म-पुस्तक-वरदा-ऽभयकरे सिंहवाहने श्वेतवर्णे ! इह षष्ठीपूजने आगच्छ आगच्छ स्वाहा ॥" शेषं पूर्ववत् ८ ॥

भाषा—इस प्रकार आठों स्त्री माताओंकी अपने अपने मन्त्रोंको तीन-तीन दफे उच्चारण करके पूर्वोक्त विधिसे पूजा करें ।

एतावत्पर्यन्तमधिकम् । एवं यथा ऊर्ध्वा पूज्यन्ते तेनैव मन्त्राचेनप्रयोगेण निविष्टाः सुप्ता अपि पूज्यन्ते त्रिवेलम् । कैश्चित् चामुण्डा-त्रिपुरावर्जिता षड् मातर एव पूज्यन्ते । एता मातॄः पूजयित्वा इति पठेत्—

भाषा—अिस प्रकार आठों माताओंके मन्त्रकी विशेषता है । अिस तरह जैसे खड़ी आठ माताओंका पूजन करें वैसे ही बैठी आठ माताओंका और सोती आठ माताओंका भी पूर्वोक्त मन्त्रोंसें ही तीन तीन दफे पढकर आह्वानादि करके पूर्वोक्त विधिद्वारा गन्ध-पुष्पादिसें पूजन करें । कितनेक लोग चामुंडा और त्रिपुरा माताको छोडकरके छे माताका ही पूजन करते हैं । अुपर लिखा मुताबिक माताओंकी पूजा करके अिस प्रकार पढें—

" ब्राह्मयाद्या मातरोऽष्टपूर्वी, स्वस्वास्त्र-बल-वाहना । षष्ठीसपूजनात्पूर्वं, कल्याणं ददतां शिशो ॥ १ ॥ "

भाषा—" अपने अपने अस्त्र सैन्य और वाहनोंसे युक्त ब्राह्मी वगैरा आठों माता षष्ठी-पूजनके पहिले बालकको कल्याण-प्रदान करो ॥ १ ॥ "

ततो मातृस्थापनाऽग्रभूमौ चन्दनलेपस्थापनया षष्ठीमम्बारूपां स्थापयेत् । तां च दधि-चन्दना-ऽक्षत-दूर्वाभिरर्चयेत् । ततश्च गुरुः पुष्पहस्तः—

भाषा—अुसके बाद मातृस्थापनाकी अग्रभूमिमें चन्दनका लेपकी स्थापना करके अम्बादेवीरूप षष्ठीकी स्थापना करे । पीछे अुसकी दही, चन्दन, चावल और दूर्वासें पूजा करे । अुसके बाद गुरु हाथमें पुष्प रख कर निम्न लिखित मन्त्रको पढें—

" ॐ ऐं ह्रीं षष्ठि आम्रवनासीने कदम्बवनविहारे पुत्रद्वययुते नरवाहने श्यामाङ्गि ! इह आगच्छ आगच्छ स्वाहा ॥ "

मातृवदस्या अपि पूजा ।

भाषा—अिस प्रकार मन्त्रको तीन दफे पढ़ कर पुष्पसें आह्वान करें । पीछे अिसी मन्त्रसे " इह आगच्छ आगच्छ स्वाहा " के ठिकाने " मम सन्निहिता भव भव स्वाहा " और " इह तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा " तीन तीन दफे पढ कर क्रमसे सन्निधान और स्थापना करें । अित्यादि सब पूजनविधि मातृकाकी तरह अिसकी भी करें ।

ततः शिशु-मातृसहिताः कुलवृद्धा अविधवा मङ्गलगानपरायणा वाद्येषु वाद्यमानेषु षष्ठीरात्रिं जाग्रति ।

भाषा—अुसके बाद बालक और माता सहित कुलवृद्धा सोहागन औरतें मंगल-गीतगानमें तत्पर वाजित्रों वाजते हुअे षष्ठीरात्रिका जागरण करें ।

ततः प्रातः " ॐ भगवति माहेश्वरि ! पुनरागमनाय स्वाहा " इति प्रत्येकं नामपूर्वं गुरुर्मातृः षष्ठीं च विसर्जयेत् । एवं सर्वत्र ।

भाषा—पीछे प्रातःकालमें गुरु आकर " ॐ भगवति माहेश्वरि ! पुनरागमनाय स्वाहा " अिस प्रकार प्रत्येक माताओंका और षष्ठीका नामपूर्वक विसर्जन करें । अैसा सब जगह समझना ।

ततो गुरुः शिशुं पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रपूतजलैरभिषिञ्चन् वेदमन्त्रेणाशीर्वादयेत् । यथा—

भाषा—अुसके बाद गुरु बालकको पंचपरमेष्ठिमन्त्रसें पवित्रित जलसे अभिषेक करता हुआ निम्न लिखित वेदमन्त्रसे आशीर्वाद देवें । सो अिस प्रकार—

" ॐ अर्हँ जीवोऽसि । अनादिरसि । अनादिकर्मभागसि । यत्त्वया पूर्वं प्रकृति-स्थिति-रस-प्रदेशैराश्रवद्दरया

कर्म वद्ध तद् बन्धो-दयो-दीरणा-सत्ताभिः प्रतिभुङ्क्ष्व । मा शुभकर्मोदयफलभुक्तेरुत्सेकं दध्या , न चाऽशुभकर्म-फलभुक्त्या विषादमाचरे । तवाऽस्तु संवरवृत्त्या निर्जरा । अर्हं ॐ ॥ " सूतके दक्षिणा नास्ति ।

भाषा—अुपर लिखा हुवा वेदमन्त्रसें गुरु बालकको आशीर्वाद देवें । सूतकमे दक्षिणा नहीं है ।

षष्ठीजागरण-सस्कारमे क्या क्या वस्तु चाहिये ? सो कहते है—

" चन्दन दधि दूर्वा च, साऽक्षत कुङ्कुम तथा । वर्णिका हिङ्गुलाद्याश्च, पूजोपकरणानि च ॥ १ ॥
नैवेद्य सधवा नार्यो, दर्भो भूम्यनुलेपनम् । षष्ठीजागरणाख्येऽस्मिन्, सस्कारे वस्तु कल्पयेत् ॥ २ ॥

भाषा—"चन्दन, दही, दूर्वा, चावल, कुकुम, लेखिनी, हिंगुल वगैरह रग, पूजाके अुपकरण-साधन, ॥ १ ॥ नैवेद्य, सोहागन औरते, दर्भ, ओर भूमिलिंपन-गोवर, षष्ठीजागरण नामके सस्कारमे अितनी वस्तु चाहिये । ॥ २ ॥"

षष्ठीजागरण-सस्कारकी विधि निम्न लिखित रीतिसें भी कराअी जाती है—

जन्मसे छट्ठे रोज षष्ठीपूजन सस्कार कराया जाता है । अुस रोज शामके वख्त जात-बिरादरीकी औरते अिकट्ठी होकर प्रसूता औरतके मकान पर गीत-गान करें । वहा काष्ठकी अेक चोकी लेकर चादी या कासेका थाल अुस पर रक्खे, ओर अुसमे केसर या कुकुमका साथिया सोहागन औरतसें करवावें । फिर अुस पर चावलसे चक्रेश्वरी देवीके चरणोंका आकार स्थापन करे । पीछे सोहागन औरतें मिलकर कुकुम, चावल, धूप, दीप, नैवेद्य ओर फलसे अुन चरणोंकी पूजा करे, ओर प्रसूता औरतको अगर चदन वगैरा खुशबूदार चीजोंका धूप देवें, जिससे अशुभ पुद्गलोंके परमाणु अुसके अगसे दूर हो जाय ।

अिधर कुलगुरु नमस्कार मन्त्रको अिक्कीस दफे पढ़ कर जलको मन्त्रित करें, अुस जलसे लड़केको स्नान करावें। स्नान कराये वाद, निम्न लिखित वेदमन्त्र सात दफे पढ़े—

" ॐ अर्हं । जीवोऽसि । अनादिरसि । अनादिकर्मभागसि । यत्त्वया पूर्वं प्रकृति–स्थिति–रस–प्रदेशैराश्रववृत्त्या कर्म वद्धं तद् वन्धो–दयो–दीरणा–सत्ताभिः प्रतिभुङ्क्ष्व। मा शुभकर्मोदयफलभुक्तेरुत्सेकं दध्याः, न चाऽशुभकर्मफलभुक्त्या विषादमाचरेः । तत्राऽस्तु संवरवृत्त्या निर्जरा । अर्हं ॐ ॥ "

भाषा—अिस मन्त्रको सात दफे पढ़ता हुवा गुरु खसकी पींछीसे या दूर्वासे लड़के पर थोडा थोडा जलका सिंचन करें। ठंडीकी ऋतु हो तो पट्टेके चारों दिशि छींटे डाले, और स्नानसे शीतका भय हो तो वालकको स्नान न करावें, केवल नया वस्त्र ही पहिनावें। अिस तरह षष्ठीपूजन–संस्कार पूरा हो जाय तव कुलगुरुको अपनी शक्तिके अनुसार नारियल रूपिया वगैरा जो भेट देना हो सो देवें।

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ षष्ठीजागरण–संस्कारकीर्तनरूपा षष्ठी कला समाप्ता ॥६॥

॥ सप्तमी कला ॥ शुचिकर्म-संस्कारविधि[1] ॥ ७ ॥

अत्र च शुचिकर्म स्वस्ववर्णानुसारेण व्यतीतदिनेषु कार्यम् । तद्यथा—

" शुध्येद् विप्रो दशाहेन, द्वादशाहेन बाहुजः । वैश्यस्तु षोडशाहेन, शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ १ ॥
कारूणां सूतकं नास्ति, तेषां शुद्धिर्नवाऽपि हि । ततो गुरु-कुलाचार-स्तेषु प्रामाण्यमिच्छति ॥ २ ॥"

भाषा—यहाँ बालकके जन्मके बाद दिनों व्यतीत होने पर अपने अपने वर्णके अनुसार शुचिकर्म यानि शुद्धिकी क्रिया करनी चाहिये । कहा है कि—" ब्राह्मण दस दिनमें, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य सोलह दिनमें, और शूद्र एक महिनेमें शुद्ध होता है ॥ १ ॥ 'कारुओंको सूतक नहीं है, और अुनकी शुद्धि भी नहीं है । अिस कारणसे अिन सभी वर्णोमें अपने अपने गुरु और कुलके आचारको ही प्रमाणभूत मानना चाहिये ॥ २ ॥ "

ततः कारणात् स्वस्ववर्ण-कुलानुसारेण दिनेषु व्यतीतेषु गुरु सर्वमपि षोडशपुरुषयुगादर्वाक् तत्कुलजवर्गं समाह्वाययेत् । यतः सूतकं हि षोडशपुरुषयुगादर्वाग् गृह्यते । यदुक्तम्—

" नृषोडशकपर्यन्तं, गणयेत् सूतकं सुधीः । विवाह नाऽनुजानीयाद्, गोत्रे लक्षनृणां युगे ॥ १ ॥ "

---

[1] शूद्रकी एक जातिविशेष ।

ततस्तान् गोत्रजानाहूय सर्वेषां साङ्गोपाङ्गं स्नानं वस्त्रक्षालनं च समादिशेत् । ते स्नाताः शुचिवसना गुरुं साक्षीकृत्य विविधपूजाभिर्जिनमर्चयन्ति ।

भाषा—अिस कारणसें अपने अपने वर्ण और कुलके अनुसार दिनों व्यतीत होने पर यानि शुद्धि क्रियाका दिन आवें तब, अुसके सोलह पुरुषयुगसे पहिले सभी कुलवर्गके मनुष्योंको गुरु बुलवावें, यानि अुसके पिता पितामह प्रपितामहादि सोलहवीं पेढ़ी तक जिसके साथ मेल-मिलाप हो जाय अैसे कुलवर्गके सभी पुरुषोंको बुलवावें, क्यों कि सूतक सोलह पुरुषयुगसे पहिले ग्रहण किया जाता है । कहा है कि—" अच्छी बुद्धिवाला मनुष्य सोलह पुरुष तक सूतक गिनता है, मगर गोत्रमें लाखों पुरुषयुग हो जाने पर भी अेक गोत्रमें विवाहकी अनुमति न देवें, यानि लाखो पेढ़ियां व्यतीत हो जाय तो भी अेक गोत्रमें विवाह न करना चाहिये ॥ १ ॥ " अिस प्रकार गुरु अुन गोत्रज पुरुषोंको बुलवाकर सभीको सांगोपांग स्नान करनेकी और कपडे धोनेकी आज्ञा करें । पीछे वे सब स्नान करके और पवित्र वस्त्र पहिनके गुरुको साक्षी करके जिनमंदिरमें जाकर श्रीजिनप्रतिमाकी विविध प्रकारसे पूजा करें ।

ततश्च बालकस्य माता-पितरौ पञ्चगव्येन आचान्त-स्नातौ सशिशू नखच्छेदं विधाप्य योजितग्रन्थी दम्पती जिनप्रतिमां नमस्कुरुतः, सधवाभिर्मङ्गलेषु गीयमानेषु वाद्येषु वाद्यमानेषु सर्वेषु चैत्येषु पूजा नैवेद्यढौकनं च । साधुभ्यो यथाशक्ति चतुर्विधाहार-वस्त्र-पात्रदानम् । संस्कारगुरवे वस्त्र-ताम्बूल-भूषण-द्रव्यादिदानम्, तथा जन्म-चन्द्रार्कदर्शन-क्षीराशन-षष्ठीसत्कदक्षिणा संस्कारगुरवे तस्मिन्नहनि देया । सर्वेषां गोत्रज-स्वजन-मित्रवर्गाणां यथाशक्ति भोजन-ताम्बूल-

दानम् । ततः गुरुः तत्कुलाचारानुसारेण शिशो' पञ्चगव्य-जिनस्नात्रोदक-सर्वौषधिजल-तीर्थजलैः स्नपितस्य वस्त्राभरणादि परिधापयेत् ।

भाषा—अुसके बाद [1]पंचगव्यसे आचमन किये हुवे और स्नान किये हुवे अुस बालकके माता-पिता पुत्र सहित नखच्छेदन करावे । पीछे वे पति-पत्नी ग्रन्थि बाधकर जिनमंदिरमें जाव, और वहाँ श्रीजिनप्रतिमाको वन्दन करें । पीछे सोहागन औरतोंद्वारा मंगलगीत गाते हुअे और वाजित्रो बाजते हुअे सभी जिनमन्दिरोंमें जाकर पूजा करें और नैवेद्य रक्खें । साधु-मुनिराजको अपनी शक्ति अनुसार चारों प्रकारके आहार, वस्त्र और पात्र देव । संस्कारविधि करानेवाले गुरुको आभूषण, द्रव्य, वस्त्र और ताम्बूलादिका दान देवें । वैसे ही जन्म-संस्कार, चन्द्रार्कदर्शन-संस्कार, क्षीराशन-संस्कार, और षष्ठीजागरण-संस्कार संबंधी दक्षिणा भी गुरुको अिसी दिन देवें । अपने सभी कुटुम्बी मनुष्यों, सगे-सम्बन्धी और स्नेही-मित्रवर्गको बुलाकर शक्ति अनुसार भोजन देवें, और ताम्बूलादिसे सत्कार करें । फिर अुस कुलके आचार अनुसार गुरु बालकको पंचगव्य, जिनस्नात्रका जल, सभी औषधि मिश्रित जल और तीर्थजलसे स्नान कराके वस्त्र और आभूषणादि पहिनावे ।

तथा च नारीणां सूतकस्नानं पूर्णेष्वपि सूतकदिवसेषु नाऽऽर्द्रनक्षत्रेषु न च सिंह-गजयोनिनक्षत्रेषु कुर्यात् । आर्द्रनक्षत्राणि दश । यथा—

"कृत्तिका भरणी मूल-मार्द्रा पुष्य-पुनर्वसू । मघा चित्रा विशाखा च, श्रवणो दशमस्तथा ॥ १ ॥
आर्द्रधिष्ण्यानि चैतानि, स्त्रीणां स्नानं न कारयेत् । यदि स्नानं प्रकुर्वीत, पुनः सूतिर्न विद्यते ॥ २ ॥

[1] गायका दूध, दही, घी, गोमूत्र और गोबर, ये पाँच वस्तु पंचगव्य कही जाती है ।

सिंहयोनिर्धनिष्ठा च, पूर्वाभाद्रपदं तथा। भरणी रेवती चैव, गजयोनिर्विचार्यते ॥ ३ ॥"

कदाचित् पूर्णेषु सूतकदिवसेषु एतानि नक्षत्राण्यायान्ति तदा दिनैकैकान्तरेण शुचिकर्म विधेयम् ।

भाषा—सूतक स्नानके बारेमें औरतोंके लिये अितना विशेष है कि—सूतकके दिन पूर्ण होने पर भी आर्द्र नक्षत्रोंमें, सिंहयोनि नक्षत्रोंमें, और गजयोनि नक्षत्रोंमें औरतोंको सूतकस्नान नहीं कराना चाहिये। आर्द्र नक्षत्र दस है। सो अिस प्रकार—१ कृत्तिका, २ भरणी, ३ मूल, ४ आर्द्रा, ५ पुष्य, ६ पुनर्वसु, ७ मघा, ८ चित्रा, ९ विशाखा और १० दसवाँ श्रवण ॥ १ ॥ ये दस आर्द्रनक्षत्र कहे जाते हैं; अिनमें औरतोंको सूतकस्नान नहीं कराना। यदि अिन नक्षत्रोंमेंसे कोअी नक्षत्रमें स्त्री सूतकस्नान करें तो अुसको फिर प्रसूति न होवे ॥ २ ॥ धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपद, ये दो सिंहयोनि नक्षत्र हैं; तथा भरणी और रेवती, ये दो गजयोनि नक्षत्र हैं; अिन सिंहयोनि और गजयोनि नक्षत्रोंमें भी औरतें सूतकस्नान न [1]करें। रविवार और मंगलवारके दिन भी स्त्रियोंको सूतकस्नान नहीं करना चाहिये। सूतकके दिन पूरे होने पर कदाचित् अिन नक्षत्रोंमेंसे कोअी नक्षत्र आ जाय तो अेक अेक दिनका अंतर छोड़ कर शुचिकर्म करें।

शुचिकर्म संस्कारमें क्या क्या वस्तु चाहिये? सो कहते हैं—

"पूजावस्तु पञ्चगव्यं, निजगोत्रोद्भवो जनः। तीर्थोदकानि संस्कारे, शुचिकर्मणि निर्दिशेत् ॥ १ ॥"

भाषा—"पूजाकी सब वस्तु, पञ्चगव्य, अपने गोत्रमें जन्मा हुवा मनुष्य, और तीर्थका जल; शुचिकर्म संस्कारमें अितनी वस्तु चाहिये ॥ १ ॥"

---

१ अश्लेषा नक्षत्रमें भी सूतकस्नान वर्ज्य है, अैसा भी मतांतर है।

जन्मसे ग्यारहवें रोज शुचिकर्म-संस्कार कराया जाता है, जिसको लोग देशोटन भी बोलते हैं। लेकिन यदि अुस रोज पूर्वोक्त कृत्तिका आदि आर्द्रदशक नक्षत्र, सिंहयोनि नक्षत्र, या गजयोनि नक्षत्र आ जाय, अथवा रविवार या मंगलवार आ जाय, तो अेक-दो रोज पीछे करना चाहिये। जिस रोज यह संस्कार कराना हो अुस रोज अपने घर अुमदा बाजा बजवाना, जिससे सब लोगोंमें जाहिर रहे कि आज अिनके घर देशोटन है। जिस मकानमें बालकका जन्म हुवा हो अुसको लिपा-पोताकर साफ बनाना, और वहां गुलाबजल या-केवड़ेका पानी छांटना; जिससे दुर्गन्धके परमाणु साफ हो जावें-बदबू निकलकर चारों तरफ खुशबू महेक जाय। प्रसूतिवाली औरतको और लडकेको सुगन्धी वस्तुओंका बटना लगाकर स्नान कराना, और साफ नये कपडे पहिनाना, जिससे अुनके शरीरमें कोअी बदबू न रहने पावे। बहेन और भाणेजको गहना और कपड़ा देकर खुश करना, और जात-बिरादरीको भोजन जिमाना, यह दुनियादारीकी रसम है।

सिद्धार्थ राजाने महावीरस्वामीके शुचिकर्म-संस्कारमें बहुत जलसा किया था, जिसका कल्पसूत्रमें बयान दर्ज है। दस दिन तक रियासतभरमें किसीका जरीमाना नहीं किया, तमाम चीजोंको सस्ती कर दी, राजमेहसुल माफ किया, और राजधानी क्षत्रियकुंडग्राम तरह तरहके बाजे और- नौबतखानोंसे सरगर्म रक्खी। दास-दासी नौकर-चाकर हल्कारे और प्यादोंको अिनाम देकर खुश किया। गरीब और रोटियोंके मोहताजोंको रहमदिलीसे खान-पान दिया, और अपनी बिरादरीके सामने अपने बेटेका नाम "वर्धमानकुमार" रक्खा। राजे लोग जो कुछ खर्च करना चाहे कर सकते हैं, अपनी आमरियासतको भी खाना खिला सकते हैं। मगर तारिफ अुनकी है जो दुनियादारीके कामोंसे धर्मके काममें ज्यादह खर्च करते हैं।

जिनमंदिरमें पंचकल्याणककी पूजा पढ़ाना, और अंगी-रोशनी कराकर श्रीजिनेन्द्र परमात्माके गुणगान कराना । अपनी शक्ति अनुसार गुरुभक्ति और साधर्मिक भक्ति अवश्य ही करना, जिससे धर्मकी तरक्की पहुंचे; बदौलत धर्म ही के सब कुच्छ पाया है । कुलगुरुको बुलाकर भोजन जिमाना, और महोर रूपिये जो कुच्छ ताकात हो सो देना । घरमें गीतगान करनेके लिये जो जो औरतें आओी हो अुन सबको मिठाओी वाँटना कि कोओी खाली हाथ न जाने पावें ॥

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ शुचिकर्म-संस्कारकीर्तनरूपा सप्तमी कला समाप्ता ॥ ७ ॥

॥ अष्टमी कला ॥ नामकरण–संस्कारविधिः ॥ ८ ॥

" मृदु-ध्रुव-क्षिप्र चरेषु भेषु, सूनोर्विधेय खलु जातकर्म ।
गुरौ भृगौ वाऽपि चतुष्टयस्थे, सन्तः प्रशसन्ति च नामधेयम् ॥ १ ॥ "

शुचिकर्मदिने तद्द्वितीये तृतीये वा शुभदिने शिशोश्चन्द्रबले गुरुः सज्योतिषिकस्तद्गृहे शुभस्थाने शुभासने सुखासीनः पञ्चपरमेष्ठिमन्त्र स्मरंस्तिष्ठेत् । तदा च शिशो पितृ–पितामहाद्याः पुष्प–फलपरिपूर्णकरा गुरुं सज्योतिषिक साष्टाङ्ग प्रणिपत्य इति कथयन्ति—' भगवन् ! पुत्रस्य नामकरण क्रियताम् ' । ततो गुरुस्तान् कुलपुरुषान् कुलवृद्धाश्च स्त्रिय. पुरो निवेश्य ज्योतिषिक जन्मलग्नप्ररूपणाय समादिशेत् । ज्योतिषिक. शुभपट्टे खटिकया तज्जन्मलग्नमालिखेत्, स्थाने स्थाने ग्रहांश्च स्थापयेत् । तत. शिशुपितृ–पितामहाद्या जन्मलग्नं पूजयन्ति । तत्र स्वर्णमुद्राः १२, रूप्यमुद्राः १२, ताम्रमुद्राः १२, क्रमुका. १२, अन्यफलजातिः १२, नालिकेराणि १२, नागवल्लीदलानि १२; एभिर्द्वादशलग्नपूजनम् । एतैरेव वस्तुभिर्नव–नवप्रमाणैर्नवग्रहाणां पूजनम् । एकैकवस्तुसख्या सर्वेमिलने २१ ।

॥ ६३ ॥

भाषा—" मृदु, ध्रुव, क्षिप्र या चर संज्ञावाले नक्षत्र हों; अथवा गुरु या शुक्र चार केन्द्रस्थानमें (१–४–७–१० स्थानमें) होने पर जातकर्म यानि नामकरण–संस्कार किया जाय तो अुसकी सज्जन पुरुषों प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥ "

शुचिकर्मके दिन अथवा अुससे दूसरे या तीसरे शुभदिनमें बालकका चन्द्रबल होने पर ज्योतिषी सहित गुरु अुसके घर जाकर अच्छे स्थानमें शुभ आसन पर बैठा हुवा पंचपरमेष्ठि मंत्रका स्मरण करें । अुस वख्त बालकके पिता पितामह वगैरा हाथमें पुष्प और फल रख कर ज्योतिषी सहित गुरुको साष्टांग प्रणाम करके अैसा कहें कि—" भगवन् ! पुत्रका नामकरण करो ' । पीछे गुरु अुन कुलपुरुषोंको और कुलवृद्धा औरतोंको आगे बैठा कर जन्मलग्न कहनेके लिये ज्योतिषीको आज्ञा करें । तब ज्योतिषी शुभ पट्टे पर खड़ीसे अुस बालकके लग्नको लिखें, और स्थान–स्थान पर ग्रहोंको स्थापन करें । अुसके बाद बालकके पिता–पितामहादि जन्मलग्नकी पूजा करें । अुसमें सुवर्णकी मुद्रा–सोनामहोर १२, चांदीकी मुद्रा–रूपिये १२, तांबेकी मुद्रा १२, सुपारी १२, दूसरी जातिके फल १२, नारियल १२, और नागरवेलके पान १२; अिन वस्तुओंसे बारहों लग्नका पूजन करें । अैसे ही अिन ही नौ–नौ वस्तुओंसे नौ ग्रहोंका पूजन करें । अिस तरह लग्नका पूजन और ग्रहोंका पूजन, दोनों मिलके अेक–अेक वस्तुकी संख्या सभी मिलके अिक्कीस–अिक्कीस होती है ।

एवं पूजिते लग्ने तेषां पुरो ज्योतिषिको लग्नविचारं व्याख्याति । तैरवहितैः श्रोतव्यम् । ततः सव्यावर्णनं लग्नं ज्योतिषिकः कुङ्कुमाक्षरैः पत्रे लिखित्वा तत्कुलज्येष्ठस्य समर्पयेत् । तत्पित्रादिभिर्ज्योतिषिकश्च नित्रापवस्त्र-दानैः सम्माननीयः । गणकोऽपि तेषां पुरो जन्मनक्षत्रानुसारेण नामाक्षरं प्रकाश्य स्वगृहं व्रजेत् । ततो गुरुः सर्वकुलपुरुषान् कुलवृद्धा नारीश्च पुरतो निवेश्य तेषां संमतेन दूर्वाङ्कुरैः परमेष्ठिमन्त्रभणनपूर्वं कुलवृद्धाकर्णे जाति–कुलोचितं नाम श्रावयेत् ।

भाषा—अिस प्रकार लग्न पूजने पर अुन लोगोंके आगे ज्योतिषी लग्नविचारका वर्णन करें, और वे भी अुपयोग सहित—सावधान होकर सूने। अुसके बाद ज्योतिषी विशेष वर्णनके साथ कुंकुमके अक्षरोंसे लग्नको कागजमें लिखकर अुस कुलके बड़े आदमीको सौंप देवें। बालकके पिता वगैरह ज्योतिषीका अपनी संपत्ति अनुसार पितृओंको अुद्देश करके वस्त्र और सुवर्णका दान देकर सन्मान करें। ज्योतिषी भी अुनके आगे जन्मनक्षत्रके अनुसार नामके अक्षरको कहकर अपने घर जावें। अुसके बाद गुरु कुलके सभी पुरुषोंको और कुलवृद्धा औरतोंको आगे बैठाकर और दूर्वा हाथमें लेकर अुनकी संमतिसे परमेष्ठिमन्त्रको पढ़ कर कुलवृद्धा औरतके कानमें जाति और कुलके योग्य नाम सुनावें।

तदनन्तर कुलवृद्धा नार्यो गुरुणा सह पुत्रोत्सङ्गा तन्मातरं शिबिकादिवाहनासीना पादचारिणीं वा सहाऽऽनीय अविधवाभिर्मङ्गलगीतेषु गीयमानेषु वाद्येषु वाद्यमानेषु चैत्यं प्रति प्रयान्ति। तत्र माता-पुत्रौ जिनं नमस्कुरुतः। माता चतुर्विंशतिप्रमाणैः स्वर्ण-रूप्यमुद्रा-फल-नालिकेरादिभिर्जिनप्रतिमाग्रे ढौकनिकां कुर्यात्। ततश्च देवाग्रे कुलवृद्धाः शिशुनाम प्रकाशयन्ति। चैत्याभावे गृहप्रतिमायामेवाऽयं विधिः।

भाषा—अुसके बाद गुरुके साथ कुलवृद्धा औरतें, पुत्रको गोदमें लेकर पालखी आदि वाहनमें बैठी हुअी या पैरसे चलती हुअी अुस बालककी माताको साथमें लेकर, सोहागन औरतोंद्वारा गीत गाते हुअे और सुरिले बाजे बजाते हुअे जिनमंदिरमें जावें। वहाँ माता और पुत्र दोनों श्रीजिनेश्वरदेवको वंदन करें। पीछे श्रीजिनेन्द्र परमात्माकी प्रतिमाजीके आगे बालककी माता चौबीस-चौबीस सुवर्णकी मुद्रा, चांदीकी मुद्रा, फल और नारियल आदि समर्पण करें। अुसके बाद कुलवृद्धा स्त्रियाँ श्रीजिनेश्वरदेवके आगे बालकका नाम प्रगट करें। अगर अुस गाँव या शहरमें जिनमंदिर न होवे तो घरमंदिरकी प्रतिमाजीके आगे ही अिसी प्रकार विधि करें।

ततस्तयैव रीतया पौषधागारमागच्छेत् । तत्र प्रविश्य भोजनमण्डलीस्थाने मण्डलीपट्टं निवेश्य तत्पूजामाचरेत् । मण्डलीपूजाविधिर्यथा—शिशुजननी "श्रीगौतमाय नमः" इत्युच्चरन्ती गन्धा-ऽक्षत-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यैर्मण्डलीपट्टं पूजयेत् । मण्डलीपट्टोपरि स्वर्णमुद्राः १०, रूप्यमुद्राः १०, क्रमुकाः १०८, नालिकेराणि २९, वस्त्रहस्तान् २९ स्थापयेत् । ततः सपुत्रा स्त्री त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य यतिगुरुं नमस्कुर्यात् । नवभिः स्वर्ण-रूप्यमुद्राभिर्गुरोर्नवाङ्गपूजां कुर्यात् । निरुञ्छना-ऽऽरात्रिके च विधाय क्षमाश्रमणपूर्वं करौ संयोज्य "वासक्खेवं करेह" इति शिशुमाता कथयति । ततो यतिगुरुः वासान् 'ॐकार-ह्रींकार-श्रींकार' सन्निवेशेन कामधेनुमुद्रया वर्धमानविद्यया परिजप्य मातृ-पुत्रयोः शिरसि क्षिपेत् । तत्रापि तयोः शिरसि "ॐ ह्रीँ श्रीँ" अक्षरसन्निवेशं कुर्यात् । ततो बालकस्य चन्दनेन साक्षतं तिलकं विधाय कुलवृद्धावचनानुवादेन नामस्थापनं कुर्यात् । ततस्तयैव युक्त्या सर्वैः सह स्वगृहं गच्छन्ति । यतिगुरुभ्यश्चतुर्विधाहार-वस्त्र-पात्रदानम् । गृहिगुरवे वस्त्रा-ऽलङ्कार-स्वर्णदानम् ।

भाषा—अुसके बाद अिसी ही रीतिसें पौषधशाला-अुपाश्रयमें आवें । वहाँ प्रवेश करके भोजनमंडलीकी जगहमें मंडलीपट्ट रखकर अुसकी पूजा करें । मंडलीपूजाकी विधि अिस प्रकार है—पुत्रकी माता "श्रीगौतमाय नमः" अैसा अुचार करती हुअी गंध, चावल, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यसें मंडलीपट्टकी पूजा करें । मंडलीपट्टके अुपर सोनेकी मुद्रा १०, चांदीकी मुद्रा १०, सुपारी १०८, नारियल २९, और २९ हाथ वस्त्र रक्खें । अुसके बाद पुत्र सहित माता गुरुमहाराज श्री यतिजीको तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दन करें । पीछे नो सोनेकी और नो चाँदीकी मुद्राओंसे गुरुमहाराजके नव अंगकी पूजा करें । बाद निरुंछना यानि लोन उतारके और आरती करके खमासमण देकर हाथ जोड़के "वासक्षेप करो" अैसा पुत्रकी माता कहें । तब

गुरुमहाराज श्री यतिजी वासक्षेपको ॐकार ह्रींकार और श्रींकारके सन्निवेशसे कामधेनुमुद्राद्वारा वर्धमान विद्यासे जपकर माता और पुत्र अुन दोनोंके सिर पर क्षेप करें–डालें । अुस वासक्षेप करते वख्त भी माता और पुत्रके सिर पर "ॐ ह्रीं श्रीं" अिन अक्षरोंका सन्निवेश करें । अुसके बाद बालकके कपालमें अक्षतयुक्त चन्दनसे तिलक करके कुलवृद्धा औरतके वचनके अनुवादसे बालकके नामका स्थापन करें । अुसके बाद जैसे आये थे अिसी रीतिसें सभीके साथ अपने घर जावें । साधु–गुरुमहाराजोंको चारों प्रकारके आहार, वस्त्र और पात्रका दान देव, और गृहस्थ-गुरुको वस्त्र अलंकार और स्वर्णका दान देवे ।

नामकरण–संस्कारमें क्या क्या चाहिये ? सो कहते हैं—

"नान्दी मङ्गलगीतानि, गुरुर्ज्योतिषिकान्वितः । प्रभूतफल–मुद्राश्च, वस्त्राणि विविधानि च ॥ १ ॥
वासाश्च चन्दनं दूर्वा, नालिकेरा धनं बहु । नामसंस्कारकार्येषु, वस्तूनि परिकल्पयेत् ॥ २ ॥"

भाषा—"नान्दी यानि विविध प्रकारके सुरिले वाजित्रों, मांगलिक गीत, ज्योतिषी सहित गुरु यानि संस्कारविधि करानेवाला गृहस्थ गुरु, बहोतसें फल और मुद्रायें, तरह–तरहके वस्त्र, ॥ १ ॥ वासक्षेप, चंदन, दूर्वा, नारियल, और बहोत धन–रूपिये, नामकरण–संस्कारके कार्यमें अितनी वस्तु चाहिये ॥ २ ॥"

जिस रोज शुचिकर्म–संस्कार किया हो जिसको आगे लिख चूके हैं, अुसी दिन नामकरण–संस्कार कराया जाता है । अगर अुस रोज लडकेका नाम न रखा गया हो, तो जिस रोज मृदु, ध्रुव, क्षिप्र या चर संज्ञावाले नक्षत्र हो, बुध बृहस्पति या शुक्रवार हो, चौथ अष्टमी नवमी चतुर्दशी अमावास्या या पूर्णिमा तिथि न हो, संक्रान्ति या पंचकका दिन न हो, और लग्नशुद्धिमें गुरु या शुक्र चौथे भुवनमें बैठा हो, अैसे वख्त पर बालकका नाम रखना चाहिये । बहोत रोज तक विनानाम

रखना अच्छा नहीं। ज्योतिषके नियमानुसार जिस राशिका चन्द्रमा अुस बालकके जन्मलग्नमें हो, अुसी राशिके अक्षरों पर अुसका नाम रखना चाहिये। अगर अक्षरोंके अनुसार नाम अच्छा न मिले, तो बहेत्तर है कि अुसको छोड़कर दूसरा रखना। मगर नाम अैसा रखना कि जिसको बोलते या सूनते ही हर्ष पैदा हो।

॥ ज्योतिष शास्त्रके नियमानुसार नामके शूरुके अक्षरोंकी हकीकत ॥

१ अश्विनी—चू चे चो ला। २ भरणी—ली लू ले लो। ३ कृत्तिका—अ ओ अू ओ। ४ रोहिणी—ओ वा वी वू। ५ मृगशिर—वे वो का की। ६ आर्द्रा—कु घ ङ छ। ७ पुनर्वसु—के को हा ही। ८ पुष्य—हू हे हो डा। ९ अश्लेषा—डी डू डे डो। १० मघा—म मी मू मे। ११ पूर्वा फाल्गुनी—मो टा टी टू। १२ उत्तरा फाल्गुनी—टे टो प पी। १३ हस्त—पु प ण ठ। १४ चित्रा—पे पो रा री। १५ स्वाति—रू रे रो ता। १६ विशाखा—ती तू ते तो। १७ अनुराधा—ना नी नू ने। १८ ज्येष्ठा—नो या यी यू। १९ मूल—ये यो भ भी। २० पूर्वाषाढा—भू ध फ ढ। २१ उत्तराषाढा—भे भो ज जी। २२ अभिजित—जू जे जो खा। २३ श्रवण—खी खू खे खो। २४—धनिष्ठा—ग गी गू गे। २५ शतभिषक्—गो सा सी सू। २६ पूर्वा भाद्रपद—से सो द दी। २७ अुत्तरा भाद्रपद—दु श झ थ। २८ रेवती—दे दो च ची॥

अश्विनी भरणी कृत्तिकापादे मेषः। कृत्तिकानां त्रयः पादा रोहिणी मृगशिरोऽर्धं वृषभः। मृगशिरोऽर्धम् आर्द्रा पुनर्वसुपादत्रयं मिथुनः। पुनर्वसुपादमेकं पुष्या-ऽश्लेषान्तं कर्कः। मघा च पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनीपादे सिंहः। उत्तराफाल्गुनीपादत्रयं हस्त-चित्रार्धं कन्या। चित्रार्धं स्वाति-विशाखापादत्रयं तुला। विशाखापादमेकम् अनुराधा-

ज्येष्ठान्त वृश्चिकः । मूल च पूर्वाषाढा–उत्तराषाढापादे धनुः । उत्तराणां त्रय' पादाः श्रवण–धनिष्ठार्धं मकर । धनिष्ठार्धं शतभिषक् पूर्वाभाद्रपदापादत्रयं कुम्भ' । पूर्वाभाद्रपदापादमेकम् उत्तराभाद्रपदा–रेवत्यन्त मीन' ।

अिस तरह ज्योतिषके नियमानुसार नाम रखा जाना अच्छा है । नाम शब्दका सबध जब तक देहमे आत्मा रहे तब तक बना रहता है, अिस लिये नाम अैसा अुमदा रखना चाहिये कि बोलते ही खुशी पैदा हो । बहुतसे लोग अपने लड़केका नाम यह समझकर कि अिस पर किसीकी खोटी नजर असर न करें—कुडा, छीतर, गोबर, गाडा, घेला, पुजा, कचरा वगैरा रख देते है, यह ठीक नहीं, बल्के बड़े होने पर अुनको हमेशाके लिये नीचा देखना पडता है । अिस लिये नाम अैसा रक्खो कि निहायत अुमदा हो । नामका निश्चय करके आम जाति–बिरादरीके सामने बोल देना चाहिये कि—अिस लड़केका नाम यह रखा है ।

शुचिकर्म–सस्कारके रोज नाम रखा गया हो तो अुस रोज जाति–बिरादरोंको खाना खिलाया ही था । अगर दूसरे रोज नाम रक्खा जाय तो आये हुवे जाति–बिरादरीके लोगोंको नारियल या मिठाअी बॅटना चाहिये, जिससे कोअी खाली हाथ जाने न पावें ॥

॥ इति श्रीश्राद्धसस्कारकुमुदेन्दौ नामकरण–संस्कारकीर्तनरूपा अष्टमी कला समाप्ता ॥८॥

॥ नवमी कला ॥ अन्नप्राशन–संस्कारविधिः ॥ ९ ॥

" रेवती श्रवणो हस्तो, मृगशीर्षं पुनर्वसू । अनुराधाऽश्विनी चित्रा, रोहिणी चोत्तरात्रयम् ॥ १ ॥
धनिष्ठा च तथा पुष्यो, निर्दोषेष्वमीषु च । रवी-न्दु-बुध-शुक्रेषु, गुरौ वारेषु वै नृणाम् ॥ २ ॥
नवान्नप्राशनं श्रेष्ठं, शिशूनामन्नभोजनम् । रिक्तादिकाश्च कुतिथी–र्दुर्योगांश्चैव वर्जयेत् ॥ ३ ॥

षष्ठे मासे प्राशनं दारकाणां, कन्यानां तत् पञ्चमे सद्भिरुक्तम् ।
प्रोक्ते धिष्ण्ये वासरे सद्ग्रहाणां, दर्शं रिक्तां वर्जयित्वा तिथिं च ॥ ४ ॥

रवौ लग्ने कुष्ठी धरणितनये पित्तगदभाक्, शनौ वातव्याधिः कृशशशिनि भिक्षाशनरतः ।
बुधे ज्ञानी भोगी भृगुशनसि चिरायुः सुरगुरौ, विधौ पूर्णे यज्वा भवति च नरः सत्रद इह ॥ ५ ॥

कण्टकान्त्यनिधनास्त्रिकोणगा– स्तत्फलं ददति यत्तनावगी ।
षष्ठ इन्दुरशुभस्तथाऽष्टमः, केन्द्रकोणगत एनिरन्नदृत् ॥ ६ ॥"

भाषा—" रेवती, श्रवण, हस्त, मृगशीर्ष, पुनर्वसु, अनुराधा, अश्विनी, चित्रा, रोहिणी, तीन अुत्तरा, ॥ १ ॥ धनिष्ठा और पुष्य, अिन निर्दोष नक्षत्रोंमे, तथा रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्र, अिन वारोंमे पुरुषोंको नया अन्न खाना श्रेष्ठ है, और बालकोंको अन्न खिलाना श्रेष्ठ है, मगर रिक्ता वगैरा कुतिथियाँ और कुयोगों वर्जित है ॥ २–३ ॥ पुत्रको छट्ठे मासमे और पुत्रीको पाचवें मासमे अन्न खिलानेका सत्पुरुषोंने कहा है । अुपर जो नक्षत्र और वार कहे है अुनमे अच्छे ग्रह विद्यमान होने पर अमावास्या और रिक्ता तिथिको छोडकर शुभ तिथिमे अन्नप्राशन कराना ॥ ४ ॥ "

"लग्नमे रवि हो तो बालक कुष्ठी होवे, मंगल होवे तो पित्तरोगी, शनि होवे तो वायुकी व्याधिवाला, क्षीणचन्द्र होवे तो भीख मगनेमे रत, बुध होवे तो ज्ञानी, शुक्र होवे तो भोगी, बृहस्पति होवे तो लंबा आयुष्यवाला, तथा पूर्णचन्द्र होवे तो पूजा करनेवाला और दानेश्वरी होवे ॥ ५ ॥ कटक ४–७–१०, अत्य १२, निधन ८, त्रिकोण ५–९, अिन घरोंमे पूर्वोक्त ग्रह होवे तो शरीरमे शुभ फल देते है । छट्ठे और आठवें घरमे चन्द्रमा अशुभ होता है । केन्द्र १–४–७–१०, त्रिकोण ५–९ अिन घरोंमे सूर्य या शनि होवे तो अन्नका नाश होवे ॥ ६ ॥ "

ततः षष्ठे मासे बालस्य पञ्चमे मासे बालिकायाः पूर्वोक्त नक्षत्र–तिथि–वारयोगेषु शिशोश्चन्द्रबले अन्नप्राशनमारभेत । तद्यथा–गुरुः उक्तवेषधारी तद्गृहे गत्वा सर्वाणि देशोत्पन्नान्यन्नानि समाहरेत् । देशोत्पन्नानि नगरप्राप्याणि फलानि च षड् विकृतीः प्रगुणीकुर्यात् । ततः सर्वेषामन्नाना सर्वेषां शाकाना सर्वासा विकृतीनां घृत–तैल–क्षुरस–गोरस–जलपाकैर्बहून् परःशतान् पृथक्प्रकारान् कारयेत । ततोऽर्हत्प्रतिमाया बृहत्स्नात्रविधिना पञ्चामृतस्नात्रं कृत्वा पृथक्पात्रे स्थापयेत् । अन्न-शाक-विकृतिपाकान् जिनप्रतिमाग्रतो नैवेद्यमन्त्रेण अर्हत्कल्पोक्तेन ढौकयेत्, फलान्यपि

सर्वाणि ढौकयेत् । ततः शिशोः अर्हत्स्नात्रोदकं पाययेत् । पुनरपि तानि सर्वाणि वस्तूनि जिनप्रतिमानैवेद्योद्धरितानि अमृतास्रवमन्त्रेण सूरिमन्त्रमध्यगेन श्रीगौतमप्रतिमाग्रे ढौकयेत् । तत उद्धरितानि कुलदेवतामन्त्रेण तद्देवीमन्त्रेण गोत्रदेवीप्रतिमाग्रे ढौकयेत् । तत्कुलदेवीनैवेद्याद् योग्याहारं मङ्गलेषु गीयमानेषु माता सुतमुखे दद्यात् । गुरुश्चाऽमुं वेदमन्त्रं पठेत्—

भाषा—अिस लिये छट्ठे मासमें लड़केको और पाँचवें मासमें लड़कीको, पहिले कहे हुअे तिथि वार और नक्षत्रके योगमें, अुस बच्चेको चन्द्रमाका बल होने पर अन्न खिलानेकी शूरुआत करें । वह अिस प्रकार—पहिले कहे हुअे वेषधारी गुरु अुसके घरमें जाकर अुस देशमें अुत्पन्न होनेवाले सभी प्रकारके धान्यको अिकट्ठा करें । तथा अुस देशमें अुत्पन्न होनेवाले और अुस शहरमें मिल सके अैसे सभी प्रकारके फल और छे प्रकारकी विकृतियाँको (दूध, दहीं, घी, तेल, गुड और कड़ा–तली हुअी चीजें; अिन छे विगअियाँको) तैयार रक्खे। पीछे सभी प्रकारके धान्य, तरकारी, और विकृतियाँको घी, तेल, अिखरस, गोरस और जलसे पकाकर भिन्न भिन्न प्रकारके सैंकड़ो पदार्थ बनवावें । अुसके बाद अर्हत्प्रतिमाका बृहत्स्नात्रविधिसे पंचामृतस्नात्र करके अलग पात्रमें स्थापन करें । अुस जिनप्रतिमाके आगे पकाया हुवा अन्न शाक और विकृतियाँको अर्हत्कल्पमें कहे हुअे नैवेद्यमन्त्रसे समर्पण करें; और अिकट्ठे किये हुअे सभी फलोंको भी समर्पण करें । अुसके बाद बालकको अर्हत्स्नात्रका जल पिलावें । फिर जिनप्रतिमाके नैवेद्यसे बची हुअी अुन सभी वस्तुओंको सूरिमन्त्रके मध्यगत अमृतास्रवमन्त्रसे श्री गौतमस्वामीकी प्रतिमाके आगे समर्पण करें । अुससे बची हुअी वस्तुओंको कुलदेवताके मन्त्रसे—अुस देवीके मन्त्रसे गोत्रदेवीकी प्रतिमाके आगे समर्पण करें । माता अुस कुलदेवीके नैवेद्यमेंसे योग्य आहार मंगल–गीतगान होते हुअे पुत्रके मुखमें देवें । अुस वख्त गुरु निम्नलिखित वेदमन्त्रको तीन दफे पढ़ें—

" ॐ अर्हँ । भगवानर्हन् त्रिलोकनाथ त्रिलोकपूजितः, सुधाधारधारितशरीरोऽपि कावलिकाहारमाहारितवान् । तपस्यन्नपि पारणाविधौ इक्षुरस-परमान्नभोजनात्- परमानन्दात् आप केवलम् । तद् देहिन् ! औदारिकशरीरमाप्तस्त्व मपि आहारय आहार, तत्ते दीर्घमायुरारोग्यमस्तु । अर्हँ ॐ ॥ " इति त्रि. मन्त्र पठेत् ।

भाषा—गुरु अुपर लिखा हुवा अिस वेदमन्त्रको तीन दफे पढें ।

ततः साधुभ्यः षड्विकृतिभिः षड्रसैराहारदानम् । यतिगुरोर्मण्डलीपट्टोपरि परमान्नपूरितसुवर्णपात्रदानम् । गृह्य-गुरवे द्रोणमात्र सर्वान्नदान, तुलामात्र सर्व घृत-तैल-लवणादिदान, प्रत्येकम् अष्टोत्तरशतमित सर्वफलदान, ताम्र-चरु-कांस्यस्थाल-वस्त्रयुग्मदानम् ।

भाषा—अुसके बाद साधुओंको छे प्रकारकी विकृतियोंसे षड्रसवाला आहारका दान देवें । गुरुमहाराज श्रीयतिजीको मडलीपट्टके अुपर रक्खा हुवा और खीरसे भरा हुवा अैसा सुवर्णपात्रका दान देवे । गृहस्थ गुरुको द्रोणप्रमाण सभी जातिका अन्नका दान करें, और घी तेल नमक वगैरा सभी तुलाप्रमाण देवे, और सभी जातिके अेकसो आठ-आठ फल देवें । तथा तांबेका चरु, कांसेका थाल और दो वस्त्र देवें ।

जिस रोज यह सस्कार करना हो अुस रोज श्रीजिनेश्वरदेवके मदिरमे स्नात्रपूजन कराना, और नैवेद्यकी जगह जो कुच्छ खीर, लड्डु, पेंडे, पूरी, कचोरी, चावल वगैरह बनाया हो सो अेक थालमे रखकर श्रीजिनप्रतिमाजीके सामने चढाना । जिस गाँवमे जिनमदिर न हो वहाँ धातुके श्रीसिद्धचक्रयन्त्रको अेक मकानमे-पधराकर अुसके सामने चढाना । पीछे घर

आकर अपने कुलमें जो बड़ी औरत हो वह या लड़केकी माता लड़केको अेक चौकी पर बैठाकर अुसके मुँहमें कवल देती जावें, और कुलगुरु अुस वख्त अुनके सामने बैठकर "ॐ अर्हँ । भगवानर्हन्० ।" अिस वेदमन्त्रको तीन दफे पढ़े ।

अन्नप्राशन–संस्कारकी विधिमें क्या क्या चाहिये ? सो कहते हैं—

" सर्वान्न–फलभेदाश्च, सर्वा विकृतयस्तथा । स्वर्ण-रूप्य-ताम्र-कांस्य—पात्राण्येकत्र कल्पयेत् ॥ १ ॥ "

भाषा—"सभी प्रकारके धान्य, सभी जातिके फल, सभी विकृतियाँ, सोनेका चाँदीका तांबेका और कांसेका पात्र (भाजन); अितनी चीज़ें अिस संस्कारमें अिकट्ठी करनी चाहिये ॥ १ ॥"

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ अन्नप्राशन–संस्कारकीर्तनरूपा नवमी कला समाप्ता ॥ ९ ॥

॥ दशमी कला ॥ कर्णवेध-संस्कारविधि ॥ १० ॥

" उत्तरात्रितय हस्तो, रोहिणी रेवती श्रुति. । पुनर्वसू मृगशिर', पुष्यो धिष्ण्यानि तत्र च ॥ १ ॥

पौष्ण-वैष्णव-करा-ऽश्विनि-चित्रा—पुष्य-वासव-पुनर्वसु-मित्रै ।
सैन्दवै' श्रवणवेधविधान, निर्दिशन्ति मुनयो हि शिशूनाम् ॥ २ ॥

लाभे तृतीये च शुभै समेते, क्रूरैर्विहीने शुभराशिलग्ने ।
वेध्यौ तु कर्णौ त्रिदशेज्यलग्ने, तिष्ये-न्दु-चित्रा-हरि-पौष्णभेषु ॥ ३ ॥

कुज-शुक्रा-ऽर्क-जीवेषु, वारेषु तिथिसौष्ठवे । शुभयोगे कनी-शिश्वो , कर्णवेधो विधीयते ॥ ४ ॥"

भाषा—दसवाँ कर्णवेध-संस्कारकी विधि कहते है । सो अिस प्रकार—कर्णवेध-संस्कार तीसरे पाँचवे या सातवे वर्षमे कराना चाहिये । " तीन अुत्तरा, हस्त, रोहिणी, रेवती, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशीर्ष और पुष्य, अिन नक्षत्रोंमे ॥ १ ॥ रेवती, श्रवण, हस्त, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, धनिष्ठा, पुनर्वसु और अनुराधा, चन्द्र सहित अिन नक्षत्रोंमे बालकको कर्णवेध करनेका

मुनियों बतलाते हैं ॥ २ ॥ लाभ—११ वाँ या तृतीय—३ रा घरमें शुभग्रहोंसे सहित होवे, या शुभराशिलग्नमें क्रूर ग्रहोंसे रहित होवे, बृहस्पति या लग्नाधिप लग्नमें होवे तो कर्णवेध करना । जिसमें चन्द्रमा, नक्षत्र-पुष्य, चित्रा, श्रवण और रेवती जानना ॥ ३ ॥ मंगल, शुक्र, सूर्य और बृहस्पति; अिन वारोंमें; शुभ तिथिमें और शुभ योगमें लड़का या लड़कीका कर्णवेध करना ॥ ४ ॥ ”

एतेषु निर्दोषवर्ष-मास-तिथि-वार-र्क्षेषु शिशो रवि-चन्द्रबले कर्णवेधमारभेत । उक्तं च—

“ गर्भाधाने पुंसवने, जन्मन्यर्केन्दुदर्शने । क्षीराशने तथा षष्ठ्यां, शुचौ नामकृतावपि ॥ १ ॥

तथाऽन्नप्राशने मृत्यौ, संस्कारेष्वेष्ववश्यतः । शुद्धिर्वर्षस्य मासस्य, न गवेष्या विचक्षणैः ॥ २ ॥

कर्णवेधादिकेष्वन्य-संस्कारेषु विवाहवत् । शुद्धिं वत्सर-मास-र्क्ष—दिनानामवलोकयेत् ॥ ३ ॥” यथा—

भाषा—अिन निर्दोष वर्ष, मास, तिथि, वार और नक्षत्रोंमें, सूर्य और चन्द्रका बल होने पर बालकके कर्णवेधका आरंभ करें। कहा है कि—“ गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, सूर्य-चन्द्रदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, शुचिकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन और मृत्यु; अिन संस्कारोंमें अवशपना यानि समयमर्यादा अनिर्णीत होनेसे विचक्षण पुरुषोंने वर्ष और मासकी शुद्धि न देखनी चाहिये ॥ १-२ ॥ मगर जिनमें मुकरर समय अपनी अिच्छानुसार रख सकते हैं अैसे कर्णवेधादि दूसरे संस्कारोंमें तो विवाहकी तरह वर्ष, मास, नक्षत्र और दिनकी शुद्धि अवश्य ही देखनी चाहिये ॥ ३ ॥ ”

कर्णवेध-सम्स्कारकी विधि अिस प्रकार है—

तृतीये पञ्चमे सप्तमे वर्षे निर्दोषे शिशोरादित्यबलशालिनि मासे, गुरुः शुभे दिने शिशुं शिशुमातरं च अमृतामन्त्राभिमन्त्रितजलैर्मङ्गलगानमुखाऽविधवाकरैः स्नपयेत्। तत्र च कुलाचारसपद्‌तिरिक्तविशेषेण सतैलनिषेकं त्रि पञ्च-सप्त नवै कादशदिनानि स्नानम्। तद्‌गृहे पौष्टिकाधिकारमोक्त पौष्टिक सर्वं विधेयम्। षष्ठीवर्जित मातृकाष्टकपूजन पूर्ववद् विधेयम्। ततः स्वकुलानुसारेण अन्यग्रामे कुलदेवतास्थाने पर्वते नदीतीरे गृहे वा कर्णवेध आरभ्यते। तत्र मोदक-नैवेद्यकरण-गीतगान-मङ्गलाचारमभृति स्वस्वकुलागतरीत्या करणीयम्। ततः बाल सुखासने पूर्वाभिमुखमुपवेशयेत्। तस्य कर्णवेधं विदध्यात्। तत्र गुरुरमुं वेदमन्त्र पठेत्। यथा—

भाषा—दोष रहित अैसे तीसरे पाँचवें या सातवें वर्षमें, बालकका सूर्य बलवान् हो अैसे मासमें, और शुभ दिनमें कुल-गुरु अमृतामन्त्रसें अभिमन्त्रित जलसें बालकको और बालककी माताको मंगल-गीतगान गाती हुअी अैसी सोहागन और-तोंके हाथसें स्नान करावे। अुसमें अपने अपने कुलके आचार मुताबिक विशेष संपत्तिके अनुसार तीन, पाँच, सात, नौ या ग्यारह दिन तक तेल सिंचनके साथ स्नानविधि करें। आगे पौष्टिक अधिकारमें कही हुअी सभी पौष्टिकविधि अुसके घरमें करें। और पेस्तर षष्ठीजागरण-सस्कारमें जो आठ माताओंकी और षष्ठीकी पूजनविधि कही है, अुनमेंसे षष्ठीको छोड करके आठों माताओंका पूजन पहिलेकी तरह करना। अुसके बाद अपने अपने कुलके आचार अनुसार दूसरे गाँवमें, कुलदेवताके स्थानमें, पहाड पर, नदीके किनारे पर या घरमें कर्णवेधका आरंभ करें। वहाँ पर लड्डु-नैवेद्य बनाना, गीतगान और मंग-लाचार करना, वगैरह अपने अपने कुलकी परंपरासे चली आती रीतिके अनुसार करना चाहिये। पीछे बालकको पूर्वदिशाके सामने सुखपूर्वक आसन पर बैठाके अुसका कर्णवेध करें। अुस वख्त गुरु निम्नलिखित वेदमन्त्रको पढें। सो अिस प्रकार—

“ ॐ अर्हँ। श्रुतेनाऽङ्गैरुपाङ्गैः, कालिकैरुत्कालिकैः, पूर्वगतैश्चूलिकाभिः परिकर्मभिः सूत्रैः पूर्वानुयोगैः, छन्दोभिर्लक्षणैर्निरुक्तैर्धर्मशास्त्रैः विद्धकर्णौ भूयात् । अर्हँ ॐ ॥ ”

भापा—बालकका कर्णवेध करें तब अुपर लिखा हुवा वेदमन्त्रको कुलगुरु पढ़े ।

शूद्रादेस्तु— “ ॐ अर्हँ। तव श्रुतिद्वयं हृदयं धर्मविद्धमस्तु ॥ ” इत्येव वाच्यम् ।

भापा—मगर शूद्र वगैरहके कर्णवेधके वख्त तो “ ॐ अर्हँ, तव श्रुतिद्वयं० ” अित्यादि अुपर लिखा ही वेदमन्त्र पढ़ें ।

ततो बालं यानस्थं नर-नार्युत्सङ्गस्थं वा धर्मागारं नयेत् । तत्र मण्डलीपूजां पूर्वोक्तविधिना विधाय शिशुं यतिगुरुपादाग्रे लोटयेत् । यतिगुरुर्विधिना वासक्षेपं कुर्यात् । ततो बालं तद्गृहं नीत्वा गृह्यगुरुः कर्णाभरणे परिधापयेत् । यतिगुरुभ्यश्चतुर्विधाहार-वस्त्र-पात्रदानम्, गृह्यगुरवे वस्त्र-स्वर्णदानं च ।

भापा—अुसके बाद बालकको वाहनमें बैठाके या नर-नारी अपनी गोदमें लेकर अुपाश्रयमें ले आवें । वहाँ पहिले कही हुअी विधिसे मंडलीपूजा करके बालकको गुरुमहाराज श्री यतिजीके चरणोंके आगे लोटावें । तब यतिगुरु विधिपूर्वक वासक्षेप करें । अुसके बाद बालकको अुसके घर लेजाकर गृहस्थ गुरु अुसके कानोंमें आभूपण पहिनावें । बालकके माता-पिता वगैरह घरके लोग यतिगुरुओंको चारों प्रकारके आहार, वस्त्र और पात्रका दान देवें; और गृहस्थ गुरुको वस्त्र रूपिये और स्वर्णका दान देकर अुसको खुश करें ।

कणवेध-सस्कारमे क्या क्या वस्तु चाहिये ? सो कहते है—

" पौष्टिकस्योपकरण, मातृपूजा कुलोचितम् । अन्यद्वस्तु कर्णवेधे, योजनीय महात्मभि' ॥ १ ॥ "

भाषा—" कर्णवध-सस्कारमे पौष्टिक क्रियाके लिये साधन-सामग्री, आठ माताओंकी पूजाके लिये जो जो वस्तु चाहिये सो, तथा ओर भी अपने अपने कुलाचार मुताबिक जो जो चीजें चाहिये सो महात्माओंने अिकट्ठी करनी चाहिये ॥ १ ॥ "

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ कर्णवेध-सस्कारकीर्तनरूपा दशमी कला समाप्ता ॥ १० ॥

॥ ७९ ॥

॥ एकादशी कला ॥ चूडाकरण-संस्कारविधिः ॥ ११ ॥

" हस्तत्रये मृगज्येष्ठे, पौष्णादित्यश्रुतिद्वये । एक-द्वि-त्रि-पञ्च-सप्त—त्रयोदश-दशस्वपि ॥ १ ॥
एकादशाख्यतिथिषु, शुक्र-सोम-बुधेष्वपि । क्षुरकर्म विधेयं स्यात्, सद्बले चन्द्र-तारयोः ॥ २ ॥
न पर्वसु न यात्रायां, न च स्नानात् परात्परम् । न भूषितानां नो सन्ध्या-निशगे निशि नैव च ॥ ३ ॥
न सङ्ग्रामे नाऽश्वमे वा, नोक्ताऽन्यतिथि-वारयोः । नाऽन्यत्र मङ्गले कार्ये, क्षुरकर्म विधीयते ॥ ४ ॥
क्षीरर्क्षेषु स्वकुलविधिना चौलमाहुर्मुनीन्द्राः, केन्द्रगतैर्गुरु-भृगु-बुधैस्तत्र मृत्युं ज्वरश्च ।
शस्त्राघातो धरणितनये पङ्गुता चाऽर्कपुत्रे, शीतज्योतिष्यपचिततनौ निश्चितं नाश एव ॥ ५ ॥
षष्ठ्य-ष्टम्यौ चतुर्थी च, सिनीवालीं चतुर्दशीम् । नवमीं नाऽर्कमन्दारान्, क्षुरकर्मणि वर्जयेत् ॥ ६ ॥
धन-व्यय-त्रिकोणगै-रसद्ग्रहैर्मृतानपि । क्षुरक्रिया न शोभना, शुभेषु पुष्टिकारिणी ॥ ७ ॥

भाषा—" हस्त, चित्रा, स्वाति, मृगशीर्ष, ज्येष्ठा, रेवती, पुनर्वसु, श्रवण वा धनिष्ठा, इन नक्षत्रोंमें; १-२-३-५-७-१०-११ वा १३, इन तिथियोंमें; शुक्र सोम या बुध, इन वारोंमें; चन्द्र और तारेका बल होने पर क्षौरकर्म (मुंडन) कराना चाहिये ॥ १-२ ॥

पर्वके दिनोंमे, यात्रामे, स्नानके बाद, भोजनके बाद, विभूषाके बाद, तीनों सध्यामे, रात्रिमे, सभामे यानि लडाओमे, क्षयतिथिमे, पहिले कहे हुओ तिथि और वारोंको छोडकर दूसरे तिथि और वारोंमे, और दूसरे भी मगलकार्यमे क्षोरकर्म नहीं करना चाहिये ॥ ३-४ ॥ क्षोर नक्षत्रोंमे अपने कुलकी विधिसे चूडाकरण (चोटी रखकर मुडन) करना योग्य है अैसा मुनीन्द्रों कहते है । किंतु गुरु शुक्र और बुध ये तीन ग्रह केन्द्रमे १-४-७-१० वें स्थानमे होने चाहिये। यदि केन्द्रमे सूर्य होवे तो ज्वर होवे, मगल होवे तो शस्त्रसे नाश होवे, शनि होवे तो पगुपना होवे, और क्षीणचन्द्र होवे तो नाश ही होवे ॥ ५ ॥ षष्ठी, अष्टमी, चतुर्थी, सिनीवाली यानि चतुर्दशीयुक्त अमावास्या, चतुर्दशी, और नवमी, अिन तिथियोंमे, रवि शनि और मगल, अिन वारोंमे क्षौरकर्म न करावें ॥ ६ ॥ धन २, व्यय १२, और त्रिकोण ५-९, अिन घरोंमे क्रूर (पाप) ग्रह होवें तो मृत्यु होने पर भी मुडनक्रिया अच्छी नहीं, और अिन घरोंमे शुभग्रह हो तो मुडनक्रिया पुष्टिके लिये होती है ॥ ७॥

ततो बालकस्य आदित्यबलयुते मासे, चन्द्र-ताराबलयुते दिने, उक्तेषु तिथि-वार-र्क्षेषु कुलाचारानुसारेण, कुलदेवतारूपे अन्यग्रामे वने पर्वते वा गृहे वा पूर्वं शास्त्रोक्तरीत्या पौष्टिकं निदध्यात् । ततो मातृपूजा पूर्ववदेव षष्ठीपूजावर्जितं सर्वम् । ततः कुलाचारानुसारेण नैवेद्य-देयपक्वान्नादिकरणम् । ततो बालं गृह्यगुरुः सुस्नातमासने निवेश्य बृहत्स्नात्रविधिकृतेन जिनस्नात्रोदकेन शान्तिदेवीमन्त्रेणाऽभिषिञ्चेत् । ततः कुलक्रमागतनापितकरेण मुण्डनं कारयेत् । शिरोमध्यभागे शिखां स्थापयेद् वर्णत्रयस्य, शूद्रस्य पुनः सर्वमुण्डनमेव । चूडाकरणे क्रियमाणे अमुं वेदमन्त्रं पठेत् । यथा—

भाषा—अिस लिये बालकके सूर्यबल सहित महिनेमे तथा चन्द्र और ताराके बलयुक्त दिनमे, पूर्वोक्त तिथि वार और नक्षत्रोंमे, अपने कुलाचार अनुसार कुलदेवताकी प्रतिमाके आगे या दूसरे गाँवमे या वनमे या पर्वत अुपर या घरमे शास्त्रोक्त

॥ ८१ ॥

रीतिसे पहिले पौष्टिककर्म करें । अुसके बाद षष्ठीपूजाको छोड़कर पहिलेकी तरह मातृपूजाका सब विधि-विधान करें । अुसके बाद अपने कुलके आचार मुताबिक नैवेद्य और देवको धरनेके लिये पक्वान्नादि बनावें । पीछे गृहस्थगुरु स्नान कराया हुवा बालकको आसन पर बैठाके बृहत्स्नात्रविधिसे किये हुवे जिनस्नात्रके जलसे शांतिदेवीके मन्त्रसे सिंचन करें । अुसके बाद अपनी कुलपरंपरासे आये हुवे नाअीके हाथसे मुंडन करावें । अुसमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अिन तीन वर्णके सिरके मध्य-भागमें शिखा-चोटी रक्खें, और शूद्रको संपूर्ण सिरमें मुंडन करें । चूडाकरण-संस्कार करते वख्त गुरु निम्न लिखित वेद-मन्त्रको सात दफे पढ़े । सो अिस प्रकार—

“ ॐ अर्हं । ध्रुवमायुर्ध्रुवमारोग्यं, ध्रुवाः श्रियो, ध्रुवं कुलं, ध्रुवं यशो, ध्रुवं तेजो, ध्रुवं कर्म, ध्रुवा च कुलसन्ततिरस्तु । अर्हं ॐ ॥ ” इति सप्तवेलं पठन् शिशुं तीर्थोदकैरभिषिञ्चेत् ।

भाषा—अिस वेदमन्त्रको सात दफे पढ़ता हुवा गुरु बालकको तीर्थजलसे सिंचन करें ।

गीत-वाद्यादि सर्वत्र योज्यम् । ततो बालकं पञ्चपरमेष्ठिपठनपूर्वम् आसनादुत्थाप्य स्नपयेत्, चन्दनादिभिरनुलेपयेत्, शुभ्रवासांसि परिधापयेत्, भूषणैर्भूषयेत् । ततो धर्मागारं नयेत् । ततः पूर्वरीतया मण्डलीपूजा-गुरुवन्दना-वासक्षेपादि । ततः साधुभ्यो वस्त्रा-ऽन्न-पात्रदानं षड्विकृतिदानं च । गृह्यगुरवे वस्त्र-स्वर्णदानम् । नापिताय वस्त्र-कङ्कणदानम् ।

भाषा—अिस चूडाकरण-संस्कारमें भी सोहागन औरतोंका मंगलगीत गाना, और सुरीले बाजित्र बजवाना, वगैरा पहिलेकी माफिक समजना । अुसके बाद गुरु पंचपरमेष्ठि मन्त्रको पढ़कर बालकको आसनसे उठाकर स्नान करावें । पीछे चंदन

वगैरा सुगधी वस्तुओंसें विलेपन करावें, सफेद वस्त्र पहिनावें, और आभूषणोंसें अलङ्कृत करावें। अुसके बाद धर्मागार-अुपाश्रयमें ले जावें। वहाँ पूर्वरीतिसें मडलीपूजा, गुरुवन्दन और वासक्षेपादि करे। पीछे साधुओंको शुद्ध वस्त्र आहार और पात्रका दान देवें, और छे प्रकारकी मिठ्ठाँका दान देवें। गृहस्थ गुरुको वस्त्र और सुवर्णका दान देवें। नाओीको वस्त्र और कॅगनका दान देवें।

जिस रूमालमें बाल गिरें अुसमें रूपिये-महोर जो कुच्छ ताकात हो डालना, और नाओीको पघडी-दुपट्टा अिनाम देना, क्यों कि अुसने लडकेके बाल अव्वल अुतारे है। बाल अुतराये बाद दहीं या दूधसे लडकेका सिर धुलाकर स्वच्छ पानीसे अुसको नल्हाना चाहिये। ताकत हो तो अुस रोज अपनी जाति-बिरादरीके लोगोंको भोजन जिमाना, और जिनमदिरमें अगी-रोशनी कराकर धर्मको तरक्की देना जरुरी बात है।

यह चूडाकरण-सस्कार जन्मसे सवा वर्षके भीतर करना चाहिये। कओी लोग तीन-तीन वर्ष तक और कओी लोग आठ-आठ वर्ष तक बाल रखते हैं, यह बिल्कुल मुनासिब नहीं। क्यों कि लडकेके बालमें अव्वल तो जूऑ पड़ेगी, दूसरे गर्मीके दिनोंमें सिवाय तकलीफके दूसरी कोओी शिकल नजर न आयगी। अिस लिये मुनासिब है कि जल्दी कराना। कओी लोग चोटी रख कर अपना काम धका लेते है, मगर यह सभी दुनियादारोंके जूठ बहाने है। अपनी मतलबमें सब सवार है। ज्ञानियोंके फरमाने पर खयाल नहीं रखते। अच्छे लोगोंको लाजिम है कि, जैसा ज्ञानी फरमावें वैसा करे। कितनेक लोग देव-देवीकी मानता करते हैं कि, हमारा लडका अितने वर्षका होगा तब आपके मकान पर आकर अुसके केश अुतरवायेंगे, आपकी बदौलत हमारा लडका जीता रहे। मगर याद रक्खो! ये सब बातें तुम लोगोंने खिलाफ हुक्म तीर्थंकरके बनाओी

॥ ८३ ॥

हुआी है । तीर्थंकरोंका फरमाना है कि, अपनी-अपनी तकदीरसे सब कुच्छ होता है, कोअी किसीको न जिलाता है न मारता है । अिस लिये अिन वाहियात वातोंको छोड़ो और तीर्थंकरोंके हुक्मकी तामील करो ।

चूडाकरण-संस्कारमें क्या क्या चाहिये ? सो कहते है—

“ पौष्टिकस्योपकरणं, मातॄणां पूजनस्य च । मुण्डने योजनीयं स्याद्, नैवेद्यं च कुलोचितम् ॥ १ ॥ ”

भाषा—“ मुंडन क्रियामें पौष्टिककर्मके लिये अुपकरण, मातृओंका पूजन करनेके लिये अुपकरण, और अपने कुलके आचार योग्य नैवेद्य; अितनी वस्तु चाहिये ॥ १ ॥

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ चूडाकरण-संस्कारकीर्तनरूपा एकादशी कला समाप्ता ॥११॥

॥ द्वादशी कला ॥ उपनयन–सस्कारविधि ॥ १२ ॥

अथ उपनयनविधिरुच्यते । उपनीयते वर्णक्रमारोहयुक्त्या प्राणी पुष्टिं नीयतेऽनेन इत्युपनयनम् ।
श्रवणश्च धनिष्ठा च, हस्तो मृगशिरस्तथा । अश्विनी रेवती स्वाति–श्चित्रा चैव पुनर्वसु ॥ १ ॥

तथा च– सौम्ये पौष्णे वैष्णवे वासवाख्ये, हस्त–स्वाती त्वाष्ट्र–पुष्या–ऽश्विनीषु ।
ऋक्षेऽदित्या मेखलाबन्धमोक्षौ सस्मर्यंते नूनमाचार्यवर्यैं ॥ २ ॥

गर्भाधानादष्टमे जन्मतो वा, मौञ्जीबन्ध' शस्यते ब्राह्मणानाम् ।
राजन्याना नूनमेकादशाब्दे, वैश्याना च द्वादशे वेदविद्भि' ॥ ३ ॥

वर्णाधिपे बलोपेते, उपनीतिक्रिया हिता । सर्वेषा वा गुरौ चन्द्र, सूर्ये च बलशालिनि ॥ ४ ॥
शाखाधिपे बलिनि केन्द्रगतेऽथवाऽस्मिन, वारेऽस्य चोपनयन गदित द्विजानाम् ।
नीचस्थितेऽरिगृहगे च पराजिते स्याद्, जीवे भृगौ श्रुतिविधि' स्मृतिकर्महीना ॥ ५ ॥

लग्ने जीवे भार्गवे च त्रिकोणे, शुक्रांशस्थे स्याद्विधौ वेदविच्च ।
सौरांशस्थे सूरिलग्ने सशुक्रे, विद्याशीलः प्रोज्झितः स्यात् कृतघ्नः ॥ ६ ॥

स्वानुष्ठाने रतः स्यात् प्रवरमतियुतः केन्द्रसंस्थे सुरेज्ये, विद्यासौख्यार्थयुक्तो ह्युशनसि शशिजेऽध्यापकश्च प्रदिष्टः ।
सूर्ये राजोपसेवी भवति धरणिजे शस्त्रवृत्तिर्द्विजन्मा, शीतांशौ वैश्यवृत्तिर्दिनकरतनये सेवकश्चाऽन्त्यजानाम् ॥ ७ ॥

शन्यंशे ह्युदयति मूर्खताऽर्कभागे, क्रूरत्वं भवति च पापधीः कुजांशे ।
चन्द्रांशे त्वतिजडिमा बुधे पटुत्वं, प्रज्ञत्वं गुरु-भृगुभागयोर्गृणन्ति ॥ ८ ॥

सार्के जीवे निर्गुणोऽर्थेन हीनः, क्रूरः सारे स्यात् पटुः सत्समेते ।
भानोः पुत्रेणाऽलसो निर्गुणश्च, स्याच्छुक्रेन्दू जीववत् सप्रकल्पौ ॥ ९ ॥

निर्दोषिष्वेषु धिष्ण्येषु, वारेष्वपि कुजं विना । सुतिथौ दिनशुद्धौ च, दिवा लग्ने शुभग्रहे ॥ १० ॥
विवाहवत् त्याज्यमृक्ष-दिन-मासादि वर्जयेत् । पञ्चमे ग्रहनिर्मुक्ते, लग्नेऽस्मिन् व्रतमाचरेत् ॥ ११ ॥

भाषा—अब बारहवाँ अुपनयन-संस्कारकी विधि कहते हैं। जिस संस्कारसे प्राणी वर्णके क्रमसे आरोहण करनेद्वारा पुष्टिको-अभ्युदयको प्राप्त करें, अुसको अुपनयन-संस्कार कहते हैं। श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, मृगशिर, अश्विनी, रेवती, स्वाति, चित्रा

अिन नक्षत्रोंमे
और पुनर्वसु ॥ १ ॥ अिसी तरह—मृगशिर, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, स्वाति, चित्रा, पुष्य और अश्विनी,
मेखलाका[1] बंध और मोचन करें अैसा आचार्यवर्यों कहते हैं ॥ २ ॥
मौंजीबंध यानि
गर्भाधानसे या जन्मसे आठवें वर्षमे ब्राह्मणोंको, ग्यारहवें वर्षमे क्षत्रियोंको, और बारहवें वर्षमे वैश्योंको [2]
अुपनयन-संस्कारका आरंभ करना, अैसा वेदके जानकार पंडितों कहते हैं ॥ ३ ॥ वर्णाधिप बलवान् होने पर अुपनयनक्रिया
हितकारी होती है, अथवा सभी वर्णोंको गुरु चन्द्र और सूर्य बलवान् होने पर हितकारी होती है ॥ ४ ॥ बृहस्पति वार
होवे, बृहस्पति बलवान् होवे या केन्द्रगत होवे तो ब्राह्मणोंके लिये अुपनयन श्रेष्ठ है । बृहस्पति और शुक्र नीच घरमे होवे,
शत्रुके घरमे होवे, या पराजित होवे, तो श्रवणविधि स्मरणक्रियासे हीन होवे ॥ ५ ॥ लग्नमे बृहस्पति होवे, त्रिकोणमे शुक्र
होवे, और गुरुके अंशमे चन्द्रमा होवे, तो वह वेदका जानकार होय । शुक्र सहित सूर्य लग्नमे शनिके अंशमे स्थित होवे तो पढी
हुअी विद्या भूल जाय और कृतघ्न होवे ॥ ६ ॥ केन्द्रमे बृहस्पति होवे तो स्वक्रियामे रत रहनेवाला और विशेष बुद्धिशाली
होवे, शुक्र होवे तो विद्या सुख और संपत्तियुक्त होवे, बुध होवे तो प्रतिष्ठावाला अध्यापक बनें, सूर्य होवे तो राजाका सेवक
बनें, मंगल होवे तो शस्त्रसे आजीविका चलानेवाला-सैनिक ब्राह्मण होय, चन्द्रमा होवे तो व्यापारी बने, शनि होवे तो नीच
जातिका सेवक बनें ॥ ७ ॥ शनिके अंशमे मूर्खता अुदय आवें, सूर्यके अंशमे क्रूरपना आवे, मंगलके अंशमे पापबुद्धि होवे, चन्द्रके
अंशमे अतिशय जडपना आवे, बुधके अंशमे होशियार होवे, और गुरु तथा शुक्रके अंशमे सुज्ञपना होवे ॥ ८ ॥ सूर्य सहित
बृहस्पति होवे तो निर्गुणी और धनरहित होय, मंगल सहित सूर्य होवे तो क्रूर होय, बुध सहित होवे तो होशियार, शनि सहित
होवे तो आलसु और निर्गुणी बनें, तथा शुक्र और चन्द्रमा सहित होवे तो बृहस्पति समान होय अैसा जानना ॥ ९ ॥

१ जिसका अुपनयन-संस्कार कराया जाय उस ब्रह्मचारीको कटिके उपर मुंज जातिका घासका बनाया हुवा कंदोरा पहनाया जाता है
उसको यहाँ मेखला कहते है । २ मुंजजातिका घासका बनाया हुआ कंदोरा ।

॥ ८७ ॥

अिन पूर्वोक्त निर्दोष नक्षत्रोंमें, मंगलवारको छोड़कर अन्य वारमें शुभ तिथिमें, दिनशुद्धियुक्त दिनमें और शुभग्रह युक्त लग्नमें ॥ १० ॥ विवाहकी तरह जो जो नक्षत्र दिन और मास वगैरह त्याज्य हो अुनको छोड़कर ग्रह रहित पंचमलग्नमें व्रत आचरें—अुपनयन-संस्कार करें ॥ ११ ॥

पूर्वं यथासंपत्ति उपनेयपुरुषस्य सप्ताहं नवाहं वा पञ्चाहं त्र्यहं वा सतैलनिषेकं स्नानं कारयेत्। ततो लग्नदिने गृह्यगुरुस्तद्गृहे ब्राह्मे मुहूर्ते पौष्टिकं कुर्यात्। तदनन्तरमुपनेयशिरसि शिखावर्जितं केशवपनं कारयेत्। ततो वेदीस्थापनम्। तन्मध्ये वेदीचतुष्किका कार्या। वेदीप्रतिष्ठा विवाहाधिकारादवसेया। तत्र वेदीचतुष्किकायां समवसरणरूपं चतुर्मुखं जिनविम्बं निवेशयेत्। तदभ्यर्च्य गुरुः उपनेयं सदशश्वेतनिवसनपरिधानं कृतवस्त्रोत्तरासङ्गम् अक्षत–नालिकेर–क्रमुक-हस्तं त्रिः प्रदक्षिणां कारयेत्। ततो गुरुरुपनेयं वामपार्श्वे संस्थाप्य पश्चिमाभिमुखविम्बसंमुखमुपविश्य शक्रस्तवं प्रथमार्हत्स्तोत्रयुक्तं पठेत्। पुनस्त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य उत्तराभिमुखजिनविम्बाभिमुखस्तथैव शक्रस्तवं पठेत्। एवं त्रिः प्रदक्षिणान्तरितं पूर्वाभिमुख–दक्षिणाभिमुखजिनविम्बेऽपि शक्रस्तवं पठेत्। मङ्गलगीत–वादित्रादि तत्र बहु विस्तारणीयम्। ततस्तत्र आचार्यो–पाध्याय–साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविकारूपं श्रीश्रमणसंघं संघट्टयेत्। ततः प्रदक्षिणा–शक्रस्तवपाठादनन्तरं गृह्यगुरुरुपनयनप्रारम्भहेतुं वेदमुच्चरेत्, उपनेयस्तु दूर्वा–फलपरिपूर्णकर ऊर्ध्वस्थितो जिनाग्रे कृताञ्जलिः शृणुयात्। उपनयनारम्भवेदमन्त्रो यथा—

भापा—पहिले अपनी संपत्तिके अनुसार जिसको अुपनयन संस्कार कराया जाय अुस पुरुषको सात या नव या पाँच या तीन दिन तक तेल (पीठीमर्दन) लगाकर स्नान करावें। अुसके बाद गृहस्थ गुरु लग्नदिनमें अिसके घरमें ब्राह्ममुहूर्तमें

पौष्टिककिया करें। पीछे जिसको अुपनयन-सस्कार कराना हो अुसके सिर पर शिखा-चोटीको छोडकर मुडन करावें। अुसके बाद वेदी स्थापन करें। अुसके मध्यभागमे वेदीकी चौकी (बाजोठ) स्थापन करें। वेदीकी प्रतिष्ठाविधि विवाह अधिकारमे आती है, वहांसे जान लेना। वहां चौकीके अुपर समवसरणरूप चोमुखजी यानि चारों दिशा तरफ चार जिनबिंब स्थापन करें, और अुनकी पूजा करें। पीछे जिसने छेड़ायाल, सफेद वस्त्र पहिना है, वस्त्रका अुत्तरासग किया है, तथा चावल नारियल और सुपारी हाथमे रक्खे हुे अैसे अुस अुपनेयसे यानि जिसका अुपनयन-सस्कार कराया जाता है अुससे गृहस्थ गुरु समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करावे। अुसके बाद गुरु पश्चिम दिशाके सन्मुख रहे हुअे श्री जिनबिंबके सन्मुख बैठकर और अपनी बांओी तरफ अुपनयन-सस्कारवालेको बैठाकर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवस्वामीके स्तोत्र सहित शक्रस्तव-नमुत्थुण पढें। फिर तीन प्रदक्षिणा देकर अुत्तर दिशाके सन्मुख रहे हुअे श्री जिनबिंबके सन्मुख बैठकर वैसे ही शक्रस्तव पढें। अिसी तरह तीन-तीन प्रदक्षिणा देकर पूर्व दिशाकी सन्मुख और दक्षिण दिशाकी सन्मुख रहे हुअे श्रीजिनबिंबके आगे भी शक्रस्तव पढें। अिस वख्त मागलिक गीत और सुरिले वाजिंत्रोंका बजवाना विस्तारसे करें। तथा वहां आचार्य, अुपाध्याय, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप श्री श्रमणसघको अिकट्ठा करें। अुसके बाद प्रदक्षिणा और शक्रस्तवके पाठके अनतर गृहस्थगुरु अुपनयन-सस्कारके प्रारभके लिये वेदमन्त्रका अुच्चार करें, और जिसका अुपनयन-सस्कार कराया जाता है वह, श्री जिनेश्वर परमात्माकी प्रतिमाके आगे खडा होकर हाथमें दूर्वा और फल लेकर अजलि करके अुस वेदमन्त्रको सूनें। गृहस्थ गुरु अुपनयन-सस्कारके आरभका वेदमन्त्र अिस प्रकार पढें—

“ॐ अर्हं। अर्हद्भ्यो नमः। सिद्धेभ्यो नमः। आचार्येभ्यो नमः। उपाध्यायेभ्यो नम। साधुभ्यो नमः। ज्ञानाय नम'। दर्शनाय नमः। चारित्राय नम.। सयमाय नम.। सत्याय नम। शौचाय नम.। ब्रह्मचर्याय नमः।

आकिञ्चन्याय नमः। तपसे नमः। शमाय नमः। मार्दवाय नमः। आर्जवाय नमः। मुक्तये नमः। धर्माय नमः। संघाय नमः। सैद्धान्तिकेभ्यो नमः। धर्मोपदेशकेभ्यो नमः। वादिलब्धिभ्यो नमः। अष्टाङ्गनिमित्तज्ञेभ्यो नमः। तपस्विभ्यो नमः। विद्याधरेभ्यो नमः। इहलोकसिद्धेभ्यो नमः। कविभ्यो नमः। लब्धिमद्भ्यो नमः। ब्रह्मचारिभ्यो नमः। निष्परिग्रहेभ्यो नमः। दयालुभ्यो नमः। सत्यवादिभ्यो नमः। निःस्पृहेभ्यो नमः। एतेभ्यो नमस्कृत्याऽयं प्राणी प्राप्तमनुष्यजन्मा प्रविशति वर्णक्रमम्। अर्हं ॐ॥"

भाषा—अिस प्रकार गृहस्थ गुरु वेदमन्त्रको पढ़े, और जिसका अुपनयन-संस्कार कराया जाता है वह श्रीजिनेन्द्रकी प्रतिमाजीके आगे खड़ा रह कर अेकाग्र चित्तसे सुनें।

इति वेदोच्चारं विधाय पुनरपि पूर्ववत् त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य चतुर्दिक्षु शक्रस्तवपाठं सयुगादिदेवस्तवं कुर्यात्। तद्दिने उपनेयस्य जल-यवान्नभोजनेन आचाम्लप्रत्याख्यानं कारयेत्। ततश्च उपनेयं वामपार्श्वे संस्थाप्य सर्वतीर्थोदकैः अमृतामन्त्रेण कुशाग्रैरभिषिञ्चेत्। ततः परमेष्ठिमन्त्रं पठित्वा "नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः" इति कथयित्वा जिनप्रतिमाग्रे पूर्वाभिमुखमुपनेयं निवेशयेत्। ततो गृह्यगुरुश्चन्दनमन्त्रेणाऽभिमन्त्रयेत्। चन्दनमन्त्रो यथा—

भाषा—अैसे वेदमन्त्रका अुच्चार करके, गृहस्थगुरु फिर भी पहिलेकी तरह श्री चोमुखजीको तीन प्रदक्षिणा करके चारों दिशाओंमें श्री ऋषभदेवस्वामीके स्तवनयुक्त शक्रस्तव-नमुत्थुणंका पाठ करें। अुस दिन अुपनयन-संस्कार कराया जाता है अुसको जिसमें केवल जल और जौंका ही भोजन किया जाय अैसा आयंबिल तपका पच्चक्खाण करावें। पीछे गृहस्थगुरु अुपनयन-संस्कारवालेको अपनी बाँअी बाजु बैठाकर अमृतामन्त्रसे अभिमन्त्रित अैसे सर्वतीर्थोंके जलसे दर्भके अग्रभागद्वारा

सिंचन करें । अुसके वाद परमेष्ठिमत्रको पढ़के " नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य " अैसा कहकर अुस अुपनयन-संस्कारवालेको श्री जिनेश्वर परमात्माकी प्रतिमाजीके आगे पूर्वाभिमुख बैठावे । तदनतर गृहस्थगुरु चदनमत्रसें चदनको अभिमन्त्रित करें । सो चदनमत्र अिस प्रकार है—

" ॐ नमो भगवते चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय, शशाङ्क-हार-गोक्षीरधवलाय, अनन्तगुणाय, निर्मलगुणाय, भव्यजनप्रबोधनाय, अष्टकर्ममूलप्रकृतिसशोधनाय, केवलालोकविलोकितसकललोकाय, जन्म-जरा-मरणविनाशकाय, सुमङ्गलाय, कृतमङ्गलाय । प्रसीद भगवन् ! इह चन्दननामामृताश्रवण कुरु कुरु स्वाहा ॥ "

भाषा—गृहस्थगुरु अुपर लिखे हुअे चदनमत्रसे चदनको अभिमन्त्रित करें ।

अनेन मन्त्रेण चन्दनमभिमन्त्र्य हृदि जिनोपवीतरूपा, कटौ मेखलारूपा, ललाटे तिलकरूपां रेखा कुर्यात् । तत उपनेयो गुरोः पादयो " नमोऽस्तु, नमोऽस्तु " इति भणन्निपत्य ऊर्ध्वीभूतः कृताञ्जलिरिति वदेत्—

भाषा—अिस मन्त्रसे चदनको अभिमन्त्रित करके अुपनयन-संस्कारवालेके हृदयमे जिनोपवीतरूप, कटिमे मेखला-कदोरारूप, ओर ललाटमे तिलकरूप रेखा करें । अुसके वाद जिसको अुपनयन-संस्कार कराया जाता है वह " नमोऽस्तु, नमोऽस्तु— आपको मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो ' अैसा कहता हुवा गुरुके चरणोंमे पडके खडा होकर हाथ जोडके अैसा कहें—

" भगवन् ! वर्णरहितोऽस्मि, आचाररहितोऽस्मि, मन्त्ररहितोऽस्मि, गुणरहितोऽस्मि, धर्मरहितोऽस्मि, शौचरहितोऽस्मि, ब्रह्मरहितोऽस्मि । देव-र्षि-पितृ-तिथिकर्मसु नियोजय माम् ॥ "

भाषा—जिसको अुपनयन-संस्कार कराया जाता है वह अिस प्रकार गुरुके सामने हाथ जोडके बोलें ।

पुनः "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" वदन् गुरोः पादयोः निपतति । गुरुरपि इति मन्त्रं पठन् उपनेयं शिखायां धृत्वा ऊर्ध्वं कुर्यात्—

भाषा—फिर भी जिसको अुपनयन-संस्कार कराया जाता है वह "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु-आपको मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो" अैसा कहता हुआ गुरुके चरणोंमें पड़े । तब गुरु निम्न लिखित मंत्रको पढ़ता हुवा अुस अुपनयन-संस्कार-वालेको चोटीसे पकड़कर खड़ा करें—

"ॐ अर्हं । देहिन् ! निमग्नोऽसि भवार्णवे । तत् कर्षति त्वां भगवतोऽर्हतः प्रवचनैकदेशरज्जुना गुरुः । तदुत्तिष्ठ, प्रवचनादानाय श्रद्दधाहि । अर्हं ॐ ॥"

भाषा—अुपर लिखे हुअे मंत्रको पढ़ता हुआ गुरु अुस अुपनयन-संस्कारवालेको चोटीसे पकड़कर खड़ा करें ।

इति उपनेयमुत्थाप्य अर्हतः प्रतिमापुरः पूर्वाभिमुखमूर्ध्वीकुर्यात् । ततो गृह्यगुरुः त्रितन्तुवर्तिताम् एकाशीतिकरप्रमाणां मुञ्जमेखलां स्वकरद्वये निधाय अमुं वेदमन्त्रं पठेत्—

भाषा—अिस प्रकार अुपनयन-संस्कार कराया जाता है अुसको अुठाकरके श्री अरिहंत परमात्माकी प्रतिमाजीके आगे पूर्वदिशाके सन्मुख खड़ा करें । अुसके बाद गृहस्थगुरु तीन तंतुओंकी बुनी हुअी अिक्यासी हाथ प्रमाण मुंजकी मेखलाको अपने दोनों हाथमें रखकर अिस निम्न लिखित वेदमन्त्रको पढ़े—

"ॐ अर्हं । आत्मन् ! देहिन् ! ज्ञानावरणेन बद्धोऽसि, दर्शनावरणेन बद्धोऽसि, वेदनीयेन बद्धोऽसि, मोहनीयेन बद्धोऽसि, आयुषा बद्धोऽसि, नाम्ना बद्धोऽसि, गोत्रेण बद्धोऽसि, अन्तरायेण बद्धोऽसि । कर्माऽष्टकप्रकृति-

स्थिति-रस-प्रदेशैर्बद्धोऽसि । तन्मोचयति त्वा भगवतोऽर्हतः प्रवचनचेतना । तद् बुध्यस्व, मा मुहः । मुच्यतां तव कर्मबन्धनमनेन मेखलाबन्धेन । अर्ह ॐ ॥ " -

भाषा—मुजकी मेखलाको अपने दोनों हाथमे रखकर गुरु अुपर लिखा हुआ वेदमन्त्रको पढें ।

इति पठित्वा उपनेयस्य कटौ नवगुणा मेखलां बध्नीयात् । तत उपनेयः " ॐ नमोऽस्तु, नमोऽस्तु " इति कथयन् गृह्यगुरो' पादयोर्निपतति । मेखलाया एकाशीतिहस्तत्वं विप्रस्य एकाशीतितन्तुगर्भजिनोपवीतसूचनाय । क्षत्रियस्य चतुष्पञ्चाशत्करत्वात् तावत्तन्तुगर्भजिनोपनीतसूचनाय ।* नवगुणबन्धना विप्रस्य, षड्गुणबन्धना क्षत्रियस्य, त्रिगुणबन्धना वैश्यस्य । तथा मौञ्जी-कौपीन-जिनोपवीताना पूजन, गीतादिमङ्गल, निशाजागरणं तत्पूर्वदिनस्य निशि कार्यम् । ततः पुनर्गृह्यगुरु उपनेयवितस्तिपृथुल त्रिवितस्तिदीर्घ कौपीनं करद्वये निधाय—

भाषा—अिस प्रकार वेदमन्त्रको पढ़के गृहस्थगुरु अुस अुपनयन-सस्कारवालेकी कटिमे नवगुनी मेखलाको बाँधे । अुसके बाद वह अुपनयन-सस्कारवाला " ॐ नमोऽस्तु, नमोऽस्तु " अैसा कहता हुवा गृहस्थगुरुके चरणोंमे पड़ें । अिक्यासी हाथकी मेखलाका जो विधान किया है, सो ब्राह्मणको अिक्यासी तन्तुगर्भित जिनोपवीत चाहिये अैसा सूचनके लिये कहा है । क्षत्रियको चौवन हाथकी मेखलाका विधान है, सो क्षत्रियको चोवन तन्तुगर्भित जिनोपवीत चाहिये अैसा सूचनके लिये कहा है। ओर वैश्यको सत्ताअीस हाथकी मेखलाका विधान है, सो वैश्यको सत्ताअीस तन्तुगर्भित जिनोपवीत चाहिये अैसा सूचनके

* " वैश्यस्य सप्तविंशतिकरत्वात् तावत्तन्तुगर्भजिनोपवीतसूचनाय । " इत्यधिक' पाठोऽत्र सभवति ।

लिये कहा है। ब्राह्मणको नवगुनी, क्षत्रियको छे गुनी और वैश्यको तीनगुनी मेखला बाँधनी चाहिये। मौंजी कौपीन और जिनोपवीतके पूजन, गीत वगैरा मंगल, और रात्रि-जागरण; ये सब पूर्वदिनकी रात्रिमें करें। मेखलाबंधनके बाद अुपनयन-संस्कारवालेकी अेक वेंत-[1]वालिश्त प्रमाण चौडा और तीन वेंत-वालिश्त प्रमाण लंबा अैसा कौपीनको गृहस्थगुरु अपने दोनों हाथमें रखकर निम्न लिखित वेदमन्त्रको पढ़ें—

"ॐ अर्हं। आत्मन्! देहिन्! मतिज्ञानावरणेन, श्रुतज्ञानावरणेन, अवधिज्ञानावरणेन, मनःपर्ययावरणेन, केवलज्ञानावरणेन, इन्द्रियावरणेन, चित्तावरणेन आवृतोऽसि। तद् मुच्यतां तवावरणम् अनेनाऽऽवरणेन। अर्हं ॐ॥"

भाषा—गृहस्थगुरु अपने दोनों हाथमें कौपीनको रखकर अुपर लिखा हुवा वेदमन्त्रको पढें।

इति वेदमन्त्रं पठन् उपनेयस्य अन्तःकक्षं कौपीनं परिधापयेत्। तत उपनेयो "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" वदन् पुनरपि गृह्यगुरोः पादयोर्निपतेत्। ततस्त्रिस्त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य चतुर्दिक्षु शक्रस्तवपाठः। ततो लग्नवेलायां जातायां गुरुः पूर्वोक्तं जिनोपवीतं स्वकरे निदध्यात्। तत उपनेयः पुनरूर्ध्वं स्थितः करौ संयोज्य इति वदेत्—

भाषा—अिस वेदमन्त्रको पढ़ता हुवा गृहस्थगुरु अुपनयन-संस्कारवालेको कटिमेखलाके नीचे कौपीन पहिनावें। अुसके बाद वह अुपनयन-संस्कारवाला "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु—मेरा आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो" अैसा कहता हुवा फिर भी गृहस्थगुरुके चरणोंमें पड़ें। पीछे श्री चोमुखजीको तीन-तीन प्रदक्षिणा देकर चारों दिशामें शक्रस्तवका पाठ करें। अुसके बाद

[1] बारह अंगुल प्रमाण परिमाणविशेषको वेंत या वालिश्त-विल्लरा कहते हैं।

लग्नवेला होने पर गुरु पूर्वोक्त जिनोपवीतको अपने हाथमें धारण करें। अुस वख्त वह अुपनयन–सस्कारवाला फिर खडा होकर दोनों हाथ जोडके अैसा कहें—

" भगवन् ! वर्णोज्झितोऽस्मि, ज्ञानोज्झितोऽस्मि, क्रियोज्झितोऽस्मि । तज्जिनोपवीतदानेन मा वर्ण-ज्ञान-क्रियासु समारोपय ॥ "

भाषा—अिस प्रकार जिसको अुपनयन–सस्कार कराया जाता है वह कहें ।

इत्युक्त्वा " नमोऽस्तु, नमोऽस्तु " कथयन् गृह्यगुरुपादयोर्निपतेत् । गुरुः पुनः पूर्वेणोत्थापनमन्त्रेण तमुत्थाप्य ऊर्ध्वीकुर्यात् । ततो गुरुर्दक्षिणकरतलधृतजिनोपवीतः—

भाषा—अैसा कहकर " नमोऽस्तु, नमोऽस्तु—आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो " अिस प्रकार कहता हुवा वह अुपनयन–सस्कारवाला गृहस्थगुरुके चरणोंमे पडें। तब गुरु फिर " ॐ अर्हं । देहिन् ! निमग्नोऽसि भवार्णवे० " अित्यादि पूर्वोक्त अुत्थापन मन्त्रसें अुसको अुठाकर खडा करें। पीछे गुरु अपने दाहिने हाथमें जिनोपवीत रखके निम्न लिखित वेदमन्त्र पढें—

" ॐ अर्हं । नवब्रह्मगुप्ती स्वरूरण कारणा-ऽनुमतीर्धारयेः । तदनन्तरमक्षय्यमस्तु ते व्रतम् । स्व-परतरण-तारणसमर्थो भव । अर्हं ॐ ॥ " क्षत्रियस्य पुनः—

भाषा—ब्राह्मणको अुपनयन–सस्कार कराया जाय तब अुपर लिखा हुवा वेदमन्त्रको पढें ।

क्षत्रियको अुपनयन-संस्कार कराया जाय तव—

" ॐ अर्हं । नवब्रह्मगुप्तीः स्वकरण-कारणाभ्यां धारयेः । तदनन्तरमक्षय्यमस्तु ते व्रतम् । स्वस्य तरणसमर्थो भव । अर्हं ॐ ॥ "   वैश्यस्य पुनः—

भापा—क्षत्रियको अुपनयन-संस्कार कराया जाय तव अुपर लिखा हुवा वेदमंन्त्रको पढे ।

और वैश्यको अुपनयन-संस्कार कराया जाय तव—

" ॐ अर्हं । नवब्रह्मगुप्तीः स्वकरणेन धारयेः । तदनन्तरमक्षय्यमस्तु ते व्रतम् । स्वस्य तरणसमर्थो भव । अर्हं ॐ ॥ "

भापा—वैश्यको अुपनयन-संस्कार कराया जाय तव अुपर लिखा हुवा वेदमन्त्रको पढे ।

इति वेदमन्त्रेण पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रं भणन् उपनेयस्य कण्ठे जिनोपवीतं स्थापयेत् । तत उपनेयस्त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य " नमोऽस्तु, नमोऽस्तु " कथयन् गुरुं प्रणमति । गुरुरपि " निस्तारपारगो भव " इत्याशीर्वादयेत् । ततो गृह्यगुरुः पूर्वाभिमुखो जिनप्रतिमाग्रे शिष्यं वामपार्श्वे निवेश्य सर्वजगत्सारं महागमक्षीरोदधिनवनीतं सर्ववाञ्छितदायकं कल्पद्रु-कामधेनु-चिन्तामणितिरस्कारहेतुं निमेषमात्रस्मरणप्रदत्तमोक्षं पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रं गन्ध-पुष्पपूजिते दक्षिणकर्णे त्रिः श्रावयेत् । ततस्त्रिः तन्मुखेन एनमुच्चारयेत् । यथा—" नमो अरिहंताणं । नमो सिद्धाणं । नमो आयरियाणं । नमो उवज्झायाणं । नमो लोए सव्वसाहूणं " । तस्य मन्त्रप्रभावं श्रावयेत् । तद्यथा—

भापा—अिस प्रकार ब्राह्मणादि वर्णके अनुसार अुपर लिखे हुअे वेदमन्त्रको पढ़कर पचपरमेष्ठि मन्त्रको पढ़ता हुवा गुरु अुस अुपनयन-सस्कारवालेके कठमे जिनोपवीत स्थापन करें। अुसके बाद अुपनयन सस्कारवाला गुरुको तीन प्रदक्षिणा देकर "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु–आपको नमस्कार हो नमस्कार हो" अैसा कहता हुवा नमस्कार करें। तब गुरु "निस्तारपारगो भव" अैसा आशीर्वाद देवें। अुसके बाद गृहस्थगुरु श्री जिनेश्वर परमात्माकी प्रतिमाजीके आगे पूर्वदिशाके सन्मुख बैठकर और शिष्यको अपनी बाँयी बाजू बैठाकर, सकल जगत्में सारभूत, महान् आगमरूप क्षीरसमुद्रका मक्खनरूप, समग्र वाछित पदार्थोंको देनेवाला, कल्पवृक्ष कामधेनु और चिंतामणिरत्नके प्रभावसें भी अधिक प्रभावशाली, और शुद्ध भावपूर्वक अेकाग्र चित्तसे निमेष-मात्र स्मरण करनेसें मोक्षको देनेवाला अैसा माहात्म्यशाली पचपरमेष्ठि मन्त्रको अुस शिष्यके गध और पुष्पसे पूजित अैसे दाहिने कानमे तीन दफे सुनावे। पीछे अुसके मुखसे अिसी मन्त्रका तीन दफे अुच्चारण करावें। सो पचपरमेष्ठि मन्त्र अिस प्रकार है—"नमो अरिहताण, नमो सिद्धाण, नमो आयरियाण, नमो अुवज्झायाण, नमो लोअे सव्वसाहूण"। अुसके बाद गुरु अुपनयन-सस्कारवालेको अिस महामन्त्रका प्रभाव सुनावे। सो अिस प्रकार—

"सोलससु अक्खरेसु, इक्किक्कं अक्खर जगुज्जोअ। भवसयसहस्समहणो, जम्मि ठिओ पंचनवकारो ॥ १ ॥

थभेइ जल जलण, चिंतिअमित्तो अ पचनवकारो। अरि-मारि–चोर–राउल—घोरुवसग्गं पणासेइ ॥ २ ॥

एकत्र पञ्चगुरुमन्त्रपदाक्षराणि, विश्वत्रय पुनरनन्तगुणं परत्र।
यो धारयेत् किल तुलानुगतं ततोऽपि, वन्दे महागुरुतरं परमेष्ठिमन्त्रम् ॥ ३ ॥

॥ ९७ ॥

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणीप्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः ।
तेष्वप्ययं परतरः प्रथितः पुराऽपि, लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः ॥ ४ ॥
जग्मुर्जिनास्तदपवर्गपदं यदैव, विश्वं वराकमिदमत्र कथं विनाऽस्मात् ।
एतद्विलोक्य भुवनोद्धरणाय धीरै-र्मन्त्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदाऽत्र ॥ ५ ॥
इन्दुर्दिवाकरतया रविरिन्दुरूपः, पातालमम्बरमिला सुरलोक एव ।
किं जल्पितेन बहुधा भुवनत्रयेऽपि, तन्नास्ति यन्न विषमं च समं च तस्मात् ॥ ६ ॥
सिद्धान्तोदधिनिर्मन्था-न्नवनीतमिवोद्धृतम् । परमेष्ठिमहामन्त्रं, धारयेद् हृदि सर्वदा ॥ ७ ॥
सर्वपातकहर्तारं, सर्ववाञ्छितदायकम् । मोक्षारोहणसोपानं, मन्त्रं प्राप्नोति पुण्यवान् ॥ ८ ॥
धार्योऽयं भवता यत्नाद्, न देयो यस्य कस्यचित् । अज्ञानेषु श्रावितोऽयं, शपत्येव न संशयः ॥ ९ ॥
न स्मर्तव्योऽपवित्रेण, न शठेनाऽन्यसंश्रयैः । नाऽविनीतेन नो दीर्घ-शब्देनाऽपि कदाचन ॥ १० ॥
न बालानां नाऽशुचीनां, नाऽधर्मिणां न दुर्दृशाम् । न प्लुतानां न दुष्टानां, दुर्जातीनां न कुत्रचित् ॥ ११ ॥
अनेन मन्त्रराजेन, भूयास्त्वं विश्वपूजितः । प्राणान्तेऽपि परित्याग-मस्य कुर्यान्न कुत्रचित् ॥ १२ ॥

गुरुत्यागे भवेद् दु:ख, मन्त्रत्यागे दरिद्रता । गुरु-मन्त्रपरित्यागे, सिद्धोऽपि नरकं व्रजेत् ॥ १३ ॥

इति ज्ञात्वा सुगृहीत, कुर्यान्मन्त्रममुं सदा । सेत्स्यन्ति सर्वकार्याणि, तस्मादस्मान्मन्त्रतो ध्रुवम् ॥ १४ ॥ ”

भाष—“ परमेष्ठि मन्त्रके सोलह अक्षरोंसे अेक अेक भी अक्षर जगत्‌को प्रकाशित करनेवाला है, और अुसमें रहा हुवा पंचनमस्कार लाखों भवोंका नाश करता है ॥ १ ॥ चिंतित मात्रसे ही पचनमस्कार मन्त्र पानी और अग्निको स्तंभित कर देता है, तथा शत्रु मारी चोर और राजकुल या सरकारसे होनेवाले भयकर अुपसर्गका नाश करता है ॥ २ ॥ यदि तराजूके अेक बाजूसे श्रेष्ठ अैसे पॉच मन्त्रपदोंके अक्षरोंको रक्खें, और दूसरी बाजूमें अनंतगुणवाले तीनों जगत्‌को रक्खें, तो अुन तीनों जगत्‌से भी बडा भारी-अुत्कृष्ट अैसे परमेष्ठि मन्त्रको मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥ अिस दुनियामें कितने ही सुषमादि आरावाले अुत्सर्पिणी वगैरा अनत कालके परिणाम व्यतीत हो गये, अुन कालोंमें भी यह परमेष्ठिमन्त्र श्रेष्ठतम प्रसिद्ध हुवा है । प्राचीन कालमें भी अिसी मन्त्रको प्राप्त करके लोगों मोक्षमें गये हैं ॥ ४ ॥ जब जिनेश्वर भगवतों मोक्षमें गये तब “ विना मोक्षपद विचारा अिस कगाल जगत्‌का क्या होगा ? ” अैसा देखकर-विचार करके अुन धीर दयालु जिनेन्द्रोंने जगत्‌का अुद्धार करनेके लिये यह पचपरमेष्ठि मन्त्ररूप अपना शरीर यहीं रक्खा । मान लो कि-श्री जिनेश्वर प्रभुके देहरूप ही यह पचपरमेष्ठि मन्त्र है ॥ ५ ॥ अिस महामन्त्रके प्रभावसें चन्द्र सूर्यरूप और सूर्य चन्द्ररूप बन जाता है, पाताल आकाशरूप और पृथ्वी स्वर्गरूप बन जाती है । विशेष क्या कहें ? तीनों जगत्‌में अैसी कोअी भी वस्तु नहीं है जो अिस महामन्त्रके प्रभावसे विषम और सम न हो जाय ॥ ६ ॥ सिद्धान्तरूपी समुद्रका मन्थन करके निकाला हुवा मानो यह मन्त्ररत्न है, अैसे परमेष्ठि महामन्त्रको हमेशा हृदयमें धारन करना चाहिये ॥ ७ ॥ सभी पापोंको

नाश करनेवाला, सकल अिच्छित वस्तुओंको देनेवाला, और मोक्ष पर चढ़नेके लिये सीढ़ी समान; अैसे परमेष्ठि मन्त्रको पुण्यशाली प्राणी ही प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ गुरुजी शिष्यको सीख देते हुवे कहते है कि—आप अिस महामन्त्रको प्रयत्नपूर्वक हृदयमें धारन करें, चाहे जिसको न देवें। क्यों कि अज्ञानी लोगोंको सुनाया हुवा यह मंत्र निःसंशय शाप देता है ॥ ९ ॥ अपवित्र, मायावी—कपटी, दूसरेका आश्रय करके रहनेवाला, और अविनीत—अुद्धत; अैसे मनुष्यने परमेष्ठि महामन्त्रका स्मरण नही करना चाहिये; और दीर्घशब्दसे—चिल्लाकर नही बोलना चाहिये ॥ १० ॥ बाल, अशुचि—अपवित्र, धर्मकी श्रद्धाहीन, नीचदृष्टिवाला, आचारसे भ्रष्ट, दुष्ट हृदयवाला, और हलकी जातिवाला; अैसे मनुष्योंको किसी भी स्थान पर यह परमेष्ठिमन्त्र नही देना चाहिये ॥ ११ ॥ अिस मन्त्रराजको धारन करके तू विश्वमें पूजनीय हो, प्राण जाने पर भी अिस महामन्त्रका कहाँ भी त्याग नही करना ॥ १२ ॥ क्यों कि गुरुका त्याग करनेसे दुःख होता है, मन्त्रका त्याग करनेसे कंगालियत आती है, तथा गुरु और मन्त्र अिन दोनोंका त्याग करनेसे विद्यादिसे सिद्ध बना हुवा भी मनुष्य नरकमें जाता है ॥ १३ ॥ अैसा समझकर हमेशां अिस मन्त्रको अच्छी तरह ग्रहण करना चाहिये, अिस महामन्त्रके प्रभावसे तेरे सभी कार्य निश्चयसे सिद्ध होंगे ॥ १४ ॥

गुरुणेति शिक्षित उपनीतस्त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" इति कथयन् गुरुं नमस्कुर्यात्। गुरवे स्वर्णजिनोपवीतं शुभ्रकौशेयनिवसनं स्वर्णमौञ्जीं च यथासंपत्ति दद्यात्। सर्वस्यापि संघस्य ताम्बूल-वस्त्रदानम्।

॥ इति उपनयने व्रतबन्धविधिः ॥

भाषा—गुरुजीसे अैसी सीख पाया हुवा वह अुपनयन-संस्कारवाला ब्रह्मचारी गुरुजीको तीन प्रदक्षिणा देकर "नमोऽस्तु,

नमोऽस्तु " अैसा कहता हुवा नमस्कार करे। बाद गुरुको सोनेका जिनोपवीत, सफेद रेशमी वस्त्र, और स्वर्णकी मौंजी अपनी शक्ति अनुसार देवें। सकल संघका भी ताम्बूल-वस्त्रादि देकर सत्कार करें।

॥ अिस प्रकार अुपनयन-सस्कारमें-व्रतबन्धकी विधि समाप्त हुअी ॥

॥ व्रतादेशविधि. ॥

अथ व्रतादेशविधिः—तस्मिन्नेव क्षणे तस्मिन्नेव संघसङ्गमे तस्मिन्नेव गीत-वाद्याद्युत्सवे तस्मिन्नेव वेदिचतुष्किका-प्रतिमास्थापनसंयोगे व्रतादेशमारभेत। तस्य चाऽयं क्रमः—गृहगुरु उपनीतपुरुषस्य कार्पास-कौशेयानि अन्तरीयोत्तरीयाणि अपनीय मौञ्जी-कौपीनो-पवीतादीनि तद्देहे तथैव संस्थाप्य तदुपरि कृष्णसाराजिनं वा वृक्षवल्कलं वस्त्रं वा परिधापयेत्। तत्करे च पालाशदण्डं दद्यात्। इति मन्त्रं च पठेत्—

भाषा—अब व्रतादेशकी विधि कहते हैं—अुसी समयमें, अुसी संघके संगममें, अुसी गीत-वाजित्रादिके अुत्सवमें, और वेदीकी चोकीके अुपर श्री जिनप्रतिमाका स्थापनरूप अुसी संयोगमें व्रतादेशका आरंभ करें। अुसका यह क्रम है—गृहस्थगुरु अुस अुपनयन-संस्कारवाले पुरुषने पहिना हुवा सूतका या रेशमी अंतरीय और अुत्तरीय वस्त्रको दूर करें। तथा मौंजी-कदोरा, कोपीन-लंगोट और जिनोपवीतादि अुसके देह पर वैसे ही रख करके अुसके अुपर काला मृगचर्म, वृक्षका वल्कल, या वस्त्र पहिनावें, और अुसके हाथमें पलाश काष्ठका दंड देवें। पीछे निम्न लिखित मन्त्रको पढें—

" ॐ अर्हं । ब्रह्मचार्यसि, ब्रह्मचारिवेषोऽसि, अनधिब्रह्मचर्योऽसि, धृतब्रह्मचर्योऽसि, धृताजिनदण्डोऽसि, बुद्धोऽसि, प्रबुद्धोऽसि, धृतसम्यक्त्वोऽसि, दृढसम्यक्त्वोऽसि, पुमानसि, सर्वपूज्योऽसि; तदनधिब्रह्मव्रतम् आगुरुनिदेशं धारयेः । अर्हं ॐ ॥ "

भाषा—अुपनयन-संस्कारवाला ब्रह्मचारीको हाथमें पलाश काष्ठका दंड देकर गृहस्थगुरु अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढें।

इति पठित्वा व्याघ्रचर्ममये आसने कल्पितकाष्ठमयासने वा उपनीतं निवेशयेत् । तस्य दक्षिणकरप्रदेशिन्यां सदर्भां काञ्चनमयीं पञ्चगुञ्जामितषोडशमाषकतुलितां पवित्रिकां मुद्रिकां परिधापयेत् । पवित्रिकापरिधापनमन्त्रो यथा—

भाषा—अैसा मंत्र पढकर गृहस्थगुरु अुपनयन-संस्कारवाले ब्रह्मचारीको व्याघ्रचर्ममय आसनके अुपर या काष्ठके बनाये हुये आसनके अुपर बैठावें । पीछे अुसके दाहिने हाथकी अंगूठेके पासकी तर्जनी अंगुलीमें सुवर्णकी अंगूठी जिनका दूसरा नाम पवित्रिका है, वह दर्भ सहित पहिनावें । पाँच गुंजाका अेक मासा, अैसे सोलह मासे प्रमाण वह अंगूठी-पवित्रिका होनी चाहिये । पवित्रिका पहिनाते अुस वख्त निम्न लिखित मन्त्र पढें—

" पवित्रं दुर्लभं लोके, सुरा-ऽसुर-नृवल्लभम् । सुवर्णं हन्ति पापानि, मालिन्यं च न संशयः ॥ १ ॥ "

भाषा—" लोकमें पवित्र, दुर्लभ, तथा देव दानव और मनुष्योंको प्रिय अैसा सुवर्ण पाप और मलिनताका नाश करता है; अिसमें कोअी संशय नहीं है ॥ १ ॥ "

तत उपनीतश्चतुर्दिक्षु मुखेन पञ्चपरमेष्ठिमन्त्र पठन् गन्ध-पुष्पा-ऽक्षत-धूप-दीप-नैवेद्यैर्जिनप्रतिमा पूजयेत् । ततो जिनप्रतिमा प्रदक्षिणीकृत्य गुरु च प्रदक्षिणीकृत्य "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" भणन् योजितकर इति वदति-"भगवन्! उपनीतोऽहम् ?"। गुरु. कथयति-"सुष्टूपनीतो भव"। पुनरुपनीतो "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" वदन् प्रणम्य वदति "कृतो मे व्रतबन्ध ?"। गुरु कथयति—"सुकृतोऽस्तु"। पुन "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" इति वदन् प्रणम्य शिष्य कथयति—"भगवन्! जातो मे व्रतबन्ध ?"। गुरु. कथयति—"सुजातोऽस्तु"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्यः कथयति—"जातोऽहं ब्राह्मणः क्षत्रियो वा वैश्यो वा ?"। गुरु. कथयति—"दृढव्रतो भव, दृढसम्यक्त्वो भव"। पुन शिष्यो नमस्कृत्य कथयति—"भगवन्! यदि त्वया कृतो ब्राह्मणोऽहं तदादिश कृत्यम्"। गुरु कथयति—"अर्हद्गिरा आदिशामि"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्य कथयति—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममादिष्टम् ?"। गुरु. कथयति—"आदिष्टम्"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्य कथयति—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रय मम समादिश"। गुरुः कथयति—"समादिशामि"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्यः कथयति—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रय मम समादिष्टम् ?"। गुरु. कथयति—"समादिष्टम्"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्य कथयति—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्ति गर्भं रत्नत्रय ममाऽनुजानीहि"। गुरु कथयति—"अनुजानामि"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्यः कथयति—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रय ममाऽनुज्ञातम् ?"। गुरु. कथयति—"अनुज्ञातम्"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्यः कथयति—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रय मया स्वय करणीयम् ?"। गुरुः कथयति—"करणीयम्"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्य कथयति—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मया अन्यै. कारयितव्यम् ?"। गुरुः कथयति—"कार-

यितव्यम्"। पुनर्नमस्कृत्य शिष्यः कथयति—"भगवन् ! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं कुर्वन्तोऽन्ये मया अनुज्ञातव्याः ?"। गुरुः कथयति—"अनुज्ञातव्याः"।

भाषा—अुसके बाद वह अुपनयन-संस्कारवाला ब्रह्मचारी अपने मुखसें चारों दिशाओंमें पंचपरमेष्ठि मन्त्रको पढ़ता हुवा; गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, और नैवेद्यसें श्री जिनप्रतिमाका पूजन करें। पीछे जिनप्रतिमाको प्रदक्षिणा करके और गुरुजीको प्रदक्षिणा करके "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" कहता हुवा नमस्कार करके और हाथ जोड़कर अैसा कहे—"भगवन् ! अुपनीतोऽहम् ?"। तब गुरु कहे—"सुष्ठूपनीतो भव"। फिर अुपनयन-संस्कारवाला "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" अैसा कहता हुवा नमस्कार करके कहे—"कृतो मे व्रतबन्धः ?"। तब गुरु कहे—"सुकृतोऽस्तु"। फिर "नमोऽस्तु, नमोऽस्तु" अैसा कहता हुवा शिष्य नमस्कार करके कहे—"भगवन् ! जातो मे व्रतबन्धः ?"। तब गुरु कहे—"सुजातोऽस्तु"। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—"जातोऽहं ब्राह्मणः क्षत्रियो वा वैश्यो वा ?"। गुरु कहे—"दृढव्रतो भव, दृढसम्यक्त्वो भव"। फिर शिष्य नमस्कार करके कहे—"भगवन् ! यदि त्वया कृतो ब्राह्मणोऽहं, तदादिश कृत्यम्"। तब गुरु कहे—"अर्हद्‌गिरा आदिशामि"। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—"भगवन् ! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममादिष्टम् ?"। गुरु कहे—"आदिष्टम्"। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—"भगवन् ! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मम समादिश"। गुरु कहे—"समादिशामि"। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—"भगवन् ! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मम समादिष्टम् ?। तब गुरु कहे—"समादिष्टम्"। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—"भगवन् ! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममाऽनुजानीहि"। गुरु कहे—"अनुजानामि"। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—'भगवन् ! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममाऽनुज्ञातम् ?"। गुरु कहे—"अनुज्ञातम्"। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—"भगवन् ! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मया स्वयं करणीयम् ?"। गुरु कहे—"करणीयम्"। फिर

नमस्कार करके शिष्य कहे—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रय मया अन्यै कारयितव्यम्?" गुरु कहे—कारयितव्यम्"। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—"भगवन्! नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रय कुर्वन्तोऽन्ये मया अनुज्ञातव्या?"। गुरु कहे—"अनुज्ञातव्या"।

यह ब्राह्मणके लिये व्रतादेशकी विधि कही। क्षत्रिय और वैश्यके लिये थोड़ा फरक है, सो कहते हैं—

क्षत्रियस्येदमन्तरम्—"भगवन्! अहं क्षत्रियो जात.?"। आदेश-समादेशौ कथनीयौ, अनुज्ञा न कथनीया। करण-कारणे च "कर्तव्यम्" "कारयितव्यम्" इति कथनीयम्. "अनुज्ञातव्यम्" इति न कथनीयम्। वैश्यस्य आदेश एव कथनीय', न समादेशा-ऽनुज्ञे। कर्तव्यमेव कथनीय, न कारयितव्या-ऽनुज्ञातव्ये।

भाषा—क्षत्रियको यह विशेष है—"भगवन्! अहं क्षत्रियो जात?" अित्यादि वाक्यमे आदेश और समादेश दोनों कहें, मगर अनुज्ञा न कहें। करण-कारणमें यानि करना और कराना अिनमे "कर्तव्यम्" और "कारयितव्यम्" अैसा कहें, मगर "अनुज्ञातव्यम्" अैसा न कहना। वैश्यको आदेश ही कहना, मगर समादेश और अनुज्ञा ये दोनों न कहना। करण कारण और अनुज्ञामें "कर्तव्यम्" यह अेक ही कहना, मगर "कारयितव्यम्" और "अनुज्ञातव्यम्" ये दोनों न कहना।

तत उपनीतो योजितकर कथयति—"भगवन्! आदिश्यतां व्रतादेशः"। गुरुरादिशति। ब्राह्मण प्रति व्रतादेशो यथा—

भाषा—अुसके बाद वह अुपनयन-संस्कारवाला ब्रह्मचारी हाथ जोडकर गुरुजीको कहे—"भगवन्! आदिश्यता व्रतादेश—हे भगवन्! आप व्रतका आदेश फरमावो"। तब गुरु व्रतादेश कहे। अुसमें ब्राह्मण प्रति व्रतादेश अिस प्रकार—

" परमेष्ठिमहामन्त्रो, विधेयो हृदये सदा । निर्ग्रन्थानां मुनीन्द्राणां, कार्यं नित्यमुपासनम् ॥ १ ॥
त्रिकालमर्हत्पूजा च, सामायिकमपि त्रिधा । शक्रस्तवैः सप्तवेलं, वन्दनीया जिनोत्तमाः ॥ २ ॥
त्रिकालमेककालं वा, स्नानं पूतजलैरपि । मद्यं मांसं तथा क्षौद्रं, तथोदुम्बरपञ्चकम् ॥ ३ ॥
आमगोरससंपृक्तं, द्विदलं पुष्पितौदनम् । सन्धानमपि संसक्तं, तथा वै निशि भोजनम् ॥ ४ ॥
शूद्रान्नं चैव नैवेद्यं, नाऽश्नीयाद् मरणेऽपि हि । प्रजार्थं गृहवासेऽपि, संभोगो न तु कामतः ॥ ५ ॥
आर्यवेदचतुष्कं च, पठनीयं यथाविधि । कर्षणं पाशुपाल्यं च, सेवावृत्तिं विवर्जयेः ॥ ६ ॥
सत्यं वचः प्राणिरक्षा—मन्यस्त्री–धनवर्जनम् । कषाय–विषयत्यागं, विदध्या शौचभागपि ॥ ७ ॥
प्रायः क्षत्रिय–वैश्यानां, न भोक्तव्यं गृहे त्वया । ब्राह्मणानामार्हतानां, भोजनं युज्यते गृहे ॥ ८ ॥
स्वज्ञातेरपि मिथ्यात्व—वासितस्य पलाशिनः । न भोक्तव्यं गृहे प्रायः, स्वयंपाकेन भोजनम् ॥ ९ ॥
आमान्नमपि नीचानां, न ग्राह्यं दानमञ्जसा । भ्रमता नगरे प्रायः, कायस्पर्शो न केनचित् ॥ १० ॥
उपवीतं स्वर्णमुद्रां, नान्तरीयकमपि त्यजेः । कारणान्तरमुत्सृज्य, नोष्णीषं शिरसि व्यधाः ॥ ११ ॥
धर्मोपदेशः प्रायेण, दातव्यः सर्वदेहिनाम् । व्रतारोपं परित्यज्य, संस्कारान् गृहमेधिनाम् ॥ १२ ॥
निर्ग्रन्थगुर्वनुज्ञातः, कुर्याः पञ्चदशाऽपि हि । शान्तिकं पौष्टिकं चैव, प्रतिष्ठामर्हदादिषु ॥ १३ ॥

निर्ग्रन्थानुज्ञया कुर्याः, प्रत्याख्यान च कारये' । धार्यं च दृढसम्यक्त्वं, मिथ्याशास्त्र विवर्जये. ॥ १४ ॥

नाऽनार्यदेशे गन्तव्य, विशुद्धया शौचमाचरे । पालनीयस्त्वया वत्स !, व्रतादेशो भवावधि ॥ १५ ॥"

भाषा—"परमेष्ठि महामन्त्रको हमेशा हृदयमे धारन करना, निग्रन्थ मुनीन्द्रोंकी नित्य अुपासना-सेवा करना ॥ १ ॥ तीनों काल अरिहन्तकी पूजा करना, मन, वचन और कायकी अेकाग्रतासे सामायिक करना, और शक्रस्तवसे श्री जिनेश्वरोंका सात दफे चैत्यवदन करना ॥ २ ॥ वस्त्रादिसे छाने हुअे जलसे तीन काल या अेक काल स्नान करना । मदिरा, मास, शहद, पाच जातिके अुदुबर फल, कच्चे यानि बिना गरम किये गोरसयुक्त (दूध, दही, या छाछयुक्त) द्विदल अन्न, जिस पर नीली-फूली आ गअी हो अैसा अन्न, जीवोत्पत्ति हो जाय अैसा कच्चा आचार, रात्रि-भोजन, शूद्रका अन्न, और देवके आगे चढा हुवा नैवेद्य, अिन पूर्वोक्त वस्तुओंको मरणात-कष्टमे भी न खाना चाहिये । गृहवासमे भी सतानकी अुत्पत्तिके लिये स्त्रीसभोग करना, मगर विषयमे आसक्त होकर नही करना चाहिये ॥ ३-४-५ ॥

चारों आयर्वेद विधि पूर्वक पढना । खेती, पशुपालपना यानि गो भैंस वगैरा पालन करके अुनके अुपर आजीविका चलाना, और सेवावृत्ति-नोकरी, अिनका त्याग करना ॥ ६ ॥ सत्य वचन बोलना, प्राणियोंकी रक्षा करना, परस्त्री और दूसरेके धनका त्याग करना । क्रोध, मान, माया और लोभ, अिन कषायोका और विषयोंका त्याग करना, और पवित्रता रखना ॥७॥

बन सके वहाँ तक क्षत्रिय और वैश्योंके घरमे तुझे भोजन न करना चाहिये, अरिहन्तके भक्त-जैनधर्मी अैसे ब्राह्मणोंके घरसे भोजन करना तुझे योग्य है ॥ ८ ॥ अपनी ज्ञातिका भी जो मिथ्यात्वी और मासाहारी होवें अुसके घरमे भोजन नही करना, बन सकें वहाँ तक आप ही पकाकर भोजन करना चाहिये ॥ ९ ॥ कच्चा यानि बिना पकाया हुवा अैसा भी

॥ १०७ ॥

अन्नका दान नीचोंके घरका ग्रहण न करें। शहरमें फिरता हुआ प्रायः किसीका स्पर्श न करें ॥ १० ॥ अुपवीत, स्वर्णमुद्रा और अंतरीय वस्त्र; अिनको कदापि न छोड़ देवें। कोअी सवल कारण वगर सिर पर पघडीको धारन न करें ॥ ११ ॥

प्रायः सव मनुष्योंको धर्मोपदेश देना। व्रतारोप संस्कारको छोड़कर गृहस्थके अवशेष पंद्रह संस्कार निर्ग्रन्थ गुरुकी आज्ञासे करना। शान्तिक क्रिया, पौष्टिक कर्म, और श्री जिनप्रतिमादिकी प्रतिष्ठा-विधि करना ॥ १२-१३ ॥

श्री निर्ग्रन्थ-मुनिराजकी अनुज्ञासे पच्चक्खाण करना और दूसरेको कराना। तुझे सम्यक्त्वको दृढ धारन करना और मिथ्याशास्त्रका त्याग करना ॥ १४ ॥ अनार्य देशमें जाना नहीं। मन, वचन और काय; अिन तीनों प्रकारसें शौच-पवित्रताको आचरना। हे वत्स! जव तक तू संसारमें रहे तव तक अिस व्रतादेशका पालन करना ॥ १५ ॥

इति ब्राह्मणव्रतादेशः। अथ क्षत्रियव्रतादेशः—

भापा—अिस प्रकार ब्राह्मणका व्रतादेश कहा। अव क्षत्रियका व्रतादेश कहते हैं—

“परमेष्ठिमहामन्त्रः, स्मरणीयो निरन्तरम्। शक्रस्तवैस्त्रिकालं च, वन्दनीया जिनेश्वराः ॥ १ ॥
मद्यं मांसं मधु तथा, सन्धानो-दुम्वरादि च। निशि भोजनमेतानि, वर्जयेदतियत्नतः ॥ २ ॥
दुष्टनिग्रह-युद्धादि, वर्जयित्वा वधोऽङ्गिनाम्। न विधेयः स्थूलमृषा-वादस्त्यक्तव्य एव च ॥ ३ ॥
परनारीं परधनं, त्यजेदन्यविकत्थनम्। युक्त्या साधूपासनं च, द्वादशव्रतपालनम् ॥ ४ ॥
विक्रमस्याऽविरोधेन, विधेयं जिनपूजनम्। धारणं चित्तयत्नेन, स्वोपवीता-ऽन्तरीययोः ॥ ५ ॥

शत्रुओंसें व्याप्त अैसी युद्धभूमि पर हृदयमें वीररस धारन करना चाहिये, युद्धमें मरणका भय सर्वथा ही नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥ गौ, ब्राह्मण, देव, गुरु और मित्रके लिये; अपना देशका भंग होने पर; तथा युद्धमें मृत्यु भी सहन कर लेना अुचित है ॥ ९ ॥ दूसरेको व्रतकी अनुज्ञा देना, विद्यासे आजीविका चलाना, और दान लेना; अिनको छोड़कर ब्राह्मण और क्षत्रियकी क्रियामें कुच्छ भी भेद–तफावत नहीं है ॥ १० ॥ क्षत्रियको दुष्टोंका निग्रह करना–दंड करना योग्य है, जमीन और प्रतापका लोभ करना योग्य है, और ब्राह्मणको छोड़कर वैश्यादिसें दान–धन लेनेका आचार है ॥११॥

इति क्षत्रियव्रतादेशः । अथ वैश्यव्रतादेशः—

भाषा—अिस प्रकार क्षत्रियका व्रतादेश कहा । अब वैश्यका व्रतादेश कहते हैं—

त्रिकालमर्हत्पूजा च, सप्तवेलं जिनस्तवः । परमेष्ठिस्मृतिश्चैव, निर्ग्रन्थगुरुसेवनम् ॥ १ ॥

आवश्यकं द्विकालं च, द्वादशव्रतपालनम् । तपोविधिर्गृहस्थार्हो, धर्मश्रवणमुत्तमम् ॥ २ ॥

परनिन्दावर्जनं च, सर्वत्राप्युचितक्रमः । वाणिज्य–पाशुपाल्याभ्यां, कर्पणेनोपजीवनम् ॥ ३ ॥

सम्यक्त्वस्याऽपरित्यागः, प्राणनाशेऽपि सर्वथा । दानं मुनिभ्य आहार–पात्रा-ऽऽच्छादन-सद्मनाम् ॥ ४ ॥

कर्मादानविनिर्मुक्तं, वाणिज्यं सर्वमुत्तमम् । उपनीतेन वैश्येन, कर्तव्यमिति यत्नतः ॥ ५ ॥

भाषा—तीनों काल श्री जिनेश्वर परमात्माकी पूजा करना, सात दफे जिनस्तव–चैत्यवंदन करना, पंचपरमेष्ठिका स्मरण करना, और निर्ग्रन्थ गुरु महाराजकी सेवा करना ॥ १ ॥ प्रातःकाल और सायंकाल अिन दोनों कालमें आवश्यक–प्रतिक्रमण करना, वारह व्रतोंका पालन करना, गृहस्थ योग्य तपस्याविधि करना, और अुत्तम प्रकारसें धर्मश्रवण करना ॥ २ ॥

दूसरेकी निंदाका त्याग करना, सभी जगह अुचित कार्य करना, व्यापार, पशुपालन और खेतीसे आजीविका चलाना ॥ ३ ॥ प्राणोंका नाश होने पर भी किसी प्रकारसें सम्यक्त्वको नही छोडना, तथा निर्ग्रन्थ-मुनिओंको आहार, पात्र, वस्त्र और अुपाश्रयका दान करना ॥ ४ ॥ जिससे बड़ा भारी पाप हो जैसे कर्मादान-व्यापारसे रहित सब अुत्तम-थोड़े पापवाला व्यापार करना । अुपनयन-संस्कार किया गया हो अैसे वैश्यने ये पूर्वोक्त कार्य यत्नसे करना चाहिये ॥ ५ ॥

इति वैश्यव्रतादेश । अथ चातुर्वर्ण्यस्य समानो व्रतादेशः—

भाषा—अिस प्रकार वैश्यका व्रतादेश कहा । अब चारों वर्णोंका समान व्रतादेश कहते हैं—

निजपूज्यगुरुप्रोक्त, देव-धर्मादिपालनम् । देवार्चन साधुपूजा, प्रणामो विप्र-लिङ्गिषु ॥ १ ॥
धनार्जन च न्यायेन, परनिन्दाविवर्जनम् । अवर्णवादो न क्वाऽपि, राजादिषु विशेषतः ॥ २ ॥
स्वसत्त्वस्याऽपरित्यागो, दानं वित्तानुसारत. । आयोचितो व्ययश्चैव, यथाकाले च भोजनम् ॥ ३ ॥
न वासोऽल्पजले देशे, नदी-गुरुविवर्जिते । न विश्वासो नरेन्द्राणां नाग-नीच-नियोगिनाम् ॥ ४ ॥
नारीणा च नदीना च, लोभिनां पूर्ववैरिणाम् । कार्य विना स्थावराणा-महिंसा देहिनामपि ॥ ५ ॥
नाऽसत्याऽहितवाक् चैव, विवादो गुरुभिर्न च । माता-पित्रोर्गुरोश्चैव, माननं परतत्त्वरत् ॥ ६ ॥
शुभशास्त्राकर्णनं च, तथा नाऽभक्ष्यभक्षणम् । अत्याज्याना न च त्यागो-ऽप्यघात्यानामघातनम् ॥ ७ ॥
अतिथौ च तथा पात्रे, दीने दानं यथाविधि । दरिद्राणां तथाऽन्धाना-मापद्वारभृतामपि ॥ ८ ॥

॥ १११ ॥

हीनाङ्गानां विकलानां, नोपहासः कदाचन । समुत्पन्नक्षुत्-पिपासा—घृणा-क्रोधादिगोपनम् ॥ ९ ॥
अरिषड्वर्गविजयः, पक्षपातो गुणेषु च । देशाचाराऽऽचरणं च, भयं पापा-ऽपवादयोः ॥ १० ॥
उद्वाहः सदृशाचारैः, समजात्यन्यगोत्रजैः । त्रिवर्गसाधनं नित्य-मन्योन्याऽप्रतिबन्धतः ॥ ११ ॥
परिज्ञानं स्वपरयो-र्देश-कालादिचिन्तनम् । सौजन्यं दीर्घदर्शित्वं, कृतज्ञत्वं सलज्जता ॥ १२ ॥
परोपकारकरणं, परपीडनवर्जनम् । पराक्रमः परिभवे, सर्वत्र क्षान्तिरन्यदा ॥ १३ ॥
जलाशय-श्मशानानां, तथा दैवतसद्मनाम् । निद्रा-ऽऽहार-रतादीनां, सन्ध्यासु परिवर्जनम् ॥ १४ ॥
प्रवेशो-लङ्घनं चैव, तटे शयनमेव च । कूपस्य वर्जनं नद्या, लङ्घनं तरणीं विना ॥ १५ ॥
गुर्वासनादि-शय्यासु, तालवृक्षे कुभूमिषु । दुर्गोष्ठीषु कुकार्येषु, सदैवासनवर्जनम् ॥ १६ ॥
न लङ्घनं च गर्तादे-र्न दुष्टस्वामिसेवनम् । न चतुर्थीन्दु-नग्नस्त्री—शक्रचापविलोकनम् ॥ १७ ॥
हस्त्य-श्व-नखिनां चाऽप्य—वादिनां दूरवर्जनम् । दिवा संभोगकरणं, वृक्षस्योपासनं निशि ॥ १८ ॥
कलहे तत्समीपं च, वर्जनीयं निरन्तरम् । देश-कालविरुद्धं च, भोज्यं कृत्यं गमा-ऽऽगमौ ॥ १९ ॥
भाषितं व्यय आयश्च, कर्तव्यानि न कर्हिचित् । चातुर्वर्ण्यस्य सर्वस्य, व्रतादेशोऽयमुत्तमः ॥ २० ॥

॥ इति चातुर्वर्ण्यस्य समानो व्रतादेशः ॥

भाषा—अपने पूज्य गुरुजीने कहे हुअे देव और धर्मादिका पालन करना । देव आर साधु-मुनिराजोंकी पूजा करना, तथा ब्राह्मण और लिंगधारी-साधु सतको प्रणाम करना ॥ १ ॥ नीतिसे धन अुपार्जन करना, परनिंदाका त्याग करना, किसीका अवर्णवाद न बोलना, अिसमे भी राजा वगैरह बड़े पुरुषोंके तो खास करके अवर्णवाद नही बोलना चाहिये ॥ २ ॥ अपने सत्त्वको छोड़ना नहीं, धनके अनुसार दान देना, आमदानी अनुसार खर्चा करना, और समयसर भोजन करना ॥ ३ ॥ थोडा जलवाले देशमे रहना नहीं, तथा नदी और धर्मगुरु रहित देशमे भी रहना नहीं । राजा, साँप नीच-दुष्ट मनुष्यों, और अधिकारियोंका विश्वास न करना ॥ ४ ॥ तथा स्त्रियाँ, नदियाँ, लोभी और पूर्वके वैरिका विश्वास नही करना । खास कार्य बगर वृक्षादि-स्थावर जीवोंकी भी हिंसा नही करना ॥ ५ ॥ असत्य और अहितकारी वचन नही बोलना, बड़ोंके साथ वाद-विवाद नही करना । तथा माता, पिता और गुरुजी, अिनका श्रेष्ठ तत्त्वकी तरह सन्मान-सत्कार करना ॥ ६ ॥ जिनको सुननेसे आत्माके परिणाम शुभ होवे, अैसे कल्याणकारी शास्त्रोंका श्रवण करना, अभक्ष्य वस्तुओंको नही खाना, जो त्याग करने योग्य नही है अुनका त्याग नही करना, और मारने योग्य नही है अुनको नही मारना ॥ ७ ॥ अतिथि, सुपात्र और गरीब, अिनको यथायोग्य दान देना। तथा दरिद्र, अंध आर बहुत संकटोंसे युक्त, अिनको भी यथायोग्य दान दना ॥ ८ ॥ हीन अंगवाले, और अस्थिर चित्तवालेकी हँसी कदापि नही करना । भूख, प्यास, घृणा-जुगुप्सा और क्रोधादि अुत्पन्न होने पर भी अुनको छुपाना ॥ ९ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष, अिन छे प्रकारके आंतरिक शत्रुओंको जीतना, गुणोंमे पक्षपात रखना, जिस देशमें रहे अुस देशके आचार मुताबिक आचरण करना, तथा पाप और अपकीर्त्तिसे डरना ॥ १० ॥ समान आचारवाले, तुल्य ज्ञातिवाले, और भिन्न गोत्रवालोंके साथ विवाह करना । धर्म, अर्थ और काम, अिन तीनों वर्गको परस्पर बाधा न पहुँचे अुस प्रकारसे हमेशा साधना ॥ ११ ॥ अपने और परायेका ज्ञान करना, देश और कालादिको विचारना, सौजन्य रखना, दीर्घदर्शी—दूरन्देशी होना, तथा कृतज्ञ और

॥ ११३ ॥

लज्जावाला-शरमिंदा होना ॥ १२ ॥ परोपकार करना, दूसरेको पीड़ा नही करना, अपना अपमान-तिरस्कार होवे तब पराक्रम दिखाना, अन्यथा सब ठिकाने क्षमा रखना ॥ १३ ॥ जलाशय, श्मशान और देवमंदिरमें; तथा प्रातः मध्याह्न और सयंकाल अिन तीनों संध्यामें निद्रा आहार और मैथुनादिका त्याग करना ॥ १४ ॥ कुँआमें प्रवेश करना, कुँआको लँघना-अुल्लंघन करना, और कुँआके किनारे-कांठे पर सोना; अिन सबका त्याग करना । और डोंगी-नावके विना गहरी निदीको लांघना नहीं ॥ १५ ॥ गुरूजीके आसन और शय्यादिके अुपर, ताड़के पेड़ नीचे, खराब भूमिके अुपर, दुष्ट मनुष्योंकी बातचीतमें, और बूरे कार्योमें बैठनेका हमेशां ही त्याग करना ॥ १६ ॥ लंबा-चौडा गड़्हा-खड्डा वगैरहको लांघना नहीं, और दुष्ट स्वामीकी सेवा करना नहीं । चौथका चन्द्रमा, नंगी औरत और अिन्द्रधनुष; अिनको देखना नहीं ॥ १७ ॥ हाथी, घोड़े, नाखूनवाले-नोरवाले जानवर, और दूसरेकी निंदा करनेवाले; अिनका दूरसे त्याग करना । दिनमें मैथुन-सेवन और रातमें वृक्षसेवन नही करना ॥ १८ ॥ जहाँ टंटा-फिसाद हो वहाँ नजदिक प्रदेशका निरंतर त्याग करना-वहाँ ठहरना नहीं । भोजन, कोअी भी कार्य, आना-जाना, भाषण, खर्चा, और आमदानी-लाभ; अिन सबको देश और कालसे विरूद्ध कदापि नही करना । चारों वर्णके सब मनुष्योंके लिये यह अुत्तम व्रतादेश है ॥ १९-२० ॥

॥ अिस प्रकार चारों वर्णका समान व्रतादेश कहा ॥

गृह्यगुरुरिति शिष्यस्य व्रतादेशं विधाय पुरतो गत्वा जिनप्रतिमां प्रदक्षिणयेत् । पुनः पूर्वाभिमुखः शक्रस्तवं पठेत । ततो गृह्यगुरुः आसने निविशेत् । शिष्यो ‘नमोऽस्तु’ भणन् गुरोः पादयोर्निपत्य इति वदेत्—“भगवन्' भवद्भिर्मम व्रतादेशो दत्तः ?” । गुरुः कथयति—“दत्तः, सुगृहीतोऽस्तु, सुरक्षितोऽस्तु । स्वयं तर, परान् तारय संसारसागरात्” । इत्युक्त्वा नमस्कारभणनपूर्वकमुत्थाय द्वाभ्यामपि चैत्यवन्दनं कार्यम् । ततो

ब्राह्मणेन विप्र-क्षत्रिय-वैश्यगृहेषु भिक्षाटनं कार्यम् । क्षत्रियेण शस्त्रग्रहः कार्यः । वैश्येनाऽन्नदानं विधेयम् ।

॥ इत्युपनयने व्रतादेशः ॥

भाषा—गृहस्थ गुरु पूर्वोक्त प्रकारसें शिष्यको व्रतादेश करके, आगे जाकर शिष्यके पास श्री जिनप्रतिमाको प्रदक्षिणा करावें। पीछे पूर्वदिशाके सन्मुख होकर शक्रस्तव पढ़ें। अुसके बाद गृहस्थ गुरु आसन पर बैठ जावें, और शिष्य "नमोऽस्तु" कहता हुआ गुरुजीके पैरोंमे पडकर अैसा कहे—"भगवन्! भवद्भिर्मम व्रतादेशो दत्त ?"। तब गुरु कहे—"दत्त, सुगृहीतोऽस्तु, सुरक्षितोऽस्तु। स्वयं तर, परान् तारय संसारसागरात्"। अैसा कहके नमस्कार पढ़ता हुआ अुठ जावें। पीछे दोनों गुरु-शिष्य चैत्यवन्दन करें। अुसके बाद ब्राह्मणने विप्र क्षत्रिय और वैश्यके घरमें भिक्षाटन करना, क्षत्रियने शस्त्र ग्रहण करना, और वैश्यने अन्नका दान देना। अिस प्रकार अुपनयन-संस्कारमें व्रतादेश कहा।

॥ व्रतविसर्गः ॥

अथ व्रतविसर्गः कथ्यते—ब्राह्मणेन वर्षाष्टकादारभ्य दण्डा-ऽजिनभृता भिक्षाभोजिना षोडशाब्दीं यावद् अध्यते, अयमुत्तमः पक्षः। क्षत्रियेण दण्डा-ऽजिनभृता वर्षदशकादारभ्य षोडशाब्दीं यावत् स्वयपाकभोजिना गुरु-देवसेवा-परायणेन अध्यते। वैश्येन दण्डा-ऽजिनभृता स्वकृतपाकभोजिना द्वादशाब्दादारभ्य षोडशाब्दीं यावद् अध्यते, अयमुत्तमः पक्षः। तथा चेत् कार्यव्यग्रतया तावन्ति दिनानि स्थातु न शक्यते तदा षण्मासीं यावत् स्थेयम्। तदभावे मासम्, तदभावे पक्षम्, तदभावे दिनत्रयम्, तदभावे दिन एव व्रतविसर्गः। स कथ्यते—

भाषा—अब व्रतविसर्ग कहते है—दंड और अजिनको धारन किया हुआ ब्राह्मण आठ वर्षसे लेकर सोलह वर्ष पर्यंत भिक्षावृत्ति करके भोजन करें, और घुमता रहे; यह अुत्तम पक्ष है । दंड और अजिनको धारन किया हुआ क्षत्रिय दस वर्षसे लेकर सोलह वर्ष पर्यंत देव-गुरुकी सेवामें तत्पर होकर आप ही पकाके भोजन करें, और घुमता रहे । तथा दंड और अजिनको धारन किया हुआ वैश्य बारह वर्षसे लेकर सोलह वर्ष पर्यंत स्वकृत भोजनको खावें, और घुमता रहे; यह अुत्तम पक्ष है । यदि कार्यव्यग्रतासें अितने दिन न रह सकें तो छे मास तक रहना, अुनके अभावमें अेक मास तक, अुसके अभावमें पंद्रह दिन तक, और अुनके भी अभावमें तीन दिन तक रहना । यदि तीन दिन भी न रह सकें तो अुसी दिन व्रतविसर्ग करें । सो कहते हैं—

उपनीतस्त्रिस्त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य चतुर्दिक्षु जिनप्रतिमाग्रतः पूर्ववत् शक्रस्तवं पठेत् सयुगादिजिनस्तोत्रम् । तत आसनस्थस्य गुरोः पुरो नमस्कृत्य योजितकरो वदेत्—"भगवन्! देश-कालाद्यपेक्षया व्रतविसर्गमादिश" । गुरुः कथयति—"आदिशामि" । पुनः प्रणम्य शिष्यः कथयति—"भगवन्! मम व्रतविसर्ग आदिष्टः ?" । गुरुः कथयति—"आदिष्टः" । पुनर्नमस्कृत्य शिष्यः कथयति—"भगवन्! व्रतबन्धो विसृष्टः ?" । गुरुः कथयति—"जिनोपवीतधारणेन अविसृष्टोऽस्तु, स्वजन्मतः षोडशाब्दीं ब्रह्मचारी पाठ-धर्मनिरतस्तिष्ठेः" । ततः पञ्चपरमेष्ठि-मन्त्रं पठन् पूर्वं शिष्यो मौञ्जी-कौपीन-वल्कल-दण्डान् अपनीय गुर्वग्रे स्थापयेत् । स्वयं जिनोपवीतधारी श्वेतनिवसनोत्तरीयो भूत्वा गुर्वग्रे प्रणम्योपविशेत् । ततो गुरुस्तस्य द्वादशतिलकभृतः पुर उपनयनव्याख्यानं कुर्यात् । तद्यथा—

भाषा—वह अुपनयन-संस्कारवाला तीन तीन प्रदक्षिणा करके चारों दिशाओंमें श्री जिनप्रतिमाके आगे पहलेकी तरह श्री ऋषभदेव परमात्माके स्तोत्र-स्तवन सहित शक्रस्तव पढ़ें। अुसके बाद आसन पर बैठे हुअे गुरुजीके आगे नमस्कार करके हाथ जोड़के अैसा कहे—“भगवन्! देश-कालाद्यपेक्षया व्रतविसर्गमादिश”। तब गुरु कहे—“आदिशामि”। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—“भगवन्! मम व्रतविसर्ग आदिष्ट ?”। तब गुरु कहे—“आदिष्ट”। फिर नमस्कार करके शिष्य कहे—“भगवन्! व्रतबन्धो विसृष्ट ?”। तब गुरु कहे—“जिनोपवीतधारणेन अविसृष्टोऽस्तु, स्वजन्मत षोडशाब्दीं ब्रह्मचारी पाठधर्मनिरतस्तिष्ठ”। अुसके बाद पंचपरमेष्ठि मन्त्रको पढ़ता हुआ शिष्य मौंजी, कोपीन, वल्कल और दंड, अिनको दूर करके गुरुजीके आगे स्थापन करें। पीछे आप जिनोपवीतको धारन किया हुआ और सफेद अुत्तरीय वस्त्रको पहिना हुआ होकर गुरुजीको नमस्कार करके अुनके आगे बैठे। पीछे बारह तिलकधारी अुस अुपनयन-संस्कारवाले शिष्यके आगे गुरुजी अुपनयनका व्याख्यान करें। सो अिस प्रकार—

‘अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेत्, दशवर्षं क्षत्रियं द्वादशवर्षं वैश्यम्। तत्र गर्भमासा अप्यन्तर्भवन्ति। तथा च जिनोपवीतमिति—जिनस्य उपवीतं मुद्रासूत्रमित्यर्थः। नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयमेतत् पुरा श्रीयुगादिदेवेन वर्णत्रयस्य गार्हस्थ्यभूतं स्वमुद्राधारणम् आभवाद् उपदिष्टम्। ततस्तीर्थव्यवच्छेदे माहनैर्मिथ्यात्वमुपगतैर्वेदचतुष्के हिंसाप्ररूपणेन मिथ्या पथं नीते पर्वत-वसुराजाभ्यां यज्ञमार्गे प्रवर्तिते यज्ञोपवीतमिति नाम धृतम्। परमत्र तु मिथ्यादृशो यथेष्टम्, जिनमते जिनोपवीतमेव। एतच्चया सुधारितं कार्यम्। मासे मासे नव्यं परिधेयम्। प्रमादाज्जिनोपवीते त्यक्ते त्रुटिते वा उपवासत्रयं विधाय नवीनं धार्यम्। प्रेतक्रियायां दक्षिणस्कन्धोपरि वामकक्षाधो विपरीतं धार्यं, यतो विपरीतं कर्म तत्। मुनयोऽपि मृतमुनिपरित्यागे तथाविधं विपरीतमेव वस्त्रं परिदधति। तत्त्व पुरा जन्मना शूद्रोऽभू, सांप्रत

संस्कारविशेषेण ब्रह्मगुप्तिधारणाद् ब्राह्मणः, क्षतात् त्राणेन क्षत्रियः, न्यायधर्मोपदेशाद् वैश्यो वा जातोऽसि । तत् सक्रियमेतज्जिनोपवीतं सुगृहीतं कुर्याः, सुरक्षितं कुर्याः । अस्तु ते क्षयरहितः मद्धर्मवासन उपनयनविधिः "।

भाषा—" आठ वर्षके ब्राह्मणका, दस वर्षके क्षत्रियका, और बारह वर्षके वैश्यका अुपनयन–संस्कार करना । अुसमें गर्भके महिनेको भी बीचमें ही गिनना । श्री जिनेश्वर परमात्माका अुपवीत अर्थात् मुद्रासूत्र अुसको ही जिनोपवीत कहते हैं । पहिले युगादिदेव श्री ऋषभदेव स्वामीने ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अैसे गृहस्थी तीनों वर्णको नो प्रकारकी ब्रह्मचर्यकी गुप्तिओंसे युक्त और तीन रत्नस्वरूप अिस अपनी मुद्राको–जिनोपवीतको जीवन पर्यंत धारन करनेका कहा था । अुसके बाद तीर्थका व्यवच्छेद–नाश होने पर माहनों–ब्राह्मणों मिथ्यात्वी हो गये । अुन्होंने हिंसाकी प्ररूपणा करके चारों वेदको मिथ्यामार्गमें ले गये । बाद पर्वत और वसुराजने हिंसक यज्ञमार्ग चलाया, तबसे अिस जिनोपवीतने " यज्ञोपवीत " अैसा नाम धारन किया । मिथ्यादृष्टियों चाहे अितना प्रलाप करें, मगर जिनमतमें तो अिसका नाम जिनोपवीत ही है । अिस जिनोपवीतको तुझे अच्छी तरह धारन करना चाहिये । अिसको प्रत्येक महिनेमें नवीन धारन करना । अगर प्रमादसें जिनोपवीत निकल जावें या टूट जावें तो तीन अुपवास करके नया धारन करना चाहिये । प्रेतक्रियामें दाहिने कन्धे पर और बांयी कांखके नीचे, अिस प्रकार विपरीत–अुलटा धारन करना चाहिये; क्यों कि वह विपरीत कार्य है । मुनियों भी मृतमुनिके त्याग करनेमें अिस प्रकार विपरीत ही रीतिसें वस्त्र पहिनते हैं । तू आज तक जन्मसे शूद्र था, मगर अब संस्कार–विशेषद्वारा ब्रह्मगुप्तिको धारन करनेसें ब्राह्मण हुआ है । (क्षत्रियको कहे कि–) लोगोंको भयसे रक्षण करनेवाला होनेसे तू क्षत्रिय हुआ है । (वैश्यको कहे कि–) नीतिधर्मका अुपदेश करनेसे तू वैश्य हुआ है । अिस लिये क्रिया सहित ग्रहण किया हुआ अिस जिनोपवीतका खूब सावधानीसें रक्षण करना । तुझे यह अुपनयनविधि क्षय रहित और मद्धर्ममें वासना अुत्पन्न करनेवाली हो "।

इति व्याख्याय परमेष्ठिमन्त्र भणित्वा द्वावप्युत्तिष्ठत'। चैत्यवन्दन साधुवन्दन च। इति उपनयनव्रतविसर्गविधि.।

भाषा—अिस प्रकार गुरु व्याख्यान करें। पीछे पंचपरमेष्ठि महामन्त्रको पढकर गुरु और शिष्य दोनो खडे हो जाय। अुसके बाद चैत्यवदन और साधुवन्दन करें। अिस प्रकार अुपनयन—सस्कारमे व्रतविसर्गकी विधि कही।

तदा व्रतविसर्गानन्तर गुरुः सशिष्यस्त्रिस्त्रिर्जिन प्रदक्षिणीकृत्य पूर्ववच्चतुर्दिक्षु शक्रस्तवपाठ कुर्यात्। ततो गृह्यगुरु' आसने उपविशेत्। तत' शिष्यो गुरु त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्ययो जितकर ऊर्ध्वस्थितो गुरु विज्ञपयेत्। यथा—“भगवन्! तारितोऽह, निस्तारितोऽहम्, उत्तमः कृतोऽह, सत्तम' कृतोऽहं, पूतः कृतोऽहम्। तद् भगवन्! आदिश प्रमादबहुले गृहस्थधर्मे मम किञ्चनाऽपि रहस्यभूत सुकृतम्”।

भाषा—अब गनकी विधि कहते है। सो अिस प्रकार—व्रतविसर्गके अनन्तर शिष्य सहित गुरु श्री जिनेश्वर परमात्माको तीन तीन बार प्रदक्षिणा करके पहिलेकी तरह चारों दिशामे शक्रस्तवका पाठ करें। पीछे गृहस्थ गुरु आसन पर बैठे तब शिष्य गुरुजीको तीन दफे प्रदक्षिणा करके खडा रहकर हाथ जोडके अिस प्रकार विज्ञप्ति करे—“भगवन्! आपने मुझे तारा, मुझको निस्तारा, मुझे अुत्तम किया, मुझे श्रेष्ठ किया, और मुझको पवित्र किया। अिस लिये हे भगवन्! बहुत प्रमादवाले अिस गृहस्थधर्ममें कुच्छ भी रहस्यभूत सुकृत हो सो मुझे आप फरमाअिये”।

ततो गुरुर्भणति—‘वत्स! सुष्ठु अनुष्ठितम्। सुष्ठु पृष्टम्। तत् श्रूयताम्—

दान हि परमो धर्मो, दान हि परमा क्रिया। दान हि परमो मार्ग—स्तस्माद्दाने मन. कुरु ॥ १ ॥

॥ ११९ ॥

दया स्यादभयं दान-मुपकारस्तथाविधः । सर्वो हि धर्मसंघातो, दानेऽन्तर्भावमर्हति ॥ २ ॥
ब्रह्मचारी च पाठेन, भिक्षुश्चैव समाधिना । वानप्रस्थस्तु कष्टेन, गृही दानेन शुध्यति ॥ ३ ॥
ज्ञानिनः परमार्थज्ञा, अर्हन्तो जगदीश्वराः । व्रतकाले प्रयच्छन्ति, दानं सांवत्सरं च ते ॥ ४ ॥
गृह्णतां प्रीणनं सम्यग्, ददतां पुण्यमक्षयम् । दानतुल्यस्ततो लोके, मोक्षोपायोऽस्ति नाऽपरः ॥ ५ ॥
तत् त्वं वत्स ! ब्राह्मण्यं क्षत्रियत्वं वैश्यत्वं वा प्रपन्नोऽसि, गृहस्थधर्मस्य मोक्षसोपानरूपं दानधर्मप्रारम्भं कुरु ॥ ”

भाषा—तब गुरु कहे–“ हे वत्स ! अच्छा किया, ठीक पूछा। अिस लिये तू श्रवण कर–दान ही अुत्कृष्ट धर्म है, दान ही अुत्कृष्ट क्रिया है, और दान ही श्रेष्ठ मार्ग है; अिस लिये तू दान देनेमें मन कर ॥ १ ॥ प्राणियोंके अुपर दया रखना यह अभयदान कहा जाता है, दानसे तथाविध अुपकार होता है, सभी प्रकारके धर्मके समुदायका दानमें ही अंतर्भाव होता है ॥२॥

ब्रह्मचारी शास्त्रका अध्ययन करनेसे, साधु समाधि–समतासे, वानप्रस्थ कष्टसे, और गृहस्थ दानसे शुद्ध होता है ॥३॥ जन्मसे ही तीन ज्ञानको धारन करनेवाले, परमार्थको जाननेवाले, और जगतके स्वामी अैसे अरिहंत भगवंत भी दीक्षासमयमें सांवत्सरिक–वार्षिक दान देते हैं ॥ ४ ॥ दान अुसको ग्रहण करनेवालोंको संतुष्ट करता है, और देनेवालोंको अक्षय पुण्य देता है; अिस लिये लोगमें दानके समान दूसरा कोअी मोक्षका अुत्तम अुपाय नहीं है ॥ ५ ॥

हे वत्स ! तूने ब्राह्मणपना क्षत्रियपना या वैश्यपनाको प्राप्त किया है, अिस लिये गृहस्थ–धर्मवालेके लिये मोक्षकी सीढ़ी समान अैसा दानधर्मका तू प्रारंभ कर ”।

तत प्रणम्य शिष्यः कथयति— "भगवन्! आदिश मे दानविधिम्"। गुरुः कथयति— "आदिशामि। यथा—

"गावो भूमि सुवर्णं च, रत्नान्यन्नं च नक्तकाः। गजा-ऽश्वा इति दानं तदष्टधा परिकीर्तयेत् ॥ १ ॥
एतच्चाऽष्टविधं दानं, विप्राणां गृहमेधिनाम्। देयं न चापि यतयो, गृह्णन्त्येतच्च निःस्पृहाः ॥ २ ॥
यतिभ्यो भोजनं वस्त्रं, पात्रमौषध-पुस्तके। दातव्यं द्रव्यदानेन, तौ द्वौ नरकगामिनौ ॥ ३ ॥"

भाषा—अुसके बाद शिष्य नमस्कार करके कहे—"भगवन्! आप मुझे दानकी विधि फरमाअिये"। तब गुरु कहे—"कहता हूं। सो अिस प्रकार—गौ, भूमि, सुवर्ण, रत्न, अन्न, नक्तक-वस्त्रविशेष, हाथी और घोडा, यह आठ प्रकारका दान कहा है ॥ १ ॥ अिस आठ प्रकारका दान गृहस्थ अैसे ब्राह्मणोंको देना चाहिये, मगर निःस्पृह मुनिराजों अिस दानको नहीं लेते ॥ २ ॥ मुनिराजोंको तो आहार, वस्त्र, पात्र, औषध और पुस्तकका दान देना, मुनिको द्रव्यका दान देनेसे देनेवाला और मुनि वे दोनों नरकगामी होते हैं ॥ ३ ॥"

तत पूर्वं गोदानम्। अन्येषु सर्वेषु भूमि-रत्नादिदानेषु मन्त्रो यथा—

भाषा—अिस लिये प्रथम गोदान करना। पीछे अिसके सिवाय भूमिदान, रत्नदान वगैरह दूसरे सब दानमें यह निम्नलिखित वेदमन्त्र पढें—

"ॐ अर्हं। एकमस्ति, दशकमस्ति, शतमस्ति, सहस्रमस्ति, अयुतमस्ति, लक्षमस्ति, प्रयुतमस्ति, कोट्यस्ति, कोटिदशकमस्ति, कोटिशतकमस्ति, कोटिसहस्रमस्ति, कोट्ययुतमस्ति, कोटिलक्षमस्ति, कोटिप्रयुतमस्ति, कोटाकोटिरस्ति, सङ्ख्येयमस्ति, असङ्ख्येयमस्ति, अनन्तमस्ति, अनन्तानन्तमस्ति, दानफलमस्ति। तद् अक्षय्य दानमस्तु ते। अर्हं ॐ॥"

॥ इति परेषां दानानां मन्त्रपाठः ॥

भाषा—गौदानके सिवाय दूसरे दानके वख्त अिस प्रकार अुपर लिखा हुआ मन्त्रपाठ पढ़ें ।

यतिभ्यो अन्न-पान-वस्त्र-पात्र-भेषज-वसति-पुस्तकादिदाने " धर्मलाभ " एव मन्त्रः । न तेभ्यो द्रव्यापेक्षि दानं, केवलम् असङ्गत्वात् परिग्रहव्यावृत्तेः ।

भाषा—साधु-मुनिराजोंको अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, दवाअी, अुपाश्रय और पुस्तकादिका दान देना; अुस वख्त "धर्मलाभ" यही अिस दानका मन्त्र है । मुनियों केवल निःसंग और परिग्रहसे व्यावृत्त होते हैं, अिस लिये अुनको द्रव्यकी अपेक्षा-वाला दान नहीं दिया जाता ।

अथ गृह्यगुरुरुपनीतात् चैत्यवन्दनं साधुवन्दनं च विधाप्य तथैव संघे मिलिते मङ्गलगीत-वाद्येषु प्रसरत्सु शिष्यं साधुवसतिं नयेत् । तत्र पूर्ववद् मण्डलीपूजा वासक्षेपः साधुवन्दनं च । ततश्चतुर्विधसंघस्य पूजा, मुनिभ्यो वस्त्रा-ऽन्न-पात्रादिदानम् । इति दानविधिः ॥

भाषा—अब वह गृहस्थ गुरु अुपनयन-संस्कारवालेसे चैत्यवंदन और साधुवंदन करावें । तथा अैसे ही संघ मिले हुअे तथा मांगलिक गीत और वाजिंत्रों वाजते हुअे अुस शिष्यको साधुके अुपाश्रयमें ले जावें । वहाँ पहलेकी तरह मंडलीपूजा और साधुवंदन करें, तथा साधु-महाराज वासक्षेप करें । पीछे चतुर्विध श्रीसंघका पूजन-सत्कार करें, और मुनिराजोंको वस्त्र अन्न तथा पात्रादिका दान करें । अिस प्रकार दानविधि कही ।

अुपनयन–सस्कार आठ वर्षकी अुमर होने पर कराया जाता है । जिस रौज अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा या रेवती नक्षत्र हो, २, ३, ५, ७, १० या १३ तिथि हो, और बुध, गुरु, या शुक्रवार हो, अुस रौज निर्ग्रन्थ गुरुके पास जाकर स्वधर्मका मन्त्र लेना चाहिये । पेस्तर जिनोपवीत रखनेका रवाज था, लेकिन वह अिस जमानेमें रहा नहीं । क्यों कि—जिनोपवीतवाला सत्य वचन बोले, स्वदारा सतोषी होवे, जिनेश्वर परमात्माकी प्रतिमाका त्रिकाल दर्शन करें, जिनप्रतिमाकी द्रव्य और भावसे पूजा करें, सवेरे ओर शामको प्रतिक्रमण करें, हमेशा चौदह नियम धारे, अित्यादि सत्कृत्य यथास्वरूप नहीं बननेके सबब जैनाचार्योंने केवल जिनेश्वर–भगवतकी पूजा करते वख्त जिनोपवीतको धारन करनेकी आज्ञा दी । जिनोपवीतवालेको जो गुण पालना चाहिये अुनको नहीं पालनेके सबब जिनोपवीत रखनेका रवाज बध कर दिया । यदि कोअी गृहस्थ अुपरोक्त गुण पाल सकें तो वह अिस वख्त भी जिनोपवीत धारन कर सकता है । अिस जमानेमें जिनोपवीत रखनेका रवाज रहा नहीं, जिससे अुसके मुकाबिले निर्ग्रन्थ गुरुजीके पास अपने धर्मका मन्त्र लेना, और वासक्षेप कराना, यही रवाज आज–कल जारी रहा है । बात भी सच है कि, आज–कल जिनोपवीत रखनेकी क्रिया बन नहीं सकती । कअी लोग फरमाते है कि, पहले विद्यारभ–सस्कार होना चाहिये, मगर नहीं, अुपनयन–सस्कार पेस्तर होना जरूरी है ।

जिस रौज यह सस्कार कराना हो अुस रौज लडकेको स्नान कराके अच्छे कपड़े पहनाना, और वाजे वगैरा जुलुसके साथ निर्ग्रन्थ गुरुजीके पास लाना । जिस शहर या गाँवमे निर्ग्रन्थ गुरु मोजूद न हो वहाँ धर्मकी श्रद्धावाला ज्ञानवान् जो मिलें अुसके पास ले जाना । जैनधर्ममे श्रद्धाका दरज्जा अुत्तम है, पहले ज्ञान अुसके बाद त्याग । चारित्रके दो भेद हैं—अेक तो जघन्यसे जघन्य नवकारसीका प्रत्याख्यान–पच्चक्खाण करें, या अन्य कोअी भी वस्तुका त्याग करें, यह अणुव्रत–चारित्र । अिसकी अुत्कृष्ट स्थिति ग्यारह प्रतिमाधारी तक है । दूसरा सर्वचारित्र, अिसके छे नियठे है । अिस लिये सनातन जैनधर्मी

श्रद्धावंत गुरु हो अुसके पास जाना । मगर अितना जरूर ध्यान रखना कि, जो धर्मश्रद्धासे भ्रष्ट हो अैसे गुरुके पास जाना जरूरत नहीं । जैन शास्त्रोंमें दर्शन ज्ञान और चारित्र, तीनों मंजूर रखना फरमाया है, मगर अुनमें भी दर्शन यानि श्रद्धाका अव्वल दर्जा फरमाया है । दूसरा दर्जा ज्ञानका, और ज्ञानके बाद चारित्र यानि क्रिया कही । दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ही जिनमें मौजुद हो अुनकी तो तारीफ़ ही है। मगर अुनके न मिलने पर अगर धर्मश्रद्धावाला और ज्ञानवान् गुरु मिल जाय तो अुनके पास जाना भी बहेत्तर है ।

गुरुके पास जाकर अेक चौकी-बाजोठ पर चावलका स्वस्तिक बनाना, और अुस पर रूपया और नारियल रखकर ज्ञान-पुस्तककी पूजा करना; यानि पुस्तक पर रूपया महोर जो कुच्छ ताकात हो वह चड़ाना । निर्ग्रन्थ गुरु अुस द्रव्यको ज्ञान-वृद्धिके काममें लगवा देवें, क्यों कि ज्ञानका द्रव्य ज्ञानमें लगा देना फर्ज है ।

अितने काम हो जानेके बाद निर्ग्रन्थ गुरु जब अपना चन्द्रस्वर चले तब वर्धमान विद्या पढ़कर अुस लड़केके सिर पर वासक्षेप करें, और परमेष्ठि-महामन्त्र सुनाकर अुसके मुंहसे तीन दफे अुच्चारण करावें । वर्धमान विद्या और परमेष्ठि महा-मन्त्र गुरु लोगोंको कंठाग्रही होते हैं, अिस लिये यहाँ लिखनेकी जरूरत नहीं समझी । पीछे गुरु परमेष्ठि महामन्त्रकी तारीफ सुनाकर बयान फरमावें कि—"यह मन्त्र सभी शास्त्रोंका मानो सार है-निचौड़ है, अिसको हमेशां याद रखना । तकली-फ़के वख्त तुझे यही फायदेमंद होगा, आपत्तिके समय तुझे अिसका ही आश्रय है । हमेशांके लिये अितना याद रखना कि-"जिनप्रतिमाका दर्शन और गुरुजीको वन्दन करके ही दूसरे सभी भोजनादि कार्य करना"। जिनमंदिर न होवे तो चित्र-मूर्तिका दर्शन करना । जिस गुरुजीने नमस्कारमन्त्र सिखाया हो अुनके न होंने पर अुनकी मूर्ति चित्र या फोटूका दर्शन करना, क्यों कि जैनधर्मकी श्रद्धा और परमेष्ठि-महामन्त्रको देनेवाले मुख्य गुरुजी ही है ।

चारुदत्तने अेक वकरको श्रद्धा और परमेष्ठि महामन्त्र दिया था–सुनाया था, अुसके प्रभावसे वहब करा मर कर दव हुआ। अुस देवने केवलज्ञानिके पास बैठे हुअे चारुदत्तको प्रथम तीन प्रदक्षिणा देकर विधिपूर्वक वन्दन किया, अुसके बाद केवलज्ञानी भगवतको तीन प्रदक्षिणा देकर विधिपूर्वक वन्दन किया। यह देखकर वहां बैठे हुअे दो विद्याधराने आश्चर्य पाकर केवली भगवतसे पूछा—"भगवन्! मनुष्य तो भूल करें, मगर बड़ा कान्तिशाली इस सम्यक्त्वी देवने भूल क्यों की? पहले अिसने अिस श्रावक–गृहस्थको वन्दन किया, पीछे आपको वन्दन किया, अैसा अविनय क्यों किया?"। तब केवली भगवतने कहा—"चारुदत्त अिसका धर्माचार्य और आसन्नोपकारी है, अिससे देवने अिसको प्रथम वन्दन किया सो यथार्थ किया है, अुसमें अिस देवकी भूल नहीं"। अिसी प्रकार श्री अुववायी सूत्रमें अवडका अधिकार आता है। अुसमें कहा है कि—"अवड श्रावकके सातसौ शिष्योंने अंतसमयकी आराधनामें "अवडजी हमारे धर्माचार्य हैं" अैसा कहकर अवडजीको नमस्कार किया था। भगवान् श्री महावीर स्वामीने अुन शिष्योंको आराधक कहे हैं, और वे देवलोकमें गये हैं। मतलब कि, धर्मका रास्ता बतलानेवाले गुरुजीका खास तौरसे वहुमान करना,' और अुनका अुपकार नहीं भूलना चाहिये।

अिस तरह अुपनयन–संस्कारकी काररवाची पूर्ण होने पर जिस तरह बाजेके साथ आये थे वैसे ही लडकेको घर लेजाना। जो लोग साथ आये थे अुनको नारियल मिठाओ वगेरा जो कुच्छ ताकात हो बाटना, खाली हाथ कोओ जाने न पावें। जो लोग बातबातमें सूमपना करते हैं अुनकी अिज्जत कभी नहीं बढती। निर्ग्रन्थ गुरुजीको आहारकी निमन्त्रना करना, और जिनमंदिरमें अंगी–रौशनी कराकर धर्मकी तरक्की करना जरूरी बात है। धर्मकी ही बदौलत आराम और चैन पाये हो। किसी गाँवमें गुरुका बिल्कुल योग न मिलें तो वहाँ बाजे वगेरा जुलुसके साथ जिनमंदिरमें जाकर माता–पिता ही लडकेको नमस्कार महामन्त्रका अुच्चारण करा देवे।

अुपनयन-संस्कारमें क्या क्या चीज़ चाहिये ? सो कहते हैं—

" पौष्टिकस्योपकरणं, मौञ्जी कौपीन-वल्कले । उपवीतं स्वर्णमुद्रा, गावः संघस्य संगमः ॥ १ ॥
तीर्थोदकानि वस्त्राणि, चन्दनं दर्भं एव च । पञ्चगव्यं बलिकर्म, तथा वेदी चतुष्किका ॥ २ ॥
चतुर्मुखप्रतिमा च, दण्डः पालाश एव च । इत्यादिवस्तुसंयोगो, व्रतबन्धे विधीयते ॥ ३ ॥ "

भाषा—" पौष्टिकका अुपकरण, मौंजी, कौपीन, वल्कल, अुपवीत, सुवर्णकी अँगूठी, गौ, श्रीसंघका मेलाप, ॥१॥ तीर्थके जल, वस्त्रों, चन्दन, दर्भ, गौका दूध दही घी मूत्र और गोबर यह पंचगव्य, बलिकर्मके योग्य वस्तुयें, वेदी, चौकी—बाजोठ, ॥२॥ श्री जिनेश्वर परमात्माकी चौमुख प्रतिमाजी, और पलाश वृक्षका दंड; अित्यादि चीज़ें अुपनयन-संस्कारमें अिकट्ठी करनी चाहिये ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ उपनयन-संस्कारकीर्तनरूपा द्वादशी कला समाप्ता ॥ १२ ॥

॥ त्रयोदशी कला ॥ विद्यारम्भ-संस्कारविधि ॥ १३ ॥

विद्यारम्भोऽश्विनी-मूल-पूर्वासु मृगपञ्चके । हस्ते शतभिषक् स्वाति-चित्रासु श्रवणद्वये ॥ १ ॥
बुधो गुरुस्तथा शुक्रो, वारा विद्यागमे शुभा । मध्यमौ दिननाथे-न्दू, त्याज्यौ कुज शनैश्वरौ ॥ २ ॥
अमावास्याऽष्टमी चैव, प्रतिपच्च चतुर्दशी । पाठे वर्ज्या सदारम्भे, रिक्ता षष्ठी नवम्यपि ॥ ३ ॥

भाषा—अब तेरहवीं विद्यारंभ-संस्कारकी विधि कहते हैं—अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, मृगशीर्ष, आर्द्रा पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, हस्त, शतभिषा, स्वाति, चित्रा, श्रवण और धनिष्ठा, अिन नक्षत्रोंमेसे कोअी भी नक्षत्र हो, ॥ १ ॥ तथा २, ३, ५, ७, १०, ११, १२ और १३, अिन तिथियोंमेसे कोअी भी तिथि हो, तथा बुध, गुरु और शुक्र, अिन वारोंमेसे कोअी भी वार हो तो विद्यारम्भमे शुभ है, अर्थात् अिनमे विद्याका प्रारंभ करनेसे विद्या प्राप्त होती है । रविवार और सोमवार मध्यम है, तथा मंगलवार और शनिवार त्याग करने योग्य हैं ॥२॥ अमावास्या, अष्टमी, अेकम, चतुर्दशी, रिक्ता, षष्ठी और नौमी, ये तिथियाँ विद्यारंभमें सदा ही छोड़ देनी चाहिये ॥ ३ ॥

अथ उपनयनसदृशे दिने लग्ने च विद्यारम्भ-संस्कारमारभेत । तस्य चाऽय विधिः—गृह्यगुरुः प्रथमं विधिना उपनीतस्य पुरुषस्य गृहे पौष्टिकं कुर्यात् । ततो गुरुर्देवायतने धर्मागारे वा कदम्बवृक्षतले वा कुशासनस्थः स्वयं, शिष्यं च वामपार्श्वे कुशासने निवेश्य तद्दक्षिणकर्णं सपूज्य सारस्वतमन्त्रं त्रि पठेत् । ततो गुरुः स्वगृहे वा अन्यो-

पाध्यायशालायां वा पौषधागारे वा शिष्यं नरवाहना-ऽश्वाद्यधिरूढं, मङ्गलगीतेषु गीयमानेषु, दानेषु दीयमानेषु, वाद्येषु वाद्यमानेषु यतिगुरोः सकाशं नीत्वा मण्डलीपूजापूर्वं वासक्षेपं कारयित्वा पाठशालायां नयेत् । ततः शिष्यं गुरोः पुरो निवेश्य इति शिक्षाश्लोकान् पठेत् । यथा—

भाषा—अब अुपनयन सदृश दिन और लग्नमें विद्यारंभ-संस्कारका आरंभ करें। अुसका यह विधि है—गृहस्थगुरु प्रथम विधिपूर्वक अुपनीत पुरुषके घरमें पौष्टिकक्रिया करें। अुसके बाद वह गृहस्थगुरु मंदिरजी अुपाश्रय या कदंबवृक्षके नीचे दर्भके आसन पर बैठके, शिष्यको अपनी बायीं बाजू दर्भके आसन पर बैठाकर, अुस शिष्यके दाहिने कानको पूजके तीन दफे सरस्वती संबंधी मन्त्रको पढ़ें। पीछे वह गुरु अपने घरमें या दूसरे अध्यापककी शालामें या पौषधशालामें शिष्यको ले जावें। वहाँ शिष्यको पालखी या घोड़े पर चढ़ाके मंगल गीतों गाते हुअे, दान देते हुअे और वाजिंत्रों बाजते हुअे गुरुजी श्री यतिजी महाराजके पास ले जाके मंडली-पूजापूर्वक वासक्षेप करवाकर पाठशालामें ले जावें। वहाँ अुस शिष्यको गुरुजीके आगे बैठाकर अिस प्रकार शिक्षाश्लोक पढ़ें—

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया। नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १ ॥
यासां प्रसादादधिगम्य सम्यक्, शास्त्राणि विन्दन्ति परं पदं ज्ञाः ।
मनीषितार्थप्रतिपादिकाभ्यो, नमोऽस्तु ताभ्यो गुरुपादुकाभ्यः ॥ २ ॥
सत्येतस्मिन्नरति-रतिदं गृह्यते वस्तु दूरा- दप्यासन्नेऽप्यसति तु मनः स्थाप्यते नैव किञ्चित् ।
पुंसामित्यप्यवगतवतामुन्मनीभावहेता- विच्छा बाढं भवति न कथं सद्गुरूपासनायाम् ? ॥३॥
इति मत्वा त्वया वत्स !, त्रिशुद्ध्योपासनं गुरोः । विधेयं येन जायन्ते, गी-र्धी-कीर्ति-धृति-श्रियः ॥४॥

भाषा—अज्ञानरूप अंधकारसे अंध बने हुअे प्राणियोंकी आँखे जिन्होंने ज्ञानरूप अंजनकी सलाओद्वारा खोल दी, अुन श्री गुरुदेवको नमस्कार हो ॥ १ ॥ जिनकी प्रसन्नतासे पंडित लोग शास्त्रोंको प्राप्त करते हैं, अैसी मनवांछित पदार्थोंको देनेवाली गुरुदेवकी पादुकाको नमस्कार हो ॥ २ ॥ सद्गुरुकी कृपा होने पर दुःख देनेवाली वस्तु भी सुखकारी होती है, अच्छी वस्तु दूरसे भी प्राप्त हो जाती है, और बूरी वस्तु नजदिकमें होने पर भी अुसमें जरासा भी चित्त आकर्षित नहीं होता है, अिस प्रकार जाननेवाले मनुष्योंको अुत्सुकताके कारणभूत अैसी सद्गुरुदेवकी अुपासनामें–सेवा करनेमें अतिशय अिच्छा क्यों न होगी ?। अर्थात् गुरुदेवके प्रभाव जाननेवाले ज्ञानी मनुष्यों तो गुरुदेवकी सेवा–भक्ति करते ही हैं ॥ ३ ॥ अैसा जानकर हे वत्स ! तुझे तीनों प्रकारकी शुद्धिसें अर्थात् मन वचन और कायासें गुरुदेवकी अुपासना करनी चाहिये, जिससे वाणी, बुद्धि, कीर्ति, धैर्य–हिम्मत और लक्ष्मी होवे ॥ ४ ॥

इति शिष्यस्य शिक्षां दत्वा तस्माच्च स्वर्ण–वस्त्रदक्षिणां गृहीत्वा स्वगृहं व्रजेत् । तत उपाध्याय सर्वेषां पूर्वं मातृकापाठं पाठयेत् । ततो विप्रस्य पूर्वमायुर्वेदं तत षडङ्गीं ततो धर्मशास्त्रं पुराणादि । क्षत्रियस्याऽप्येवमेव चतुर्दश विद्यास्ततश्च आयुर्वेदं धनुर्वेदं दण्डनीतिमाजीविका च । वैश्यस्य धर्मशास्त्रं नीतिशास्त्रं कामशास्त्रम् अर्थशास्त्रम् । शूद्रस्य नीतिशास्त्रम् आजीविकाशास्त्रम् । कारूणां तदुचितं विज्ञानशास्त्रमध्यापयेत् । ततः साधुभ्यश्चतुर्विधाहार-वस्त्र-पात्र-पुस्तकदानम् ।

भाषा—गृहस्थ गुरु अिस प्रकार शिष्यको सीख–अुपदेश देकर और अुससे स्वर्ण तथा वस्त्रकी दक्षिणा लेकर अपने घर जावें । अुसके बाद अुपाध्याय–अध्यापक सबको पहिले मातृका–वर्णमाला पढ़ावें । अुसके बाद ब्राह्मनको प्रथम आयुर्वेद, पीछे षडंगी,

और पीछे पुराणादि धर्मशास्त्र पढ़ावें । क्षत्रियको भी अैसे ही चौदह विद्या पढ़ावें, तदनंतर आयुर्वेद, धनुर्वेद, दंडनीति और आजीविकाशास्त्र पढ़ावें । वैश्यको धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र और अर्थशास्त्र पढ़ावें । शूद्रको नीतिशास्त्र और आजीविका शास्त्र पढ़ावें । कारुओंको अुनके योग्य विज्ञानशास्त्र पढ़ावें । अुसके वाद साधुओंको चारों प्रकारके आहार, वस्त्र, पात्र और पुस्तकका दान देवें ।

विद्यारंभ–संस्कारमें क्या क्या वस्तु चाहिये ? सो कहते हैं—

"पौष्टिकस्योपकरणं, गीतं वादित्रमेव च । मन्त्रोपदेशः पाठस्य, संस्कारे वस्तुसंग्रहः ॥ १ ॥"

भाषा—"पौष्टिकक्रियाके अुपकरण, मंगलगीत, वाजिंत्र, सारस्वत मन्त्रका अुपदेश; अितनी वस्तु विद्यारंभ–संस्कारमें चाहिये ॥१॥"

वयान–विद्यारंभ-संस्कारका–

संसारमें विद्याके तुल्य कोअी धन नहीं । जिसके माता–पिता पुत्रको नहीं पढ़ाते अुनके तुल्य कोअी मूर्ख नहीं । धन तो आज है और कल नहीं, न मालुम घडीमें अुसका क्या होगा ? । जो पढ़ाअी पाठशाला–मदरसेमें होती है वैसी घर पर कभी नहीं होगी । दुनियामें अिल्म बराबर कोअी चीज़ नहीं है । जिसके माता–पिता लड़केको अिल्म नहीं पढ़ाते अुनकी बराबर कोअी बेवकूफ नहीं है । दौलतके भरूसे रहना यह कौन चतुराअीकी बात है ? । जो लोग दौलतके नशेमें आकर अपने लड़केको मदरसेमें नहीं भेजते हैं, और मास्टरको घर पर बुलवाकर तालिम दिलवाते हैं, अुनकी बराबर कोअी मूर्ख नहीं । नाहक ! पैसे खोना और लड़केको बेअिल्म रखना कौन अकलमंदीकी बात है ? । अिससे तो लाज़िम है कि, मद-

स्लेमे भेजकर अिल्म सिखलाना । अगर लडका दुबला-पतला हो जायगा, अिस बातकी फिक्र है, तब तो फिर तुम्हारे जैसा कोअी अेहमक नहीं । याद रक्खो ! अिल्मसे ही लडका सुधरेगा । अच्छा खाना खिलाना, और अुमदा पुशाक पहिनाना, मुताबिक तुम्हारी मरजीके वेशक अच्छा है, मगर अिल्म सिखलानेमें मुरव्वत करना हर्गिज अच्छा नहीं । अगर पढानेवाला मास्टर तुम्हारे लडकेको सजा दे तो अुस पर नाराज होना कोअी जरूरत नहीं। बल्के हरवख्त मास्टरको कहते रहो कि—लड़केको सजा देनेमें हमारा खौफ़ बिलकुल नहीं रखना, और अिल्म सिखलाना, जिससे हम तुम्हारे अहसानमद बने ।

अच्छे लग्नमे लड़केको मदरसेमे भेजना चाहिये । अगर मास्टरसे पढ़ना शुरू करते वख्त लडकेका सूर्यस्वर चलता हो तो निहायत अुमदा है, अिल्म जल्दी हासिल होगा ।

तालीम–धर्मशास्त्र

लडका या लड़की कमसें कम आठ वर्षके हो, तब अुनको विद्यारभ–सस्कारकी शुरूआत करनी चाहिये । धर्मशास्त्रके फरमाने मुताबिक जैन कोमके लडकोंको अव्वल तो अकज्ञान, अक्षरज्ञान और गणित सिखलाना चाहिये। जब लिखने–पढनेमे होशियार हो जाय तब सामायिक, प्रतिक्रमण, स्नात्रपूजा, पूजाकी विधि, जीवविचार, नवतत्त्व, दडक, लघु और बृहत्–सग्रहणी, क्षेत्रसमास, कर्मग्रन्थ, नयचक्र, चैत्यवन्दन भाष्य, गुरुवन्दन भाष्य, प्रत्याख्यान भाष्य, अुपदेशमाला, गौतमकुलक, हेमचन्द्र व्याकरण, हैमी नाममाला, जैन कुमारसभव, नेमिदूत महाकाव्य, अलकार चूडामणि, वाग्भटालकार, तत्त्वार्थ सूत्र, प्रमाण–नय तत्त्वालोकालकार–रत्नाकरावतारिका, स्याद्वाद मजरी, हरिभद्रसूरिकृत अष्टक, लोकतत्त्व निर्णय और प्रवचनसारोद्धार, वगैरा ग्रन्थ पढाना, जिससे अुसकी धर्मश्रद्धा दृढ होवे । कितनेक लोग कहते हैं कि—अंग्रेजी और फारसी पढनेसे लडका

धर्मनिंदक हो जाता है। मगर याद रहे कि—जिस लड़केको पेस्तर धर्मशास्त्र नहीं पढाये गये हैं वो ही यवनविद्या पढकर धर्मनिंदक बनता है। जिसको धर्मशास्त्रकी तालीम पेस्तर दी गओी है, वह कभी धर्मनिंदक नही बनेगा। असलमें अुसके माता-पिताओंकी ही कसुर है कि, लड़केको पेस्तर धर्मशास्त्र नहीं पढाया; अिसी सबबसें वह नास्तिक बन गया, और तुम्हारा पूजन-पाठ देखकर हँसता है। अिधर बहुतसे जैन मंदिर और तीर्थोंका नाश ढुंढियोंने किया, जो अपने मुँह पर कपड़ेकी पाटी बांधे रहते हैं। जैनशास्त्र अुनको जैन नहीं फरमाते, मगर वे ही अपने आपको जैनके नामसें मशहुर करते हैं। लड़केको जैनशास्त्र पढाये बाद अंग्रेजी वगेरा सिखलावें, जिससे वह स्वधर्मसे च्युत नहीं होवें। वह अवकाशमें आगमसारोद्धार, जैन दिग्विजय, वगेरा शास्त्र पढता रहें। आजकल कितने ही माता-पिता जल्दीसें पुत्रकी कमाओीको चाहते हैं, द्रव्योपार्जनके लिये छोटीसी अुम्रके बालकोंको विदेशमें भेजते हैं; वहाँ पाखंडियोंकी कुयुक्तियोंको सुनकर सत्यधर्मका त्याग करते हैं, और वे आधुनिक मनुष्य-कल्पित मत-मतांतरमें प्रवेश कर देते हैं। जिससे लड़का पूरी तोरसें धर्मकी दृढ श्रद्धावाला न होवें वहाँ तक अुसको अैसे पाखंडियोंके संगसें दूर रखना चाहिये।

कितनेक फरमाते हैं कि—“लड़कीको विद्या पढाना मुनासिब नहीं, क्यों कि वह बड़ी होने पर खोटे काम करना सिखेगी, और विधवा व्यभिचारिणी हो जायगी”। अैसे कमअकल मनुष्योंको हम क्या कहें?। अुनसें हम पूछते हैं कि-अपठित औरतें क्या सब ब्रह्मचारिणी या पतिव्रता ही होती हैं? और अपठित औरतें क्या सब जन्मभर सोहागन ही रहती है?। मगर अिसका कोओी संतोषप्रद जवाब नही देते। अिल्म पढी हुओी औरत कदाचित् पूर्वके अशुभ कर्मके अुदयसें पतित हो गओी होगी तो वह सदुपदेशसे सुधरेगी भी जल्दी; मगर अनपढको कितनी ही तालीम दो, हर्गिज न सुधरेगी। पढी हुओीको थोड़ी मुद्दतमें सुधारना चाहो तो वह सुधर सकेगी। मुल्कोंमें हमारा विचरना हुवा। जगह जगह लोग वही बात पेश करते रहे कि, “जो औरत पढ़ी हुओी हो अुसका पति जल्दी मर जाता है”। यह ख्याल अज्ञानतासूचक है।

आता है।
पढ़ी हुओ हजारों औरतोंको आजन्म सोहागन देखते हैं, शुभाशुभ कर्मके अुदयसे ही सोहागनपना और विधवापना आता है।
कितनेक कहते हैं कि—हमारी औरतको पर्दा ठहरा, अिस लिये कैसे पढ़ा सकें ?। जवाबमे कहा गया—तुम खुद अगर
पढ़े हुओ हो, अुसको पढ़ाया करो। तो अुस पर अुन्होंका कहना अैसा होता रहा कि—फिर तो हम अुसके गुरु हो गये !,
अुसके साथ अेक शय्यामें सोना-बैठना कैसे बनेगा ?। जवाबमे हम लाचार हुअे, और कहा गया कि—आप लोगोंकी
अक्लके दुर्मियान सब धर्मशास्त्र पायमाल हैं !। क्यों कि, जब तक कुतर्कको नहीं छोड़ोगे तब तक धर्मशास्त्र और अुपदेश
कुच्छ भी असर न कर सकेंगे। धर्मशास्त्रमें आचार्य, अुपाध्याय और साधुको ही मोक्षमार्गके गुरु फरमाये हैं। तुम अपनी
औरतको अिल्म सिखलानेसे ही गुरुपद पा लिया समझ रहे हो !, कहाँ तक कोओ समझा सकेगा ?। मतलब यह है कि—
जो लोग औरतको विद्या पढ़ाना मना फरमाते हैं वे खुद गलती पर खडे हैं। देखो ! आवश्यक सूत्रमें क्या बयान है ?
औरतोंके लिये चौसठ कला सीखना लिखा है या नहीं ?। खुद तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामीने ब्राह्मी और सुंदरीको गणित
और लिपिविधान सिखलाया है या नहीं ?। आवश्यकसूत्र निर्युक्ति-अध्ययन अव्वलमें तलाश करो। अिन सबुतोंसे कह सकते
हैं कि औरतोंको भी विद्या पढ़ाना जरूरी है। विद्या विहून आदमी अक्लका अंधा है। बतलाअिये ! अेक अक्लके अंधेको
दूसरी अक्लकी अंधीके साथ विवाह कर दिया जाय, क्या खूब जोडी मिलेगी !। अगर तुम अपना घर, कुटुंब, कौम और
देशका अभ्युदय चाहते हो तो पुत्रियोंको विद्या सिखलाओ। वह पढी हुओ पुत्री धूर्तोंसे कभी न ठगायगी और न अपने
सतानोंको कुपथ्य खिलाकर रोगी बनायगी। सुशिक्षित स्त्री मिथ्यात्वी देव-देवीकी मनौती न करेगी, और अपने सतानोंके
लिये झाडा-झूका डोरा-धागा और दोषारोपणादिद्वारा दुर्दशा करके अुनको बेमौत न मारेगी, न घरका धन बरबाद करेगी।
अपने सतानोंको सुशिक्षित करेगी, शीलव्रत-धारिणियोंके चरित्र पढ़कर दृढव्रतवाली हो जायगी, अपने पतिकी आज्ञाकारिणी
बनी रहेगी, अित्यादि पढानेके अनेक लाभ हैं।

दुनियामें तीन हिस्से लोग अलबतें । अनपढ़ हैं, वे बेशक अिस लेखको बतौर हँसीमें अुड़ा देंगे; मगर अुनका खौफ़ रखते तो हमसें ग्रंथ ही लिखा न जाता । हाँ ! अैसी स्वाधीनता औरतको मत दो जैसी आजकल दूसरे मुल्कवालोंने दी है । औरतको तालीम देनेसें गरज यह है कि, वह अिस दुनियाका और परलोकका खयाल रखनेवाली बनें; और अपनी औलादको वाहियात कामोंसें बचा सकें । मर्द तो चौदह विद्याका खज़ाना हो, और औरत काला हर्फ़ भेंस बराबर गिनें, कहिये ! अुनका मेल कहाँ तक मिला रहेगा ? । अिन बातोंको सोचकर कोअी कुच्छ कहे तो अुस पर ख्याल किया जाय । नाहक बेहुंदा-बेसनद बातें पेश करें, अुनको कहाँ तक कोअी समझा सकें । लाजिम है आमलोगोंको कि—लड़का-लड़कीको बेधड़क होकर अिल्म हांसिल करावें, और मूर्खानंदोंके कहने पर न झूके ।

लड़कोंने पेस्तर ये मिसरे याद करना चाहिये—

१-धर्म पर अेतकात-विश्वास रक्खो । २-जीव अपनी अच्छी तकदीरसें आराम और बुरीसें तकलीफ पाता है । ३-अीश्वर किसीका भला-बुरा नहीं करता, जो कुच्छ होता है अपने कर्मसे है । ४-दुनियाका बनानेवाला कोअी नहीं । ५-जैसे अीश्वर किसीका बनाया हुआ नहीं वैसे ही दुनिया भी किसीकी बनाअी हुअी नहीं । ६-बहुतसे लोग कहते हैं कि—दुनिया अीश्वरने बनाअी, मगर दलील अिन्साफ कबुल नहीं करते । ७-आकाशमें सूर्य और चाँद देखते हो, वे अीश्वरके बनाये हुवे नहीं; बल्के देवोंके विमान हैं, और खुद अुनको चलाते हैं । ८-तकदीरका लिखा कोअी मिटा सकता नहीं । ९-कअी लोग जमीन-पृथ्वीको नरंगीकी तरह गोल फरमाते हैं, मगर पृथ्वी थालीकी तरह गोल और सपाट है । १०-पृथ्वी फिरती नहीं, बलके सूर्य और चाँद फिरते हैं । ११-आत्मा शरीरसे जुदा है, मगर अिस वख्त जड़-शरीरसे मिला हुआ है । १२-मांस खाना बड़ा पाप है । १३ शिकार खेलना बड़ा गुनाह है । १४-पेस्तर लोग आकाशगामी विमानके जरिये मुसाफरी करते थे । १५-जिसकी

तकदीर अच्छी अुसको कोअी कुन्छ कर सकता नहीं। १६-देवदर्शन किये विदून खाना मत खाओ। १७-आदमी आज महेलमें है, न मालुम क्ल कहा होगा ?। १८-चाहे वादशाह हो या रियाया हो, सवको मरना है। १९-दौलत धर्मकी लौंडी है। २०-जैसे तुम दुश्मनसें डरते हो, वैसी ही पापसें भी खौफ रक्खा करो। २१-हरहमेश माता-पिताको मुजरा करो। २२-कपडे साफ पहनो, मैले कपड़ेवालेकी अिज्जत नहीं होती। २३-गहेरे जलमें मत खेलो। २४-शराव पीना पागल होनेकी निशानी है। २५-नगे मत फिरो, नगोंकी कदर नहीं होती। २६-खौफकी जगह अकेले मत जाओ। २७-खारा पानी मत पीओ। २८-गाते वख्त खुलकर गाओ। २९-सभामे जाते शर्म मत करो। ३०-दिलकी वात दोस्तको भी मत कहो। ३१-दूसरेके मकान पर जाओ तो अित्तिला (सूचना) करके जाया करो। ३२-वेमतलव ज्यादे मत वोलो। ३३-हमेशा याद रक्खो कि—हम मिट्टीके पुतले हैं। ३४-किसी जातका घमड मत करो, सव तुम्हारे पूर्वभवके कर्मोंका फल है। ३५-हाकिमकी धमकीसें मत डरो, वह तुम्हारे दिलको कमजोर करनेके लिये धमकी देता है। ३६-हरवातमे चिडना अच्छा नहीं, मिजाज मुकाम पर रक्खो। ३७-जैसे गुवज पर गेंद नहीं टिकती वैसे ही मूर्खोंके दिल पर नसीहत नहीं टिकती। ३८-दुनिया दगलवानोंकी सराय है, सोचकर वात कहो।

३९-यह मत समझो कि नोट चलानेका रवाज अमेरिकासें ही चला है, पेस्तर भी चलता था। ४०-मुल्क रूसके अजायव घरमे अिसामसीहसें २००० वर्ष पेस्तरकी नोट रक्खी हुअी है, जो नीली स्याहीसें रेशमी कागज पर छपती थी। ४१-कपडे वुननेकी कल अिसामसीहके जन्मसे पेस्तर ३००० वर्ष पहिले चीनमे मौजुद थी, जिसको आज अदाज पाँच हजार वर्ष हुवे। छोटी छोटी लकड़ेकी क्ल तो सवके घर पेस्तर थी, अिसीको देख-देखकर वडी कल वनाअी है। ४२-दुनियामे रैलका जारी होना करीव १५० वर्षसे है, अिससे ताज्जुव होना कोअी जरूरत नहीं। ४३-पेस्तर वडे वडे जहाज चलते थे, करीव १४० वर्षसें स्टीमर चलना जारी हुवा। आग-कोलसा न हो तो समुद्रमे ही रहना पडे। ४४-पेस्तरके खलासी लोग

जहाज चलानेमें अैसे होशियार थे कि आज-कलके कप्तान भी अुनकी बराबरी नहीं कर सकतें। अंधेरेमें बतला देते थे कि, जहाज पूरवमें या अुत्तरमें चल रहा है। वे आकाशके सितारोंको देखकर पहिचान कर लेते थे, आज होकायन्त्र बनाना पड़ा। ४५-पेस्तर लकड़ेकी घड़ीयें बनती थी, आज सुने-चाँदीकी बनने लगी। ४६-पेस्तर सवालाख रूपयेके दुशाले बनते थे, आज किसीसें अैसे नहीं बनते। ४७-पेस्तर अिंग्लांडकी रानी अेलीझावेथ ढाके-बँगालकी मलमल अपने खासके लिये मंगवाती थी, आज अैसी मलमल दुनियाभरके कारीगरोंसे नहीं बन पड़ती। ४८-पेस्तरके लकड़ेके चरखे देखकर आज प्रेस, जीन और मीलें बनाओ गओ हैं; अिसमें चकित होना कोओ जरूरत नहीं। ४९-याद रक्खो! पेस्तरके जमानेसें आजकल बल बुद्धि और दौलत कम है, बढ़कर नहीं। चाहे नयी रोशनीवाले अिस बातको पसंद न करें तो कोओ हर्जकी बात नहीं, जिद्दी आदमीको कोओ समजा नही सकता।

५०-अुस्तादके फरमाने पर गौर करो, अुनके सामने गुस्ताखी मत करो। और तुमको मारपीट करें तो अुसको नसीहत समझो, गाली बोलें तों अुसको गाली न समझो। देखो! पांडव जैसे राजकुमारों भी जब द्रोणाचार्य गुरुके सामने दुनियाकी अिल्मको पढ़ने जाते थे तब गुस्ताखी कभी नहीं करते थे, बल्के गरीबीसें पेश आते थे। ५१-जिस लड़केको अुस्ताद मार-पीट करें, और वह अपने माता-पितासे कहें; तो अुस्तादको चाहिये कि अुसकी फिक्र हर्गिज न करें। अगर अुस लड़केके माता-पिता लड़ने पर आमादा हो, तो लाज़िम है अुस्तादको कि अुनके लड़केको मदरसेसें निकाल दे। ५२-अिल्म बराबर दुनियामें कोओ चीज़ नहीं। अुनके माता-पिता दुश्मन हैं जो अपने लड़केको बेअिल्म रखते हैं।

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ विद्यारम्भ-संस्कारकीर्तनरूपा त्रयोदशी कला समाप्ता ॥१३॥

॥ चतुर्दशी कला ॥ विवाह–सस्कारविधि ॥ १४ ॥

अब चौदहवीं विवाह–सस्कारकी विधि कहते है—

इह हि विवाहः समकुल–शीलयोरेव भवति । यत उक्तम्—

" ययोरेव समं शील, ययोरेव सम कुलम् । तयोर्मैत्री विवाहश्च, न तु पुष्ट–विपुष्टयोः ॥ १ ॥

ततः समकुल–शीलौ समज्ञाती ज्ञातदेश–कृत्या–ऽन्वयौ विवाहसबन्धे योज्यौ ।

भाषा—यहाँ पर तुल्य कुलवाले और समान शील–स्वभाववालोंका ही विवाह करना योग्य है । कहा है कि—" जिनका समान शील-स्वभाव हो, और जिनका समान कुल हो, अुनका ही विवाह और मैत्री सगत है । मगर अेक पुष्ट और दूसरा दुबला हो अुनका विवाह और मैत्री योग्य नहीं है । अर्थात् अुत्तम कुलवाले और अधम कुलवाले तथा धनवान् और निर्धनका विवाह और मैत्री योग्य नहीं है ॥ १ ॥ " अिस लिये जो समान कुल और शीलवाले हो, समान ज्ञातिके हो, तथा जिनका देश कार्य और वश परस्पर जानते हो, अुनका विवाह–सबन्ध जोडना चाहिये ।

ततश्च योऽविकृतस्तेन न विकृतकुलस्य कन्या ग्राह्या । विकृतकुलं यथा—

" रोमशश्चार्शसो ह्रस्वो, दद्रुणश्चित्रकुष्ठिनः । नेत्रो–दररुजो बभ्रु–वशास्त्याज्याः कनीग्रहे ॥ १ ॥

एभ्यः कुलेभ्यो न कन्या ग्राह्या । कन्या विकृता यथा—

" अधिकाङ्गी च हीनाङ्गी, कपिला व्योमदृक् तथा । भीषणा भीषणाह्वा च, त्याज्या कन्या विचक्षणैः ॥ १ ॥
देव-र्षि-ग्रह-तारा-ऽर्चि-र्नदी-वृक्षादिनामिकाम् । वर्जयेद् रोमशां कन्यां, पिङ्गाक्षीं घर्घरस्वराम् ॥ २ ॥ "

कन्यादाने वरस्य विकृतं कुलं यथा—

" हीन-क्रूरवधूकं च, दरिद्रं व्यसनान्वितम् । कुलं विवर्जयेत् कन्या-दानेऽल्पपुत्रकं तथा ॥ १ ॥
मूर्ख-निर्धन-दूरस्थ-शूर-मोक्षाभिलाषिणाम् । त्रिगुणाधिकवर्षाणा-मपि देया न कन्यका ॥ २ ॥ "

ततः अविकृतकुलयोर्द्वयोर्विवाहसंबन्धो योग्यः । विकृतकुलयोर्द्वयोरपि तथा ।

भाषा—अिस लिये जो अविकृत हो अुसने विकृत कुलकी कन्या नहीं ग्रहण करनी चाहिये । विकृत कुल अिस प्रकार समझना—" जिस वंशका पुरुष शरीर पर बहुत रोमवाला होवे, अर्श–बवासीरका रोगवाला होवे, प्रमाणसे भी छोटा शरीरवाला होवे, दादका दर्दवाला होवे, चित्रकोढ़की बिमारीवाला होवे, नेत्र और अुदरकी व्याधिवाला होवे, तथा बभ्रुजातिका होवे; अैसे वंशोंकी कन्याओंका ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥ " विकृत कन्या अिस प्रकार—" वरसे अधिक शरीरवाली होवे, हीन अंगवाली होवे, तथा भूरा–भूखरा वर्णवाली होवे, अुंची दृष्टिवाली होवे, तथा जिसका दृश्य और नाम भयानक होवे; अैसी कन्या विचक्षणोंको त्यागने योग्य है ॥ १ ॥ देव, ऋषि, ग्रह, तारा, अग्नि, नदी, और वृक्षादिका नामवाली जो कन्या होवे; तथा जिसके शरीर पर बहुत रोम होवे, जो पीली–माँजरी आँखवाली होवे, तथा जो घरघरा स्वरवाली होवे; अैसी कन्या भी विवाहमें छोड़नी चाहिये ॥ २ ॥ "

कन्या देनेमे विकृत कुलवाला वर वर्जना चाहिये। वरका विकृत कुल अिस प्रकार समझना—“ जो कुल हीन हो, जिसमें क्रूर स्वभाववाली औरत हो, दरिद्र हो, आपत्तिवाला या शराव वगैरा व्यसनवाला हो, और बहुत कम पुत्र-संतानवाला हो, अैसे कुलको कन्यादानमे वर्जना चाहिये ॥ १ ॥” अिसी तरह विकृत वरका भी त्याग करना चाहिये। सो अिस प्रकार समझना—“ मूर्ख, निधन, दूर देशमे रहनेवाला, शूर-योद्धा, मोक्षका अभिलाषी-वैरागी, और कन्यासे तीन गुनीसे अधिक अुम्रवाला, अैसा वर विकृत कहा जाता है, जिससे अैसे वरको कन्या नहीं देनी चाहिये ॥ २ ॥” अिस लिये दोनों अविकृत कुलवालोंका और दोनों अविकृत वर-कन्याका विवाह-सबन्ध जोडना योग्य है। अिसी तरह दोनों विकृत कुलवालोंका विवाह-सबध जोड़ना योग्य है।

तथा पञ्च शुद्धीर्निरीक्ष्य वधू-वरयो. संयोगो विधेयः। ता यथा—

“ राश्योर्योन्योश्च गणयो-र्नाड्योस्तत्र च वर्गयो। शुद्धिं निरीक्ष्य कर्तव्यो, वर-वध्वोश्च संगमः ॥ १ ॥”

तथा च—“ कुलं च शील च सनाथता च, विद्या च वित्त च वपुर्वयश्च।
वरे गुणा सप्त विलोकनीया, अत पर भाग्यवशा हि कन्या ॥ १ ॥”

भाषा—तथा पाँच शुद्धियाँ देखकर वर-कन्याका सयोग-विवाह करना। वे पाँच शुद्धियाँ अिस प्रकार—“ वर और कन्या दोनोंकी राशि १, योनि २, गण ३, नाडी ४, और वर्ग ५, ये पाँच शुद्धियाँ वर-कन्याकी देखकर अुनका सयोग-विवाह करना चाहिये ॥ १ ॥” फिर भी कहा है कि—“ कुल १, शील २, स्वामी ३, विद्या ४, धन ५, शरीर ६, और अुम्र ७, ये सातों गुण वरमे देखना चाहिये, अर्थात ये सात गुण वरमे देखकर कन्या देनी चाहिये। अितना देखने पर भी आगे जो होवे सो कन्याके भाग्यकी बात है ॥ १ ॥”

“ गर्भाष्टमात् परं पाणि-ग्रहमर्हति कन्यका । एकादशाब्दीं यावच्च, तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
राकेति कथ्यते सा तु, विवाहं शीघ्रमर्हति । वरं प्राप्य चन्द्रबले, तुच्छेऽपि हि महोत्सवे ॥ २ ॥ ”

यत उक्तम्—“ वर्ष-मास-दिनादीनां, शुद्धिं राकाकरग्रहे । नालोकयेच्चन्द्रबलं, वरं प्राप्य विवाहयेत् ॥ १ ॥
नरस्याऽब्दाष्टकादूर्ध्वं, विवाहोऽशीतिमध्यतः । ततो न कल्पते येन, स शुक्ररहितो भवेत् ॥ २ ॥ ”

भाषा—गर्भसें आठ वर्षसें लेकर ग्यारह वर्ष तक कन्याका विवाह करना,× अुसके बाद रजस्वला होती है ॥ १ ॥ अुस रजस्वला कन्याको ‘ राका ’ कहते हैं, अुसका विवाह जल्दी करना चाहिये । वरको प्राप्त करके चन्द्रका बल होने पर तुच्छ महोत्सव होने पर भी अुसका विवाह करना अुचित है ॥ २ ॥ ”

कहा है कि—“ राकाके विवाहमें वर्ष, मास और दिन आदिकी शुद्धि नहीं देखनी चाहिये । चन्द्रबल देखकर वरको प्राप्त करके अुसका विवाह कर देना चाहिये ॥ १ ॥ पुरुषका आठ वर्षसे लेकर अस्सी (८०) वर्षके बीच-बीच विवाह होना चाहिये, अुसके बाद विवाह न कल्पे; क्यों कि अस्सी वर्ष अुपरांत प्रायः पुरुष वीर्य रहित होता है ॥ २ ॥ ”

× यह कथन लौकिक व्यवहार अनुसार है । क्यों कि—जैनागममें तो “ जोव्वणगमणुपत्ता ” ऐसा कहा है । यानि वर-कन्या जब यौवनको प्राप्त होवे तब अुनका विवाह करना । और प्रवचनसारोद्धारमें लिखा है कि—“ सोलह वर्षकी स्त्री और पचीस वर्षका पुरुष, उनके संयोगसे जो संतान उत्पन्न होवे वह बलवान् होता है ” । इत्यादि आगम और शास्त्रोंके कथनमें तो बाललग्न और वृद्धलग्नका निषेध सिद्ध होता है ।

ब्राह्म प्राजापत्य, तथाऽऽर्षमथ दैवत च चत्वारि। करपीडनानि धर्म्याणि, मातृ-पितृवचनयोगेन ॥ १ ॥
गान्धर्व आसुरश्चाऽथ, राक्षसस्तदनु चैव पैशाच.। एते पापविवाहा-श्चत्वार' स्वेच्छया विहिता' ॥ २ ॥

भाषा—विवाह दो प्रकारके होते हैं-धर्म्य विवाह और पाप विवाह। धर्म्य विवाहके चार भेद हैं-ब्राह्म विवाह, प्राजापत्य विवाह, आर्ष विवाह और दैवत विवाह। ये चारो विवाह मात-पिताकी आज्ञासें होते हैं, अिस लिये लौकिक व्यवहारमे ये धर्म्य विवाह गिने जाते हैं ॥ १ ॥ पाप विवाह के भी चार भेद हैं-गान्धर्व विवाह, आसुर विवाह, राक्षस विवाह और पैशाच विवाह। ये चारो विवाह अपनी अिच्छानुसार किये जाते हैं, अिस लिये ये पाप विवाह गिने जाते हैं ॥२॥

ब्राह्मविवाहविधिर्यथा-शुभदिने शुभलग्ने पूर्वोदितगुण वर समाकार्य तस्मै स्नाताऽलकृताय अलकृता कन्या दद्यात्। मन्त्रो यथा—

भाषा—चार प्रकारके धर्म्य विवाहमे प्रथम ब्राह्म विवाहकी विधि कहते हैं-शुभ दिनमे और शुभ लग्नमे पहले कहे हुअे गुणवाला, स्नान किया हुआ, और आभूषणोंसें अलकृत अैसे वरको बुलाके अुस वरको आभूषणोंसें अलकृत अैसी कन्या देवें। अुस वख्त निम्न लिखित मन्त्र पढ़े—

" ॐ अर्हं। सर्वगुणाय सर्वविद्याय सर्वसुखाय सर्वपूजिताय सर्वशोभनाय तुभ्य सुवस्त्र-गन्ध माल्याऽलंकृतां कन्यां ददामि। प्रतिगृह्णीष्व। भद्र भवते। अर्हं ॐ ॥ "

इति मन्त्रेण बद्धाञ्जली दम्पती स्वगृह गच्छतः। इति धर्म्यो ब्राह्मविवाहः।

भाषा—अिस प्रकार “ ॐ अर्हं, सर्वगुणाय० ” अित्यादि अुपर लिखे हुअे मन्त्रसें बँधी हुअी है वस्त्रप्रांतकी गाँठ जिनकी अैसे स्त्री-भर्ता अपने घर जावें। यह ब्राह्मविवाह नामका प्रथम धर्म्य विवाह कहा।

अब दूसरा तीसरा और चौथा धर्म्य विवाह कहते हैं—

प्राजापत्यस्तु जगत्प्रसिद्धत्वाद् विस्तरेण कथयिष्यते। आर्षे च विवाहे वनस्थमुनयो गृहस्थाः स्वसुताम् अन्यर्षिपुत्राय गा अनडुहश्च सह दत्त्वा कन्यां ददति, न तत्राऽन्यत् किञ्चिदुत्सवादि। एतदीयो वेदमन्त्रो जैनवेदेषु नास्ति, जैनानां तदकृत्यत्वात्। दैवतविवाहे तु पिता पुरोहिताय इष्टापूर्तकर्मान्ते स्वकन्यां दक्षिणावद् दद्यात्, इति दैवतो धर्म्यविवाहः। अमी चत्वारो धर्म्या विवाहाः।

भाषा—दूसरा प्राजापत्य विवाह तो जगतमें प्रसिद्ध है, अिस लिये अुसको विस्तारसे कहेंगे। तीसरे आर्ष विवाहमें वनमें रहनेवाले गृहस्थ ऋषिलोग अपनी कन्याको दूसरे ऋषिके पुत्रको गौ और बैलके साथ देते हैं, अिसमें अन्य कोअी अुत्सवादि नहीं होता। अिस विवाहका वेदमन्त्र जैनवेदोंमें नहीं है, क्यों कि अैसे विवाहको जैनियों अकृत्य गिनते हैं। श्री तीर्थंकरोंने फरमाये हुअे आचारको पालनेवाले वर्णोंके लिये ही जैनवेदमें मन्त्र आते हैं, मगर अैसे विवाह अकृत्य होनेसें अिनका मन्त्र जैनवेदमें नहीं है। चौथे दैवत विवाहमें तो पिता अपने पुरोहितको अिष्टापूर्त[1] कर्मके अंतमें अपनी कन्याको दक्षिणाकी तरह देवें। यह विवाह भी अकृत्यरूप होनेसें अिसका भी मन्त्र जैनवेदोंमें नहीं है। ये चार विवाह मात-पिताकी आज्ञा होनेके कारण धर्म्य अर्थात आर्यविवाह कहलाते हैं।

---

१ यज्ञादि क्रियाविशेष।

अव चार पाप विवाह कहते हैं—

" पित्राद्यप्रामाण्ये-ऽन्योन्यप्रीत्युद्यमश्च गान्धर्वः । पणबन्धेनाऽऽसुर इति, पाल्हादो हठकन्याग्रहणात् ॥ १ ॥
सुप्त-प्रमत्तकन्या-ग्रहणात् पैशाचिकः समाख्यातः । चत्वारोऽमी पापा, उपयामाः कीर्तितास्तज्ज्ञैः ॥ २ ॥ "

इति मातृ पितृ गुर्वनुज्ञारहितत्वात् चत्वारः पापविवाहाः । तथा च ब्राह्मा ऽऽर्ष देवता विवाहा दुःषमाकाले कलियुगे न प्रवर्तन्ते । पापविवाहाना चतुर्णां वेदोक्तो विधिरपि न, अधर्म्यत्वात् । यत उक्तम्—

" गोमेध-नरमेधाद्या, यज्ञाः पाणिग्रहत्रयम् । सुताश्च गोत्रज-गुरो-र्न भवन्ति कलौ युगे ॥ १ ॥" इति वचनात् ।

भाषा—पिता वगेराकी सम्मति वगर परस्पर प्रेमसें ओर अपनी खुशीसें, विना जाहिरात किये पुरुष और कन्या विवाह कर लेवे, अुसको 'गांधव' विवाह कहते हैं। पणबंधसें यानि शर्तसें कन्याको ग्रहण कर लेना। जैसे जूआ खेलते अैसी शर्त लगावे कि—" मैं हारुं तो अपनी कन्या दे दुंगा, तुम हारो तो तुम्हारी लडकी मैं ले लुंगा "। अिस प्रकार शर्तसें कन्याको ग्रहण करना अुसको 'आसुर' विवाह कहते हैं। बलात्कारसें कन्याको ग्रहण करना अुसको 'पाल्हाद' विवाह कहते हैं ॥ १ ॥ ओर सोती हुअी अथवा प्रमादमें रही हुअी कन्याको ग्रहण करें तो अुसको पैशाचिक' विवाह कहते हैं। विवाह विषयके जानकार विद्वान् पुरुषोंने अिन चारो विवाहको 'पाप विवाह' कहे हैं ॥ २ ॥" माता पिता ओर कुटुंबके वडे पुरुषोंकी सम्मति रहित होनेसे अिन चारों विवाहको विवाह विषयके जानकार पुरुषो 'पाप विवाह' कहते हैं।

तथा चार धर्म्य विवाहमें ब्राह्म, आर्ष ओर दैवत, ये तीन विवाह अिस दुःषमकालमें—कलियुगमें प्रवर्तते नहीं है। और चार पापविवाह अधर्म्य होनेसें अुनकी वेदोक्त विधि भी नहीं है। कहा है कि—

"गोमेध और नरमेधादि यज्ञ, ब्राह्म आर्ष और दैव ये तीनों प्रकारके विवाह, तथा गोत्रज और गुरुसे संतति, ये कलियुगमें नहीं होते हैं ॥ १ ॥" ऐसे वचनप्रमाणसे ब्राह्म वगेरा तीन प्रकारके धर्म्यविवाहकी प्रवृत्तिका निषेध कहा है।

संप्रति वर्तमानस्य प्राजापत्यविवाहस्य विधिरुच्यते। स यथा—

"मूला-ऽनुराधा-रोहिण्यो, मघा मृगशिर करः। रेवती त्र्युत्तराः स्वाती, धिष्ण्येष्वेषु करग्रहः ॥ १ ॥
वेधै-कार्गल-लत्ता-पापोपग्रहयुतेषु धिष्ण्येषु। न विवाहः कर्तव्यो, न युतौ वा क्रान्तिसाम्ये च ॥ २ ॥
न त्रिदिनस्पृशि नाऽवम-तिथौ च न क्रूर-दग्ध-रिक्तासु। नाऽमावास्या-ष्टमी-षष्ठि-कासु न द्वादशीदिव्येशे ॥ ३ ॥
भद्रायां गण्डान्ते, न चर्क्ष-तिथि-वार-दुष्टयोगेषु। न व्यतिपाते नो वै-धृतौ च नो निस्वनेलासु ॥ ४ ॥
रविक्षेत्रगते जीवे, जीवक्षेत्रगते रवौ। दीक्षा-विवाहप्रमुखान्, प्रतिष्ठां च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥
चतुर्मास्यामधिमासे, तथाऽस्ते गुरु-शुक्रयोः। मलमासे जन्ममासे, विवाहादि न कारयेत् ॥ ६ ॥
मासान्ते चैव संक्रान्तौ, तद्द्वितीये तथा दिने। ग्रहणादिदिने तस्मिन्, दिने सप्ताहके ततः ॥ ७ ॥
न जन्मतिथि-वार-र्क्ष-लग्नेष्वपि करग्रहः। राशिजन्मेश्वरे नाऽस्त-गते क्रूरहतेऽपि च ॥ ८ ॥
न जन्मराशौ नो जन्म-राशिलग्नान्त्यमाष्टमे। न लग्नांशाधिपे लग्ने, षष्ठा-ऽष्टमगते विधौ ॥ ९ ॥
लग्ने स्थिरे द्विस्वभावे, मनुगुणे वा नरेऽपि च। उदयास्तविशुद्धे च, नोत्पातादिविदूषिते ॥ १० ॥

लग्ने ग्रहविनिर्मुक्ते, सप्तमे च तथा विधौ । त्रि-षडे-कादशगते, रवौ भौमे शनावपि ॥ ११ ॥
राहौ च षट्त्रिके पाप-ग्रहमुक्ते च पञ्चमे । सुतलग्नाम्बुदशम-धर्मसंस्थे बृहस्पतौ ॥ १२ ॥
शुक्रे बुधे तथा सस्थे, मूर्तिनाथेऽप्यखण्डिते । मूर्तिषष्ठा-ऽष्टम त्यक्त्वा-ऽन्यत्र युक्ते निशाकरे ॥ १३ ॥
क्रूरदृष्टं क्रूरयुक्त, चन्द्र तत्र विवर्जयेत् । त्याज्यौ क्रूरान्तरस्थौ च, लग्न-पीयूषरोचिषौ ॥ १४ ॥
इत्यादिगुणसंयुक्ते, लग्ने दोषविवर्जिते । शुभेंऽशके शुभैर्दृष्टे, लग्न पाणिग्रहे शुभम् ॥ १५ ॥"
इत्यादि श्रीभद्रबाहु-वराह गर्ग-लल्ल-पृथुयशः-श्रीपतिविरचितविवाहशास्त्रावलोकनात् सम्यग् लग्न विलोक्य विवाहारम्भ ।

भाषा—साम्प्रत कालमें वर्तमान शास्त्रपरा विवाहकी विधि कहते हैं । सो अिस प्रकार—

" मूल, अनुराधा, रोहिणी, मघा, मृगशिर, हस्त, रेवती, तीनों उत्तरा और स्वाति, अिन नक्षत्रोंमें लग्न करना ॥१॥ वेध, अेकार्गल, लत्ता, और पाप उपग्रह सहित नक्षत्रोंमे विवाह नहीं करना । तथा युति, क्रान्ति और साम्यदोषमें भी नहीं करना ॥ २ ॥ तीन दिनको स्पर्शनेवाली तिथिमें, क्षय तिथिमे, क्रूर तिथिमें, दग्धा तिथिमे, रिक्ता तिथिमे, अमावास्या अष्टमी षष्ठी और द्वादशी, अिन तिथियोंमे भी विवाह नहीं करना ॥ ३ ॥ भद्रामे, गडान्तमें, दुष्ट नक्षत्र तिथि वार और योगमें, व्यतिपातमे, वैधृतिमे, और निन्द्य समयमे विवाह नहीं करना ॥ ४ ॥ सूर्यके क्षेत्रमें बृहस्पति होवे, अथवा बृहस्पतिके क्षेत्रमे सूर्य होवे, तो दीक्षा विवाह और प्रतिष्ठा वगैरे वजना ॥ ५ ॥ चौमासेमें, अधिक मासमे, गुरु या शुक्रके अस्त होने पर, मलमासमें और जन्ममासमें दीक्षा प्रतिष्ठा और विवाहादि न करावें ॥ ६ ॥ मासातमे,

संक्रान्तिमें, संक्रान्तिके दूसरे दिनमें, ग्रहणादि दिनमें, और ग्रहणके बादमें सात रोज तक विवाहादि कार्य न करें ॥ ७ ॥ जन्म तिथि, जन्म वार, जन्म नक्षत्र, जन्म लग्न, जन्म राशि, और जन्मके स्वामी अस्त होने पर तथा क्रूर ग्रहोंसे हत होने पर विवाहादि न करें ॥ ८ ॥ चन्द्रमा जन्मराशिमें होवे, जन्मराशि या जन्मलग्नसे बारहवें या आठवें स्थानमें होवे, और लग्नांशके अधिपके छट्ठे या आठवें स्थानमें होवे तब विवाहादि नहीं करना ॥ ९ ॥ स्थिर लग्नमें, या द्वि-स्वभाववाले लग्नमें, या सद्गुणसे संयुक्त चर लग्नमें; अुदयास्तके विशुद्ध होने पर विवाह करना। मगर अुत्पात वगेरासे दूषितमें नहीं करना ॥ १० ॥ लग्न और सातवां घर ग्रहसे युक्त होवे, अथवा सातवें घरमें चन्द्र होवे, तीसरे छट्ठे और ग्यारहवें घरमें रवि मंगल और शनि होवे, ॥ ११ ॥ छट्ठे और तीसरे घरमें तथा पापग्रह रहित पाँचवें घरमें राहु होवे, लग्नमें तथा पाँचवें चौथे दसवें और नौवें घरमें बृहस्पति होवे ॥ १२ ॥ अैसे ही शुक्र और बुध होवे; लग्न छट्ठे आठवें और बारहवें घरसे अन्यत्र चन्द्रमा होवे, वह चन्द्रमा भी पूर्ण होवे ॥ १३ ॥ जहाँ क्रूरसे दृष्ट और क्रूर सहित अैसे चन्द्रको छोड़ना, तथा क्रूर और अंतरस्थ अैसे लग्न और चन्द्रका त्याग करना ॥ १४ ॥ अित्यादि गुणोंसे सहित, शुभ अंशमें, शुभ ग्रहोंसे देखते हुअे अैसे दोष रहित लग्नमें पाणिग्रहण करना अच्छा है ॥ १५ ॥"

अित्यादि श्री भद्रबाहु स्वामी, वराह, गर्ग, लल्ल, पृथुयश और श्रीपतिने बनाये हुअे विवाहशास्त्रोंमेंसे अच्छे लग्नको देखकर विवाहकी शुरुआत करना।

अर्थात् २, ३, ५, ७, १०, ११, १३, या १५ तिथि हो, शुभ रोज विवाह-मुहूर्तका निश्चय करना। विवाह-लग्नकी उदयशुद्धि और अस्तशुद्धि भी देख लिया करो। लग्नका स्वामी और लग्नके नवांशका स्वामी नवांशको देखता हो, या नवांशसे युक्त हो अुसको अुदयशुद्धि कहते हैं। सप्तम नवांशका स्वामी सप्तम नवांशको देखता हो, या सप्तम नवांशमें

युक्त हो, अुसको अस्तशुद्धि बोलते हैं । विवाहलग्न दो पापग्रहोंके बीच होना ठीक नहीं । चन्द्रमा भी दो पापग्रहोंके बीच या पापग्रहसे दृष्ट होना अच्छा नहीं । लग्नमें शुभग्रहका नवांश हो, या अुसको शुभग्रह देखते हो, वैसे लग्न पर विवाह करना अच्छा है । लेकिन अितना याद रहें—सप्तम स्थानमें कोअी ग्रह न होना चाहिये, जिसमें बृहस्पतिका होना तो बिल्कुल अच्छा नहीं ।

" ततश्च कुल–देशादि—गुरुवाक्यैर्विशेषत' । अनुज्ञात विवाहादि, गर्गादिमुनिभिः पुरा ॥ १ ॥ "

" सूर्य. षट्-त्रि-दशस्थितस्त्रि दश षट् सप्ता-ऽऽद्यगश्चन्द्रमा, जीवः सप्त नव-द्वि-पञ्चमगतो वक्रा र्कजौ षट्-त्रिगौ ।

सौम्य षट्-द्वि चतु-र्दशा-ऽष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः, शुक्र सप्तम-षट्-दशा-ऽष्टमहितः शार्दूलवत् त्रासकृत् ॥ १ ॥

सुरगुरुबलमबलाना, पुरुषाणामहिमरश्मिबलमेव । चन्द्रबल दम्पत्यो–रवलम्ब्य विशोधयेल्लग्नम् ॥ २ ॥ "

भाषा—" अिस लिये पहलेके गर्गादि ऋषि–मुनियोंने विशेष प्रकारसे कुलाचार और देशाचार मुताबिक तथा गुरुके वचन अनुसार विवाहादि करनेकी अनुज्ञा दी है ॥ १ ॥ "

" छठ्ठे, तीसरे या दसवें स्थानमे स्थित सूर्य होवे, तीसरे दसवें छठ्ठे सातवें या पहले स्थानमे स्थित चन्द्रमा होवे, सातवें नौवें दूसरे या पाँचवें स्थानमे स्थित बृहस्पति होवे, छठ्ठे या तीसरे स्थानमे स्थित मगल और शनि होवे, तथा छठ्ठे, दूसरे, चौथे, दसवे या आठवें स्थानमे स्थित बुध होवे तो शुभ है । लाभ स्थानमे सभी ग्रह शुभ है । सातवें, छठ्ठे, दसवें या आठवें स्थानमें स्थित शुक्र व्याघ्रके समान त्रास करनेवाला होता है ॥ १ ॥ स्त्रियोंको बृहस्पतिका बल, पुरुषोंको सूर्यका बल, और स्त्री–पुरुष दोनोंको चन्द्रके बलका अवलबन करके लग्न देखना चाहिये–लग्नकी शुद्धि करनी चाहिये ॥ २ ॥ "

॥ १४७ ॥

कन्यादानको विधि–

तथा च पूर्वं कन्यादानविधिः—पूर्वोदित समानकुल–शीलेभ्योऽन्यगोत्रेभ्यः कन्यां याचयेत्। तद्दशाय वराय कन्या दातव्या। कन्याकुलज्येष्ठेन वरकुलज्येष्ठाय नालिकेर-क्रमुक-जिनोपवीत-व्रीहि-दूर्वा-हरिद्रादानेन स्वस्वदेश–कुलोचितेन कन्यादानं कार्यम्। तत्र गृह्यगुरुर्वेदमन्त्रं पठेत्। स यथा—

भाषा—प्रथम कन्यादान यानि वेविशाल–सगाओकी विधि कहते है—पूर्वोक्त समान कुल और समान शीलवाले दूसरे गोत्रीसे कन्या माँगनी चाहिये, और पहले कहे हुअे गुणवाले वरको कन्या देनी चाहिये। वेविशाल–सगाओ करते वख्त कन्याके कुलके जो बड़े पुरुष हो वह वरके कुलके बड़े पुरुषको अपने अपने देश और कुलके आचार अनुसार नारियल, सुपारी, जिनोपवीत, चावल, दूर्वा–दूम और हलदीका दानपूर्वक कन्यादान करें। अुस वख्त गृहस्थगुरु वेदमन्त्र पढें। सो अिस प्रकार–

सगाओ करते वख्त पढ़नेका मन्त्र—

" ॐ अर्हं। परमसौभाग्याय परमसुखाय परमभोगाय परमधर्माय परमयशसे परमसन्तानाय भोगोपभोगान्त-रायव्यवच्छेदाय, इमाम् अमुकनाम्नीं कन्याम् अमुकगोत्राम्, अमुकनाम्ने वराय अमुकगोत्राय ददाति। प्रतिगृहाण। अर्हं ॐ ॥ "

वर–कन्याकी सगाओ करते वख्त, गृहस्थगुरु अुपर लिखे हुअे वेदमन्त्रको पढ़ें।

ततः सर्वेभ्यो लोकेभ्यः कन्यापक्षीयास्ताम्बूल ददति। तथा च दूरस्थे विवाहकाले वरपितर्यमृते नाऽन्यस्मै सा कन्या देया। उक्त च—

" सकृज्जल्पन्ति राजान., सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः। सकृत् प्रदीयते कन्या, त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥ १ ॥ "

तथा वरोऽपि तस्यै कन्यायै वस्त्रा-ऽऽभरण गन्ध-प्रसाधनादि सोत्सव तत्पितृगृहे दद्यात्। कन्यापित्राऽपि वराय सपरिजनाय भोजनं समहोत्सव वस्त्रा-ऽङ्गुलीयादि च देयम्।

भाषा—सगाओी होनेके बाद वहाँ आये हुओ सब लोगोंको कन्याके पक्षवाले तांबूल देवें। अगर विवाह-लग्नका समय दूर होवे तो भी वरके पिता जीते होने पर अुस वरके सिवाय दूसरे किसीको वह कन्या नहीं देनी चाहिये। कहा है कि- " राजा लोग अेक दफे बोलते हैं, पडितजन अेक दफे बोलते हैं, और कन्या अेक दफे दी जाती है। ये तीनों वस्तु अेक-अेक ही दफे होती है ॥ १ ॥ " वैसे ही वर भी अुस कन्याको वस्त्र, आभरण, सुगंधी पदार्थों तथा सिंगारके योग्य और भी वस्तुयें अुत्सवके साथ अुसके पिताके घर देवें। कन्याका पिता भी परिवार सहित वरको निमन्त्रण करके महोत्सवके साथ भोजन करावें, और अुसको वस्त्र अँगुठी वगेरा देवें।

विवाहके प्रारंभकी विधि—

तथा च लग्नदिनात् प्राग् मासे वा पक्षे वा वैभवानुसारेण उभयो पक्षयो परिजन सघट्य सांवत्सरम् उत्तमासने निवेश्य तत्करण विवाहलग्नं शुभभूमौ लेखयेत्। रूप्य-स्वर्णमुद्रा-फल-पुष्प-दूर्वाभिर्जन्मलग्नवद् विवाहलग्न-

मर्चयेत्। ततो ज्योतिषिकाय उभयपक्षवृद्धैर्वस्त्रा-ऽलङ्कार-ताम्बूलदानं देयम्। इति विवाहारम्भः।

भाषा—अुसी प्रकार लग्न दिनसे आगेके मासमें या पखवारेमें अनुकूल समयानुसार दोनों पक्षके स्वजनोंको अिकट्ठे करके ज्योतिषीको बुलवाकर अुसको पवित्र भूमिमें अुत्तम आसन पर बैठाकर अुसके हाथसे विवाहलग्न लिखावें। पीछे जन्मलग्नकी तरह अुस विवाह-लग्नको चाँदी तथा सोनेकी मुद्रा, फल, पुष्प और दूर्वासे पूजे। अुसके बाद दोनों पक्षके बड़े पुरुषों ज्योतिषीको वस्त्र अलंकार और तांबूलका दान देवें। अिस प्रकार विवाहारम्भविधि जानना।

ज्योतिषसे स्वरोदय ज्ञान बढ़कर है, अिस लिये साधारण दिनशुद्धि देखकर चंद्रस्वर चलते वक्त विवाह-मुहूर्त कराया जाय तो निहायत अुमदी बात है। अगर मर्द और औरत दोनोंका चन्द्रस्वर चलता हो फिर तो क्या ही पूछना ?। बरात चढ़ते वक्त, तोरण छूते वक्त और हस्तमेलापके वक्त अगर चन्द्रस्वर मर्द और औरतका चलता हो, फिर तो निहायत अुमदी बात है,। अगर सवाल किया जाय कि सारी रात चन्द्रस्वर न चले तो क्या करना ?। अुसका जवाब है कि, स्वरका बदलना घंटे-घंटेभरमें हुवा करता है, सारी रात चन्द्रस्वर न चले यह बन नहीं सकता। यूं करते भी अगर न चला तो बेहत्तर है कि, अुस रोज विवाहका मुहूर्त न करना, दूसरे रोज करना। अगर सवाल किया जाय कि, अैसी देखा-देखी करके खाली वहेममें पड़नेमें क्या फायदा ?। अुसका जवाब है कि, जिसकी मरजी न हो वह मत देखो। शास्त्रकारोंका फरमान हमेशां फायदेमंद होता है। मगर जिनके कर्ममें फायदा ही न हो, अुनके लिये लाअिलाज है। ज्ञानियोंका फरमाना अुनको हर्गिझ पसंद न होगा, अिससे वे तकलीफ भी अुठाते हैं। मुनासिब है कि ज्ञानियोंके फरमाने पर अमल करना।

ततः कोरशरावेषु यववापनम्। ततः कन्यागृहे मातृस्थापनं षष्ठ्याः स्थापनं षष्ठ्यादिमक्रमोक्तप्रकारेण। वरगृहे जिनसमयानुसारेण मातृ-कुलकरस्थापनम्। परसमये गणपति-कन्दर्पस्थापनम्। गणपति-कन्दर्पस्थापनं सुगमं लोकप्रसिद्धम्।

भापा—अुसके बाद कोरे-नये शराव-सकोरमे जवधान्य-जवारा बोना। पीछे कन्याके घरमे मातृस्थापना और पष्ठी-स्थापना आगे पष्ठीपूजन-सस्कारमे कही हुअी विधिके अनुसार करना। श्री जिनेश्वर भगवतके मतके अनुसार वरके घरमें मातृस्थापना और कुलकरस्थापना करना। परमतमे गणपति-कामदेवकी स्थापना करते हैं, वह सुगम और लोगोमे प्रसिद्ध है।

सात कुलकरोकी स्थापना और उनके पूजनकी विधि–

कुलकरस्थापनविधिरुच्यते—गृह्यगुरुर्भूमिपतितगोमयलिप्तभूमौ स्वर्णमयं रूप्यमयं ताम्रमय श्रीपर्णकाष्ठमयं वा पट्टकं स्थापयेत्। पट्टस्थापनमन्त्र.—

अब कुलकरोकी स्थापनाविधि कहते है-गृहस्थगुरु जमीन पर पडे हुअे गोबरसे लीपी हुअी भूमिमे सोनेका या चाँदीका या तावेका या सीसलकाष्ठका पट्टाको स्थापन करें। अुस पट्टेको स्थापन करते वरत निम्न लिखित मन्त्र जपें—

“ ॐ आधाराय नम । आधारशक्तये नम । आसनाय नम ॥ ”

अिस प्रकार पट्टेको स्थापन करते वख्त गृहस्थगुरु मन्त्र जपें।

अनेन मन्त्रेण एकवार परिजप्य पट्ट स्थापयेत्। त पट्टम् अमृतामन्त्रेण तीर्थजलैरभिपिञ्चेत्। ततश्चन्दना-ऽक्षत-दूर्वाभि पट्टं पूजयेत्। तत आदौ—

भापा—अिस मन्त्रसे अेक दफे जप कर पट्टेको स्थापन करें। अुस पट्टेको अमृतामन्त्र पढ़ता हुआ तीर्थजलोसे अभिपिंचन

॥ १५१ ॥

करें। पीछे पट्टेको चंदन चावल और दूर्वासे पूजें। अुसके बाद प्रथम स्थानमें निम्न लिखित मन्त्र पढ़कर प्रथम कुलकरकी स्थापना करें। सो अिस प्रकार—

"ॐ नमः प्रथमकुलकराय, काञ्चनवर्णाय, श्यामवर्णचन्द्रयशःप्रियतमासहिताय, हाकारमात्रोच्चारख्यापितन्यायपथाय विमलवाहनाऽभिधानाय। इह विवाहमहोत्सवादौ आगच्छ आगच्छ, इह स्थाने तिष्ठ तिष्ठ, सन्निहितो भव भव, क्षेमदो भव भव, उत्सवदो भव भव, आनन्ददो भव भव, भोगदो भव भव, कीर्तिदो भव भव, अपत्यसन्तानदो भव भव, स्नेहदो भव भव, राज्यदो भव भव। इदमर्घ्यं पाद्यं बलिं चरुम् आचमनीयं गृहाण गृहाण, सर्वोपचारान् गृहाण गृहाण॥" ततः—

अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढें। अुसके बाद निम्न लिखित दूसरा मन्त्र पढे।

"ॐ गन्धं नमः, ॐ पुष्पं नमः, ॐ धूपं नमः, ॐ दीपं नमः, ॐ उपवीतं नमः, ॐ भूषणं नमः, ॐ नैवेद्यं नमः, ॐ ताम्बूलं नमः॥"

अिस प्रकार अुपर लिखा हुआ दूसरा मन्त्र पढें।

पूर्वेण मन्त्रेण आहूय संस्थाप्य संनिहितं कृत्वा अर्घ्य-पाद्य-बलि-चर्वा-चमनीयदानं दद्यात्। अपरेण ॐकारादिभिर्मन्त्रैर्गन्धतिलकद्वयं पुष्पद्वयं धूपद्वयं दीपद्वयम् उपवीतमेकं स्वर्णमुद्राद्वयं नैवेद्यद्वयं ताम्बूलद्वयं दद्यात्॥ (॥ १ ॥)

ततो द्वितीयस्थाने—

भाषा—पहले मन्त्रसे आह्वान करके, स्थापना करके और सन्निहित करके अर्घ्य, पाद्य, बलि, चरु, और आचमनीयका दान देवें । तथा दूसरे "ॐ गन्ध नम" अित्यादि मन्त्रोंसे गधके दो तिलक, दो पुष्प, दो धूप, दो दीपक, अेक अुपवीत, दो सोनेकी मुद्रा, दो नैवेद्य, और दो ताम्बूल देवें—चढ़ावें ॥ (॥ १ ॥)

उसके बाद द्वितीय स्थानमें निम्न लिखित मन्त्र पढ़ें—

"ॐ नमो द्वितीयकुलकराय श्यामवर्णाय, श्यामवर्णचन्द्रकान्ताप्रियतमासहिताय हाकारमात्रख्यापितन्यायपथाय चक्षुष्मदभिधानाय०" शेषं पूर्ववत् ॥ (॥ २ ॥)

अिस प्रकार दूसरे कुलकरके आह्वान स्थापना और पूजन करते वक्त अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढ़ें । अिसमे शेष मन्त्र वगैरा पूर्वकी तरह समझना ॥ (॥ २ ॥)

"ॐ नमस्तृतीयकुलकराय श्यामवर्णाय, श्यामवर्णसुरूपाप्रियतमासहिताय, माकारमात्रख्यापितन्यायपथाय यशस्व्यभिधानाय०" शेष पूर्ववत् ॥ (॥ ३ ॥)

अिस प्रकार तीसरे कुलकरके आह्वान स्थापना और पूजन करते वक्त अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढ़ें । अिसमे शेष मन्त्र वगैरा पूर्वकी तरह समझना (॥ ३ ॥)

"ॐ नमश्चतुर्थकुलकराय श्वेतवर्णाय, श्यामवर्णप्रतिरूपाप्रियतमासहिताय, माकारमात्रख्यापितन्यायपथाय अभिचन्द्राभिधानाय०" शेषं पूर्ववत् ॥ (॥ ४ ॥)

अिस प्रकार चौथे कुलकरके आह्वान स्थापना और पूजन करते वख्त अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढ़ें। अिसमें शेप मन्त्र वगैरा पूर्वकी तरह समझना ॥ (॥ ४ ॥)

“ ॐ नमः पञ्चमकुलकराय श्यामवर्णाय, श्यामवर्णचक्षुष्कान्ताप्रियतमासहिताय, धिक्कारमात्रख्यापितन्यायपथाय प्रसेनजिदभिधानाय० ” शेषं पूर्ववत् ॥ (॥ ५ ॥)

अिस प्रकार पाँचवें कुलकरके आह्वान स्थापना और पूजन करते वख्त अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढ़े। अिसमें शेप मन्त्र वगैरा पूर्वकी तरह समझना ॥ (॥ ५ ॥)

“ ॐ नमः षष्ठकुलकराय स्वर्णवर्णाय, श्यामवर्णश्रीकान्ताप्रियतमासहिताय, धिक्कारमात्रख्यापितन्यायपथाय मरुदेवाभिधानाय० ” शेषं पूर्ववत् ॥ (॥ ६ ॥)

अिस प्रकार छठ्ठे कुलकरके आह्वान स्थापना और पूजन करते वख्त अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढ़ें। अिसमें शेप मन्त्र वगैरा पूर्वकी तरह समझना ॥ (॥ ६ ॥)

“ ॐ नमः सप्तमकुलकराय काञ्चनवर्णाय, श्यामवर्णमरुदेवाप्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्यायपथाय नाभ्यभिधानाय० ” शेषं पूर्ववत् ॥ (॥ ७ ॥) इति कुलकरस्थापना-पूजनविधिः ॥

अिस प्रकार सातवें कुलकरके आह्वान स्थापना और पूजन करते वख्त अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढ़ें। अिसमें शेप मन्त्र वगैरा पूर्वकी तरह समझना ॥ (॥ ७ ॥)

॥ इस प्रकार कुलकरको स्थापना और पूजनकी विधि पूर्ण हुअी ॥

इयं कुलकरस्थापना परसमये गणेश-मदनस्थापना च विवाहानन्तरमपि सप्ताऽहोरात्रपर्यन्तं रक्षणीया। ततः शान्तिकं पौष्टिकं च वरगृहे कुर्यात्, कन्यागृहे मातृपूजा पूर्ववत्।

भाषा—अिस कुलकरकी स्थापनाको और परसमयमे गणेश-मदनकी स्थापनाको विवाहके पीछे भी सात दिन-रात पर्यंत रखनी चाहिये। पीछे वरके घरमे शान्तिक-पौष्टिक क्रिया करें, और कन्याके घरमे पूर्वकी तरह मातृपूजा करें।

ततः सप्तसु नवसु एकादशसु त्रयोदशसु वा विवाहकालात् पूर्वदिवसेषु वधू-वरयोः स्वस्वगृहे मङ्गलगीत-वादित्रवादनपूर्वं तैलाभिषेकं स्नानं च, विवाहपर्यन्तं नित्यं तथैव वधू-वरयोः स्नानम्। प्रथमतैलाभिषेकदिने वरगृहात् कन्यागृहे तैल-शिरःप्रसाधन-गन्धवस्तु द्राक्षादिखाद्य शुष्कफलप्रेषणम्। सर्वैर्नागरवधूजनैर्वरगृहे कन्यागृहे च तैल-धान्यादिढौकनं विधेयम्। वधू-वरगृहसत्कवृद्धनारीभिस्ताभ्यो धान्य-तैलढौकनीभ्यो नारीभ्यः अपूपादि पक्वान्नं देयम्। तत्र धारणाप्रभृति देशाचार-कुलाचारैर्विधेयम्। तैलाभिषेक-कुलकरगणेशादिस्थापनं कङ्कणबन्धनम् अन्यविवाहोपचारादि च सर्वं वधू-वरयोश्चन्द्रबले वैवाहिके नक्षत्रे च विधेयम्। तथा धूलिभक्त-क्षीरभक्त-सौभाग्यजलानयनप्रभृति मङ्गलकर्म मङ्गलगीत-वाद्यसहितं देशाचार-कुलाचारविशेषाद् विधेयम्।

भाषा—तदनतर विवाहकालसें आगेके सात नौ ग्यारह या तेरह दिनोंमे वधू-वरको अपने अपने घरमे मंगलगीत और वाजित्रोंके साथ तैलाभिषेक तथा स्नान कराना। अिसी प्रकार विवाह पर्यंत हमेशा वधू और वरको स्नान कराना। तैलाभिषेकके प्रथम दिनमें वरके घरसें कन्याके घरमे तेल, सिरके सिंगारकी वस्तुये, सुगंधी द्रव्य, दराख वगैरा मेवा, और

खाने लायक शुष्क फल भेजना। शहरकी औरतें वरके घर पर और कन्याके घर पर तेल तथा धान्य वगैरा ले जावें। कन्या और वरके घरकी वृद्ध स्त्रियाँ अुन तेल और धान्यादि लानेवाली औरतोंको पूड़े आदि पक्वान्न देवें। वहाँ धारणादि देशाचार और कुलाचार अनुसार करना। तैलाभिषेक, कुलकर तथा गणेशादिकी स्थापना, कंकणबंधन, और विवाह संबंधीं अन्य सब विधि-विधानादि वर-कन्याके चन्द्रबल होने पर विवाहवाले नक्षत्रमें करना चाहिये। तथा धूलिभक्त, कौरभक्त, सौभाग्य जलका लाना, वगैरा मांगलिक कार्य मंगलगीत और वाजित्र सहित अपने अपने देशाचार और कुलाचार अनुसार करना।

बरात जोड़ना—

ततो यदि वरोऽन्यत्र ग्रामान्तरे नगरान्तरे देशान्तरे वा भवति तदा तस्य यज्ञयात्रा कन्यानिवासस्थानं प्रति विधीयते। तस्याऽयं विधिः—एकस्मिन् प्रथमेऽहनि मातृपूजापूर्वं सर्वेषां जनानां भोजनं देयम्। ततो द्वितीयेऽह्नि वरः सुस्नातश्चन्दनानुलिप्तः सर्ववस्त्र-गन्ध-माल्यसंस्कृतः किरीटभूपितशिरा अश्वाधिरूढो गजाधिरूढो नरयानाधिरूढो वा चलति। तत्समीपे जनाः सुवसनाः सप्रमोदाः सताम्बूलवदनाः संबन्धि-ज्ञातिजनाः स्वस्वसंपत्त्या तुरगाद्यधिरूढाः पदातयो वा वरेण सार्धं चलन्ति। पार्श्वयोरुभयोर्मङ्गलगानप्रसक्ताश्चलन्ति ज्ञातिनार्यः। पुरतोऽस्य ब्राह्मणा ग्रहशान्तिमन्त्रं पठन्तश्चलन्ति। स यथा—

भाषा—तदनंतर वर अगर दूसरे गाँवमें, दूसरे शहरमें या दूसरे देशमें होवे तो कन्याके निवासस्थान तरफ अुसकी बरात-जान जोड़नी चाहिये। अुसकी विधि अिस प्रकार है—बरातके अगले अेक दिन मातृपूजापूर्वक सब लोगोंको भोजन देना।

अुसके बाद दूसरे दिन वर अच्छी तरह स्नान करके, चदनका विलेपन करके, सुदर वस्त्र, सुगधी पदार्थों, और पुष्पमालादिसें अलकृत होकर, मुकुट–पगडीसें मस्तकको विभूषित करके, घोडे पर हाथी पर या पालखीमे बैठके चलें। अुसके समीप अच्छे अच्छे वस्त्र पहने हुअे, आनद–प्रमोद सहित, और पान–बीड़े चावे हुअे अैसे सगे–सबधी और ज्ञातिजन अपनी अपनी सपत्ति अनुसार घोड़े वगैरह पर चडे हुअे या पैरोंसें चलते हुअे वरके साथ चले। दोनो तरफ मगलगानमें तत्पर अैसी ज्ञातिकी औरतें चलें, और आगे जैन ब्राह्मणलोग ग्रहशान्तिका मन्त्र पढ़ते हुअे चलें। सो अिस प्रकार—

"ॐ अर्हं। आदिमो अर्हन्, आदिमो नृपः, आदिमो यन्ता आदिमो नियन्ता आदिमो गुरुः, आदिमः स्रष्टा, आदिम कर्ता, आदिमो भर्ता, आदिमो जयी, आदिमो नयी, आदिम' शिल्पी, आदिमो विद्वान्, आदिमो जल्पकः, आदिमः शास्ता, आदिमो रौद्रः, आदिमः सौम्य, आदिम. काम्य', आदिम शरण्यः, आदिमो दाता, आदिमो वन्द्य', आदिमः स्तुत्य, आदिमो ज्ञेयः, आदिमो ध्येय', आदिमो भोक्ता, आदिम' सोढा, आदिम एकः, आदिमोऽनेक., आदिमः स्थूलः, आदिमः कर्मवान्, आदिमोऽकर्मा आदिमो धर्मवित्, आदिमोऽनुष्ठेयः, आदिमोऽनुष्ठाता, आदिमः सहज., आदिमो दशावान्, आदिम. सकलत्र., आदिमो निष्कलत्र, आदिमो विवोढा, आदिम' ख्यापक, आदिमो ज्ञापकः, आदिमो विदुर', आदिम' कुशल,, आदिमो वैज्ञानिक', आदिम सेव्यः, आदिमो गम्य, आदिमो विमृश्यः, आदिमो विमृष्टा। सुरा-ऽसुर-नरो-रगप्रणतः प्राप्तविमलकेवलो यो गीयते यत्यवतंसः, सकलप्राणिगणहितो, दयालुरपरापेक्षः, परात्मा, पर ज्योतिः, परं ब्रह्म, परमैश्वर्यभाक्, परपर, परापरोऽपरपरः, जगदुत्तम', सर्वग, सर्ववित्, सर्वजित्, सर्वीयः, सर्वप्रशस्य', सर्ववन्द्यः, सर्वपूज्यः, सर्वात्मा, असंसार., अव्ययः,

अवार्यवीर्यः, श्रीसंश्रयः, श्रेयःसंश्रयः, विश्वावश्यायहृत्, संशयहृत्, विश्वसारो, निरञ्जनो, निर्ममो, निष्कलङ्को, निष्पाप्मा, निष्पुण्यः, निर्मनाः, निर्वचाः, निर्देहो, निःसंशयो, निराधारो, निरवधिः, प्रमाणं, प्रमेयं, प्रमाता, जीवा-ऽजीवा-ऽऽश्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षप्रकाशकः । स एव भगवान् शान्तिं करोतु, तुष्टिं करोतु, पुष्टिं करोतु, ऋद्धिं करोतु, वृद्धिं करोतु, सुखं करोतु, श्रियं करोतु, लक्ष्मीं करोतु । अर्हं ॐ ॥ ”

इति आर्यवेदपाठिनो ब्राह्मणाः पुरतो गच्छन्ति ।

भाषा—अिस प्रकार आर्यवेदके मन्त्रको पढ़ते हुअे ब्राह्मणलोग आगे चलें ।

ततश्च अनेनैव विधिना महोत्सवेन च चैत्यपरिपाटीं गुरुवन्दनं मण्डलीपूजनं पुरदेवतादिपूजनं च विधाय पुरोपान्ते तिष्ठेत् । ततः पथि गच्छेत् । तथा अनयैव रीत्या कन्याऽधिष्ठितपुरप्रवेशोऽपि विधेयः । तत्रैव पुरे विवाहाय चलतो वरस्याऽप्ययमेव विधिः । तथा नित्यस्नानानन्तरं वधू-वरयोः कौसुम्भसूत्रेण शरीरमानम् ।

भाषा—तदनंतर अिसी विधि और महोत्सवसें चैत्यपरिपाटी, गुरुवन्दन, मंडलीपूजा और नगरदेवतादिका पूजन करके नगरके समीप रहें। अुसके बाद मार्गमें चलें, और जिस नगरमें कन्या रहती हो अुस नगरमें प्रवेश करें। अुस नगरमें भी विवाहके लिये चलते हुअे वरका यही विधि-विधान जानना। तथा नित्यस्नानके बाद कौसुंभसूत्रसे वर-कन्याके शरीरका माप करना ।

ततः समागते विवाहदिने विवाहलग्नादर्वाक् तत्पुरवासी वा अन्यदेशागतो वा वरः तेनैव पूर्वोक्तेन विधिना पाणिग्रहणाय चलेत् । तद्भगिन्यो विशेषेण लवणाद्युत्तारणं कुर्वन्ति । ततो वरस्याऽऽडम्बरो गृह्यगुरुसहितो रथ्यागृहद्वारि

गच्छेत्। तत्र तिष्ठतस्तस्य श्वश्रूजनः कर्पूरदीपादिभि आरात्रिकं कुर्यात्। ततोऽन्या शरावसपुटं ज्वलदङ्गार-लवणगर्भं त्रडत्रडिति शब्दायमानं वरस्य निरुञ्छनं विधाय वरप्रवेशवाममार्गे स्थापयेत्। ततोऽन्या मन्थानं कौसुम्भवस्त्रालकृत समानीय त्रिवेल तेन वरललाट स्पृशेत्। ततो वरो वाहनादुत्तीर्य वामपादेन तदग्नि-लवणगर्भं शरावसपुटं खण्डयेत्।

भाषा—अुसके वाद विवाहका दिन आने पर, विवाह-लग्नसें पहले, अुस नगरका रहनेवाला या दूरदेशसें आया हुआ वर पेस्तर कही हुअी अुसी विधिसें पाणिग्रहणके लिये चलें। अुस वरकी वहिनें विशेष प्रकारसें लूण आदि अुतारें। अुसके वाद गृहस्थगुरु सहित वरकी वरात मुहल्लेमे रहे हुअे कन्याके घरके दरवाजे तक आवें। वहाँ खड़े हुअे वरको अुसके सासू न कपूरादिके दीपकसें आरती करें। अुसके वाद दूसरी स्त्री जलते हुअे अँगारे तथा नमकसें युक्त और 'त्रड़ त्रड़' अैसे अवाज करते हुअे शरावसपुटसें वरको निरछन करके, अुस शरावसपुटको घरके प्रवेशमार्गमे वाँयी तरफ रक्खें। पीछे दूसरी औरत कौसुभ-वस्त्रसे अलकृत अैसे मन्थनदड-मथानको लाकर, अुस मन्थनदडसें वरके ललाटको तीन दफे स्पर्श करें-लगावें। अुसके वाद वर वाहनसें नीचे अुतरके अुस अग्नि ओर नमकवाले सपुटको अपने वाँये पैरसें तोड़ें।

ततो वरश्वश्रू' कन्यामातुलपत्नी वा कन्यामातुलो वा कौसुम्भवस्त्र वरकण्ठे निक्षिप्य आकृष्यमाणं मातृगृहं नयेत्। तत्र पूर्वमासने निविष्टाया विभूषिताया. कृतकौतुकमङ्गलाया कन्याया वामपार्श्वे मातृदेव्यभिमुख वर निवेशयेत्। ततो गृह्यगुरुर्लग्नवेलायां शुभांशके चन्दनद्रवसपिष्टशमीत्वक्-पिप्पलत्वगुमिश्रितविलिप्तौ वधू-वरयोर्दक्षिणहस्तौ योजयेत्। उपरि कौसुम्भसूत्रेण वध्नीयात्। हस्तवन्धनमन्त्र.—

भाषा—अुसके वाद वरकी सास-सासू, या कन्याकी मामी, या कन्याका मामा वरके कंठमे कौसुभ वस्त्रको डालके अुससे खिंचाते हुअे वरको मातृघरमे-मायरेमें ले जावें। वहाँ आभूषणादिसें विभूषित और क्रिया है कौतुक-मगल जिसने अैसी

पहलेसे आसनके अुपर बैठी हुअी कन्याकी बाँयी तरफ और मातृदेवीके सामने वरको बैठावें। अुसके बाद गृहस्थगुरु पीसी हुअी शमी यानि खीजड़ी-छोंकरपेड़की छाल और पीसी हुअी पींपलकी छालसें मिश्रित चंदनरसके लेपसे जिनके हाथ विले-पन किये हैं अैसे वर-कन्याके दाहिने हाथको लग्न वेलामें और शुभ अंशमें जोड़ देवें-हस्तमेलाप करावें। पीछे अुन दोनों हाथको अुपरसें कौसुंभसूत्रसें बाँधें। अुस वख्त निम्न लिखित हस्तग्रन्थन मन्त्र पढ़ें—

हस्तमेलापका मन्त्र—

" ॐ अर्हं। आत्माऽसि, जीवोऽसि, समकालोऽसि, समचित्तोऽसि, समकर्माऽसि, समाश्रयोऽसि, समदेहोऽसि, समक्रियोऽसि, समस्नेहोऽसि, समचेष्टितोऽसि, समाभिलाषोऽसि, समेच्छोऽसि, समप्रमोदोऽसि. समविषादोऽसि, समाऽवस्थोऽसि, समनिमित्तोऽसि, समवचा असि, समक्षुत्तृष्णोऽसि, समगमोऽसि, समागमोऽसि, समविहारोऽसि, समविषयोऽसि, समशब्दोऽसि, समरूपोऽसि, समरसोऽसि, समगन्धोऽसि, समस्पर्शोऽसि, समेन्द्रियोऽसि. समाश्रवोऽसि, समबन्धोऽसि, समसंवरोऽसि, समनिर्जरोऽसि, सममोक्षोऽसि। तद् एहि एकत्वमिदानीम्। अर्हं ॐ ॥ "

॥ इति हस्तबन्धनमन्त्रः ॥

भापा—अिस प्रकार गृहस्थगुरु हस्तबन्धनमन्त्रको पढ़े।

अत्र समयान्तरे देशान्तरे कुलान्तरे च लग्नसाधनवेलायां मधुपर्कप्राशनं, वराय गोयुग्मदानम्, कन्याया आभरणपरिधापनम् इत्यादि कुर्वन्ति।

भाषा—अिस हस्तबंधनकी विधिमे लग्न साधनमें वस्त्र वेदान्त वगैरह दूसर मतमे, दूसरे कोअी कोअी देशमे, और दूसरे कोअी कोअी कुलमे, मधुपर्कका-दही और घीके साथ मिलाये हुअे शहदका भक्षण, दो गैयेका दान, और कन्याको आभूषण पहिनाना, इत्यादि करते हैं।

ततो वधू-वरयो मातृगृहोपविष्टयो. सतो. कन्यापक्षीया वेदिरचना कुर्वन्ति। तस्या विधिरयम्—कैश्चित् काष्ठ-स्तम्भै. काष्ठाच्छादनै. मण्डपान्तश्चतुष्कोणा वेदी क्रियते। कैश्चिच्च यथोपरि लघु-लघुभिश्चतुष्कोणनिहितैरुपर्युपरिधृतैः स्वर्ण-रूप्य-ताम्र-मृत्कलशै. सप्तसप्तसख्यै चतुष्पार्श्वेचतुश्चतुरार्द्रवंशबद्धैर्वेदी क्रियते। चतुर्ष्वपि द्वारेषु वस्त्रमयाणि काष्ठमयानि वा तोरणानि वन्दनमालिकाश्च। अन्तस्त्रिकोणमग्निकुण्डम्। ततो गृह्यगुरु पूर्वोक्तवेषधारी वेदीप्रतिष्ठा कुर्यात्। तस्याश्चाऽय विधिः— वास पुष्पा ऽक्षतपरिपूर्णहस्तः—

भाषा—तदनतर वर और कन्या मातृघरमे-मायरेमे वैठे रहें, और कन्यापक्षवाले वेदीकी-चौअुरीकी रचना करें। अिसकी विधि यह है-कितनेक लोग मडपके बीचमे काष्ठके स्तभसें और काष्ठके आच्छादनद्वारा चो-कोनी वेदी करते हैं। और कितनेक लोग चारों कोनेमे सोना चाँदी तावा या मिट्टीके सात सात कलशोंके, अुपर अुपर छोटे छोटे अर्थात् पहिला वडा, अुसके अुपर छोटा, फिर अुसके अुपर छोटा, अिस तरह सात-सात कलशों स्थापन करके, अुनको चार-चार हरे वाँससें बाँधके वेदी-चौअुरी करते हैं। चारों दरवाजोंके अुपरके भागमे वस्त्रमय या काष्ठमय तोरण और वदनमालिका बाँधते हैं। अदर तीन कोनेवाला-त्रिकोण आकारका अग्निका कुड करें। अिस प्रकार वेदी बनानेके बाद पूर्वोक्त वेषको धारन किया हुआ गृहस्थगुरु अुस वेदीकी प्रतिष्ठा करें। वेदी-प्रतिष्ठाकी विधि अिस प्रकार है-

वासक्षेप, पुष्पों और चावल हाथमे रखकर गृहस्थगुरु निम्न लिखित मन्त्र पढें-

वेदी–प्रतिष्ठाका मन्त्र—

"ॐ नमः क्षेत्रदेवतायै शिवायै, क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षौँ क्षः। इह विवाहमण्डपे आगच्छ आगच्छ। इह बलिपरिभोग्यं गृह्ण गृह्ण। भोगं देहि, सुखं देहि, यशो देहि, सन्ततिं देहि, ऋद्धिं देहि, वृद्धिं देहि, बुद्धिं देहि, सर्वं समीहितं देहि देहि स्वाहा ॥"

भाषा—वेदीकी प्रतिष्ठा करते वक्त गृहस्थगुरु अुपर लिखे हुअे मन्त्रको पढ़ें।

इति पठित्वा चतुर्ष्वपि कोणेषु प्रत्येकं वास–माल्या-ऽक्षतक्षेपः। तोरणस्य प्रतिष्ठा चैवम्। तन्मन्त्रो यथा—

भाषा—अिस प्रकार मन्त्रको पढ़के चारों कोनेमें वास, पुष्पों और चावल डालें। तोरणकी प्रतिष्ठा भी अैसे ही करना। अुसकी प्रतिष्ठा करते वक्त निम्न लिखित मन्त्र पढ़ें—

तोरण–प्रतिष्ठाका मंत्र—

"ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो द्वारश्रियै, सर्वपूजिते सर्वमानिने सर्वप्रधाने! इह तोरणस्था सर्वं समीहितं देहि देहि स्वाहा ॥" इति तोरणप्रतिष्ठा।

भाषा—गृहस्थगुरु अुपर लिखा हुआ मन्त्र पढ़कर तोरणकी प्रतिष्ठा करें। अिस प्रकार तोरणकी प्रतिष्ठाविधि कही।

ततोऽग्निकुण्डे वेदिमध्याऽऽग्नेयकोणेऽग्निं न्यसेद् मन्त्रपूर्वम्। अग्निन्यासमन्त्रो यथा—

भाषा—अुसके बाद वेदीके मध्यभागमे बनाये हुअे अग्निकुडके अग्निकोनेमें मन्त्रपूर्वक अग्निको स्थापन करें।

अग्नि–स्थापनमन्त्र यह है—

अग्नि–स्थापनका मन्त्र—

" ॐ रं रां रीं रू रौं रः। नमोऽग्नये, नमो बृहद्भानवे, नमोऽनन्ततेजसे, नमोऽनन्तवीर्याय, नमोऽनन्तगुणाय, नमो हिरण्यरेतसे, नमश्छागवाहनाय, नमो हव्याशनाय। अत्र कुण्डे आगच्छ आगच्छ, अवतर अवतर, तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा ॥ "

भाषा—गृहस्थगुरु अुपर लिखा हुआ मन्त्रको पढ़कर अग्निकुडमें अग्निको स्थापन करें।

ततो वधू-वरौ युक्तहस्तावेव नारी–नरकव्यारूढौ गीत–वाद्यादिडम्बरे महति दक्षिणद्वारेण प्रवेश्य वेदिमध्यमानयेत्। ततो देश–कुलाचारेण काष्ठासनयोर्वेत्रासनयोः सिंहासनयोः अधोमुखीकृत्य शरमयखार्योर्वा वधू–वरौ पूर्वाभिमुखौ उपवेशयेत्। तथा हस्तलेपे वैदिकर्मणि च कुलाचारानुसारेण सदशकौरवस्त्राणि वा कौसुम्भवस्त्राणि वा स्वभाववस्त्राणि वा वधू–वरयो' परिधाप्यन्ते। ततो गृह्यगुरुरुत्तराभिमुखो मृगाजिनासीनो वह्निं शमी-पिप्पल-कपित्थ-कुटज-बिल्वा-ऽऽमलकसमिद्भिः प्रबोध्य अनेन मन्त्रेण घृत-मधु-तिल-यव नानाफलानि जुहुयात्। मन्त्रो यथा—

भाषा—अुसके बाद जुड़े हुअे हाथवाले अुन वर–कन्याको पुरुष और ओरतकी कटिके अुपर बैठाकर मगलगीत गाते हुअे और वाजिंत्रों बजते हुअे बड़े आडबरके साथ दक्षिणदिशा तरफके दरवाजेसें प्रवेश कराके वेदीकी मध्यमें लावें। तदनतर

॥ १६३ ॥

अपने अपने देशाचार और कुलाचारके अनुसार लकड़के आसनों पर, या वेतके आसनों पर, या सिंहासनोंके अुपर, या अधोमुख किये हुअे खारीप्रमाण शर यानि सरकड़ा नामके घाससे बनाये हुअे आसनों पर अुन वर-कन्याको पूर्वदिशाके सामने वैठावें। तथा हस्तलेपमें और वेदिकर्ममें अपने अपने कुलाचारके अनुसार दसियाँ सहित कोरा वस्त्र, या कौसुम्भ वस्त्र, या स्वभाव वस्त्र वर-कन्याको पहिनावें। बाद गृहस्थगुरु अुत्तरदिशाके सन्मुख मृगचर्म पर बैठा हुआ शमी, पींपल, कवीठ-कैथ, जिस वृक्षके अिंद्रजव नामके फल होते हैं सो कुटज-कुड़ची, बिल्व और आमलकके अिंधन करके अग्निको जगाके-तेज़ करके; अिस—निम्न लिखित मन्त्रसे घी, शहद, तिल, जौं और विविध फलोंका हवन करें—

होमका मन्त्र—

“ ॐ अर्हँ। ॐ अग्ने ! प्रसन्नः सावधानो भव। तवाऽयमवसरः, तद् आकारयेन्द्रं यमं नैर्ऋतिं वरुणं वायुं कुबेरमीशानं नागान् ब्रह्माणं लोकपालान्, ग्रहांश्च सूर्य-शशि-कुज-सौम्य-बृहस्पति-कवि-शनि-राहु-केतून्, असुर-नाग-सुपर्ण-विद्युद्-अग्नि-द्वीपो-दधि-स्तनिता-ऽनिल-दिक्कुमारान् भवनपतीन्, पिशाच-भूत-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किंपुरुष-महोरग-गन्धर्वान् व्यन्तरान्, चन्द्रा-ऽर्क-ग्रह-नक्षत्र-तारकान् ज्योतिष्कान्, सौधर्मे-शान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-लान्तक-शुक्र-सहस्रारा-ऽऽनत-प्राणता-ऽऽरणा-ऽच्युत-ग्रैवेयका-ऽनुत्तरभवान् वैमानिकान्, इन्द्रसामानिक-पार्षद्य-त्रायस्त्रिंश-ल्लोकपाला-ऽनीक-प्रकीर्णक-लोकान्तिका-ऽऽभियोगिकभेदभिन्नान् चतुर्निकायानपि सभार्यान् सायुध-बल-वाहनान् स्वस्वोपलक्षितचिह्नान्, अप्सरसश्च परिगृहीता-ऽपरिगृहीताभेदभिन्नाः ससखीकाः सदासीकाः

साभरणा रुचकवासिनीर्दिक्कुमारिकाश्च सर्वाः समुद्र–नदी–गिर्या–कर–वनदेवता'। तदेतान् सर्वान् सर्वाश्च इदम् अर्घ्यं पाद्यमाचमनीय वलिं चरु हुत न्यस्तं ग्राहय ग्राहय, स्वयं गृहाण गृहाण स्वाहा। अर्हं ॐ॥"

भाषा—अुपर लिखे हुअे मन्त्रसें गृहस्थगुरु घृतादिका हवन करें।

तत' सुष्ठुहुत–प्रहुतप्रदीप्तेऽग्नौ सति गृह्यगुरुस्तत उत्थाय वरस्य दक्षिणपार्श्वे स्थिताया वध्वा' पुर' सम्मुखीन उपविश्य इति वदेत्—

भाषा—पीछे अच्छी तरह होम करनेसें अग्नि प्रदीप्त होने पर गृहस्थगुरु वहाँसें अुठकर वरकी दाहिनी बाजूमें बैठी हुअी कन्याके आगे अुसके सन्मुख मुख करके बैठके अिस प्रकार कहें—

अभिषेकका मन्त्र—

"ॐ अर्हं। इदमासनमध्यासीनौ स्वध्यासीनौ स्थितौ सुस्थितौ। तदस्तु वां सनातन. सगमः। अर्हं ॐ॥"

भाषा—गृहस्थगुरु कन्याके सन्मुख बैठकर अुपर लिखे हुअे मन्त्रपाठको पढें।

इत्युक्त्वा कुशाग्रेण तीर्थोदकैस्तौ अभिषिञ्चेत्। ततो वध्वाः पितामहः पिता वा पितृव्यो वा भ्राता वा मातामहो वा मातुलो वा कुलज्येष्ठो वा कृतधर्मानुष्ठानोचितवेषो वधू–वरयोः पुर उपविशेत्। ततः शान्तिक–पौष्टिकाभ्यामारभ्य विवाहमासपर्यन्तं मङ्गलगान–वादित्रवादिनां भोजन–ताम्बूल–वस्त्रसामग्री सदैव गवेष्यते। ततो गृह्यगुरुः "ॐ नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः" इत्युक्त्वा दूर्वा–ऽक्षतपूर्णकरो वधू–वरयोः पुर इति वक्ति–"विदित

वां गोत्रं संबन्धकरणेनैव, ततः प्रकाशयतां जनाग्रतः"। ततः पूर्वं वरपक्षीयाः स्वगोत्र-प्रवर-ज्ञात्य-न्वयप्रकाशनं कुर्वते। ततश्च ते पुनर्वरस्य मातृपक्षीया गोत्र-प्रवर-ज्ञात्य-न्वयान् प्रकाशयन्ति। ततः कन्यापक्षीयाः स्वगोत्र-प्रवर-ज्ञात्य-न्वयान् प्रकाशयन्ति। ते पुनः कन्याया मातृपक्षीयाः गोत्र-प्रवर-ज्ञात्यन्वयादि प्रकाशयन्ति। ततो गृह्यगुरुः—

भाषा—अैसा कहके दर्भके अग्रभागद्वारा तीर्थोदकसे दोनोंको सिंचन करें। अुसके बाद धार्मिक क्रियाके योग्य अैसा वेष पहिना हुआ कन्याका दादा, या पिता, या चाचा, या भाओ, या नाना, या मामा, या कुलका वड़िल पुरुष वर-कन्याके आगे बैठे। शान्तिक और पौष्टिक क्रियासें आरंभ करके, विवाहके मास पर्यन्त मंगलगीत गानेवाले और वाजिंत्र बजानेवालोंको भोजन, तांबूल और वस्त्र-सामग्री हमेशां करनी चाहिये। तदनंतर गृहस्थगुरु "ॐ नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः" अैसा कहके हाथमें दूर्वा और चावल लेकर वर-कन्याके आगे कहे कि "संबन्ध-सगाओ करनेसें ही तुम्हारा गोत्र जान लिया है, अिस लिये अब लोगोंके आगे प्रगट करो"। अुसके बाद पहिले वरके पक्षवाले अपना गोत्र, गोत्रका प्रवर्तक, ज्ञाति और अपने वंशको प्रगट करें। पीछे वरकी माताके पक्षवाले अपना गोत्र, गोत्रका प्रवर्तक, ज्ञाति, और अपने वंशको प्रगट करें। अुसके बाद अिसी तरह कन्याके पक्षवाले अपना गोत्र, गोत्रका प्रवर्तक, ज्ञाति, और अपने वंशादि प्रकाशित करें। पीछे कन्याकी माताके पक्षवाले अपना गोत्र, गोत्रका प्रवर्तक, ज्ञाति, और अपने वंशको प्रगट करें। तदनंतर गृहस्थगुरु अिस प्रकार बोलें—

"ॐ अर्हं। अमुकगोत्रीयः, इयत्प्रवरः, अमुकज्ञातीयः, अमुकान्वयः, अमुकप्रपौत्रः, अमुकपौत्रः. अमुकपुत्रः; अमुकगोत्रीयः, इयत्प्रवरः. अमुकज्ञातीयः. अमुकान्वयः, अमुकप्रदौहित्रः; अमुकदौहित्रः. अमुकः सर्ववरगुणान्वितो वरयिता। अमुकगोत्रीया, इयत्प्रवरा. अमुकज्ञातीया, अमुकान्वया, अमुकप्रपौत्री. अमुकपौत्री, अमुकपुत्री; अमुकगोत्रीया,

इयत्प्रवरा, अमुकज्ञातीया, अमुकान्वया, अमुकमदौहित्री, अमुकदौहित्री, अमुका वर्या। तद् एतयोर्वर्या–वरयोर्वर-वर्ययोर्निविडो विवाहसंबन्धोऽस्तु। शान्तिरस्तु, पुष्टिरस्तु, तुष्टिरस्तु, धृतिरस्तु बुद्धिरस्तु, घन–सन्तानवृद्धिरस्तु। अर्हं ॐ ॥”

भाषा—अिस प्रकार गृहस्थगुरु कहें।

ततो गृह्यगुरुर्वर-वधूसकाशाद् गन्ध-पुष्प-धूप नैवेद्यैर्वैश्वानरपूजा कारयेत्। ततो वधूर्लाजाञ्जलिं[1] वह्नौ निक्षिपेत्। तत पुनस्तथैव दक्षिणे वधू वामे वर उपविशेत्। ततो गृह्यगुरुर्वेदमन्त्र पठेत्—

भाषा—तदनतर गृहस्थगुरु वर–कन्याके पास गध, पुष्प, धूप और नैवेद्यसे अग्निकी पूजा करावें। बाद कन्या अपने जुड़े हुअे हाथमें लाजा[1] यानि भीजाये हुअे चावल या चावलकी धानी लेकर अुनको अग्निमें डालें। तदनतर वैसे ही दाहिनी तरफ कन्या और बाँयी तरफ वर बैठें। अुसके बाद गृहस्थगुरु निम्न लिखित वेदमन्त्र पढ़ें—

पहिले फेरेका मन्त्र—

“ॐ अर्हं। अनादि विश्वम्, अनादिरात्मा, अनादिः कालो, अनादि कर्म, अनादिः सबन्धो देहिना देहाऽनुमताऽनुगताना क्रोधा-ऽहङ्कार च्छद्म-लोभैः संज्वलन प्रत्याख्यानावरण-ऽप्रत्याख्याना-ऽनन्तानुबन्धिभिः शब्द-रूप-रस-गन्ध स्पर्शैरिच्छा-ऽनिच्छापरिसङ्कलितैः सम्बन्धोऽनुबन्धः प्रतिबन्धः संयोगः सुगमः सुकृत, स्वनुष्ठितः सुनिर्वृत्तः सुतुष्ट सुपुष्ट सुप्राप्त सुलब्धो द्रव्य–भावविशेषेण। अर्हं ॐ ॥”

[1] भीजाये हुअे चावलको या चावलकी धानीको लाजा कहते है।

इति मन्त्रं पठित्वा पुनरिति कथयेत्—

भाषा—अिस प्रकार अुपर लिखे हुअे मन्त्रको पढ़कर फिर अैसा कहें—

"तदस्तु वां सिद्धप्रत्यक्षं, केवलिप्रत्यक्षं, चतुर्निकायदेवप्रत्यक्षं. त्रिवाहप्रधानाऽग्निप्रत्यक्षं. नागप्रत्यक्षं, नर-नारी-प्रत्यक्षं, नृपप्रत्यक्षं, जनप्रत्यक्षं, गुरुप्रत्यक्षं, मातृप्रत्यक्षं, पितृप्रत्यक्षं, मातृपक्षप्रत्यक्षं, पितृपक्षप्रत्यक्षं. ज्ञाति-स्वजन-बन्धु-प्रत्यक्षं संबन्धः, सुकृतः, सदनुष्ठितः, सुप्राप्तः, सुसंबद्धः सुसंगतः। तत् प्रदक्षिणीक्रियतां तेजोराशिर्विभावसुः ॥"

इति कथयित्वा तथैव ग्रथिताञ्चलौ वधू-वरौ वैश्वानरं प्रदक्षिणीकुरुतः।

भाषा—अिस प्रकार गृहस्थगुरुके कहनेके अनंतर वैसे ही जिनके वस्त्रके छेड़े बाँधे हैं अैसे यानि ग्रन्थिबंधन सहित वर-कन्या अग्निको प्रदक्षिणा करें।

तथा प्रदक्षिणीकृत्य तथैव पूर्वरीत्या उपविशतः। लाजात्रयस्य प्रदक्षिणात्रये पुरतो वधूः पश्चाद् वरः, दक्षिणे वध्वासनं वामे वरासनम्। इति प्रथमलाजाकर्म।

भाषा—अिस प्रकार प्रदक्षिणा करके वैसे ही पूर्वोक्त रीतिसें वर-कन्या बैठें। अिस प्रकार तीनों प्रदक्षिणा देते वख्त अंजलिमें लाजा तीनों वख्त रखना, आगे कन्या और पीछे वर चलें, दाहिनी तरफ कन्याका आसन और बाँयी तरफ वरका आसन होना चाहिये। अिस प्रकार प्रथम लाजाकर्म यानि पहिले फेरेकी क्रिया हुअी।

तत आसनोपविष्टयोस्तयोर्गुरुर्वेदमन्त्रं पठेत्—

भाषा—अुसके बाद वर-कन्या आसनके अुपर बैठ जाने पर गृहस्थगुरु निम्न लिखित वेदमन्त्र पढ़ें—

दूसरे फेरेका मन्त्र—

" ॐ अर्हं । कर्माऽस्ति, मोहनीयमस्ति, दीर्घस्थित्यस्ति, निबिडमस्ति, दुश्छेद्यमस्ति, अष्टाविंशतिप्रकृत्यस्ति । क्रोधोऽस्ति, मानोऽस्ति, मायाऽस्ति, लोभोऽस्ति। सञ्ज्वलनोऽस्ति, प्रत्याख्यानावरणोऽस्ति, अप्रत्याख्यानोऽस्ति, अनन्तानुबन्ध्यस्ति, चतुश्चतुर्विधोऽस्ति । हास्यमस्ति, रतिरस्ति, अरतिरस्ति, भयमस्ति, जुगुप्साऽस्ति, शोकोऽस्ति । पुंवेदोऽस्ति, स्त्रीवेदोऽस्ति, नपुंसकवेदोऽस्ति। मिथ्यात्वमस्ति, मिश्रमस्ति, सम्यक्त्वमस्ति। सप्ततिकोटाकोटिसागरस्थित्यस्ति । अर्हं ॐ ॥ "

इति वेदमन्त्र पठित्वा पुनरिति कथयेत्—

भाषा—इस प्रकार ऊपर लिखे हुओ वेदमन्त्रको पढ़कर फिर ऐसा कहें—

" तदस्तु वां निकाचितनिबिडबद्धमोहनीयकर्मोदयकृतः स्नेहः, सुकृतोऽस्तु, सुनिष्ठितोऽस्तु, सुसंबद्धोऽस्तु, आभवम् अक्षयोऽस्तु । तत् प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः ॥ "

पुनरपि तथैव वह्निं प्रदक्षिणीकुर्यात् । इति द्वितीयलाजाकर्म ।

भाषा—जिस प्रकार गृहस्थगुरुके कहनेके अनंतर फिर भी वैसे ही वर-कन्या अग्निको प्रदक्षिणा करें ।

जिस प्रकार द्वितीय लाजाकर्म अर्थात् दूसरे फेरेकी क्रिया हुओ ।

॥ १६९ ॥

चतसृष्वपि लाजासु प्रदक्षिणाप्रारम्भे वधूर्वह्नौ लाजामुष्टिं क्षिपेत्। ततस्तयोस्तथैवोपविष्टयोर्गुरुरिति वेदमन्त्रं पठेत्—

भाषा—चारों लाजामें प्रदक्षिणाके प्रारंभमें कन्या अग्निमें लाजामुष्टिका प्रक्षेप करें। तदनंतर अुन दोनोंके वैसे ही बैठ जाने पर गुरु निम्न लिखित वेदमन्त्र पढ़ें—

तीसरे फेरेका मन्त्र

"ॐ अर्हं। कर्माऽस्ति, वेदनीयमस्ति, सातमस्ति, असातमस्ति। सुवेद्यं सातम्, दुर्वेद्यमसातम्। सुवर्गणाश्रवणं सातं, दुर्वर्गणाश्रवणमसातम्। शुभपुद्गलदर्शनं सातं, दुष्पुद्गलदर्शनमसातम्। शुभषड्रसास्वादनं सातम्, अशुभषड्रसास्वादनमसातम्। शुभगन्धाघ्राणं सातम्, अशुभगन्धाघ्राणमसातम्। शुभपुद्गलस्पर्शः सातम्, अशुभपुद्गलस्पर्शोऽसातम्। सर्वं सुखकृत् सातं, सर्वं दुःखकृद् असातम्। अर्हं ॐ॥"

इति वेदमन्त्रं पठित्वा कथयेत्—

भाषा—अिस प्रकार अुपर लिखे हुअे वेदमन्त्रको पढ़ कर गुरु अैसा कहें—

"तदस्तु वां सातवेदनीयं, मा भूद् असातवेदनीयम्। तत् प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः॥"

इति वैश्वानरं प्रदक्षिणीकृत्य वधू-वरौ तथैवोपविशतः। इति तृतीयलाजाकर्म।

भाषा—अिस प्रकार गुरुके कहनेके अनंतर वर-कन्या अग्निको प्रदक्षिणा करके वैसे ही बैठ जावें।

इस प्रकार तृतीय लाजाकर्म अर्थात् तीसरे फेरेकी क्रिया हुअी।

अिस जगह पर प्रचलित प्रथाके अनुसार वर–कन्याके प्रश्नोत्तर भी होने चाहिये। जिससे प्रथम सात सात वचनोंमें प्रश्नोत्तर लिखते है—

वरकी ओरसें सप्त वचन–

१ मम कुटुम्बिजनाना यथायोग्य विनयशुश्रूषा कर्तव्या—मेरे कुटुबीजनोंकी यथायोग्य विनय–सेवा करनी।

२ मम आज्ञा न लोपनीया—मेरी आज्ञाका अुल्लघन न करना।

३ मम माता–पित्रादीनां मम च कटुक निष्ठुर च वचन न वक्तव्यम्—मेरे माता–पिता वगैरहको और मुझे कर्कश और निर्दय वचन नहीं बोलना।

४ मम मित्रादीनां साध्वादिसत्पात्राणा च गृहागमने सति आहारादिदाने कलुषितमनस्कतया न भाव्यम्—मेरे मित्रादि–स्नेहिवग तथा साधु वगैरह सत्पात्र घर आने पर अुनको आहारादि देनेमे तेरे मनको कलपित नहीं करना।

५ रात्रौ परगृहे न गन्तव्यम्—रातमें दूसरेके घर न जाना।

६ बहुजनसंकीर्णस्थाने न गन्तव्यम्—बहुत लोगोंसे सकुचित अैसे स्थानमें न जाना।

७ कुत्सितधर्माणां पापानां च गृहे न गन्तव्यम्—निन्दित धर्मवाले और पापियोंके घर नहीं जाना।

एतानि मदुक्तसप्तवचनानि चेत् त्वमङ्गीकरोषि तदैव त्वा गृह्णामि—मैंने कहे हुअे ये सात वचन जो तू अगीकार करती हो तब ही तुझेको मैं अगीकार करू।

कन्याकी ओरसें सप्त वचन—

ममाऽपि सप्त वचनानि भवता अङ्गीकर्तव्यानि । तद्यथा—मेरे भी सात वचन आप अंगीकार करें । सो अिस प्रकार-

१ अन्यस्त्रीभिः सह क्रीडा न कर्तव्या—दूसरी औरतोंके साथ क्रीडा नहीं करनी ।

२ वेश्यागृहे न गन्तव्यम्—वेश्याके घर नहीं जाना ।

३ द्यूतादिक्रीडा न कार्या—जूआ वगैरह लोक-निन्दनीय क्रीडा नहीं करनी ।

४ योग्यद्रव्यमुपार्ज्य अन्न-वस्त्रा-ऽऽभरणादिना मदीया रक्षा कर्तव्या—योग्य द्रव्यको अुपार्जन करके अन्न, वस्त्र और आभूषणादिसें मेरी रक्षा करना ।

५ धर्मस्थानगमने निषेधो न कर्तव्यः—धर्मस्थानमें जानेमें निषेध नहीं करना ।

६ मत्तः सकाशाद् गुप्तवार्ता न रक्षणीया—मेरेसें कोअी छुपी बात नहीं रखनी ।

७ मम गुप्तवार्ता अन्यस्य कस्यचिदग्रे न प्रकाशनीया—मेरी गुप्त बातको दूसरे किसीके आगे प्रगट नहीं करनी ।

एतानि ममाऽपि सप्त वचनानि भवता यदि अङ्गीक्रियन्ते तर्हि अहं पाणिग्रहणं करोमि—मेरे भी ये सात वचन आप अगर अंगीकार करें तब ही मैं आपसें प्राणिग्रहण करूं ।

अिस प्रकार वर-कन्याके आपसमें सात सात वचन अंगीकार कर लेने पर अग्निके चारों ओर चौथा फेरा देना चाहिये, और गुरूने चतुर्थ लाजाकर्म अर्थात् चौथे फेरेका मन्त्र पढ़ना चाहिये ।

ततो गृह्यगुरुरिति वेदमन्त्र पठेत्—

भाषा—अुसके बाद गृहस्थगुरु निम्न लिखित वेदमन्त्र पढ़ें—

चौथे फेरेका मन्त्र—

" ॐ अर्हं। सहजोऽस्ति, स्वभावोऽस्ति, सम्बन्धोऽस्ति, प्रतिबद्धोऽस्ति। मोहनीयमस्ति, वेदनीयमस्ति, नामाऽस्ति, गोत्रमस्ति, आयुरस्ति। हेतुरस्ति, आश्रवबद्धमस्ति, क्रियाबद्धमस्ति, कायबद्धमस्ति। तदस्ति सांसारिक सम्बन्धः। अर्हं ॐ॥"

इति वेदमन्त्र पठित्वा कन्याया पितु पितृव्यस्य भ्रातुः कुलज्येष्ठस्य वा हस्त तिल-यव-कुश-दूर्वागर्भेण जलेन पूरयित्वा इति वदेत्—

भाषा—अुपर लिखा हुआ " ॐ अर्हं सहजोऽस्ति० " अित्यादि वेदमन्त्र पढ़कर कन्याके पिताके, चाचेके, भाअीके या कुलके बडेके हाथको तिल, यव, दर्भ और दूर्वायुक्त जलसे भरकर गृहस्थगुरु अैसा कहें—

" अद्य अमुकसंवत्सरे, अमुकाऽयने, अमुकर्तौ, अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकवारे, अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे, अमुककरणे, अमुकमुहूर्ते पूर्वकर्मसंबन्धानुबद्धा वस्त्र-गन्ध माल्यालंकृता सुवर्ण-रूप्य-मणिभूषणभूषिता ददात्ययम्। प्रतिगृह्णीष्व॥"

इति कथयित्वा वधू-वरयोर्युक्तहस्तान्तराले इति जलं निक्षिपेत् ।

भाषा—अुपर लिखा हुआ " अद्य अमुकसंवत्सरे० " अित्यादि कहके वर और कन्याके जुड़े हुअे हाथके बीचमें जलक्षेप करें ।

वरः कथयति—" प्रतिगृह्णामि, प्रतिगृहीता " । गुरुः कथयति—

भाषा—अुस वख्त वर कहें— " प्रतिगृह्णामि, प्रतिगृहीता । " अर्थात् मैं अिसको ग्रहण करता हुँ, मैंने ग्रहण की । तब गुरु कहें—

" सुप्रतिगृहीताऽस्तु, शान्तिरस्तु, पुष्टिरस्तु, ऋद्धिरस्तु, वृद्धिरस्तु, धन-सन्तानवृद्धिरस्तु ॥ "

भाषा—अिस प्रकार गुरु बोलें । अिसका भावार्थ यह है कि—यह कन्या तेरेसें अच्छी तरह गृहीत हो, तुम दोनोंको शान्ति हो, पुष्टि हो, ऋद्धि हो, वृद्धि हो, तथा धन और संतानकी वृद्धि हो ।

ततः पूर्वं लाजात्रये वरहस्तोपरिस्थं कन्याहस्तम् अधः कुर्यात्, वरहस्तं चोपरि कुर्यात् । ततो वर-वध्वौ आसनादुत्थाप्य वरं पुरः कुर्यात्, वधूं च पश्चात् । ततो लाजमुष्टिं वह्नौ निक्षिप्य गृह्यगुरुरिति कथयेत्—
" प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः " ॥

भाषा—अुसके बाद पहिलेके तीन लाजकर्ममें-फेरेमें वरके हाथ पर रहा हुआ जो कन्याका हाथ था अुसको अिस चौथे फेरेमें नीचे करें, और वरका हाथको अुपर करें । तदनंतर वर-कन्याको आसनसें अुठा कर वरको आगे करें, और कन्याको पीछे करें । बाद लाजाकी मुष्टि अग्निमें प्रक्षेप करके गृहस्थगुरु कहें कि—" प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः—अर्थात् अग्निको प्रदक्षिणा करो " । इस प्रकार गुरुके कहने पर वर-कन्या अग्निको चौथा फेरा फरें ।

वर-वध्वोर्हुताशनं प्रदक्षिणीकुर्वतोः कन्यापिता यावत् कुलज्येष्ठो वा सर्वं वर-वध्वोर्देयं वस्तु वस्त्रा-ऽऽभरण-

स्वर्ण रूप्य ताम्र-कास्य-भूमि-निष्क्रय-करि तुरग दासी-गो-वृष-पल्यङ्क-तूलिको-च्छीर्पक-दीप-शस्त्र-पाकभाण्डप्रभृति सर्वं वेद्य त' समाहरेत्। अन्येऽपि तदीया बन्धु सम्बधि सुहृदादय स्वसंपदनुसारेण तत्पूर्वोक्त वस्तु वेद्यन्तरानयन्ति। ततः प्रदक्षिणान्ते वर-वध्वौ तथैवासने उपविशत.। नवर चतुर्थलाजानन्तर वरस्यासन दक्षिणे, वध्वा आसन वामे। ततो गृह्यगुरु कुश-दूर्वाऽक्षत वासपूर्णकर इति कथयेत्—

भाषा—वर और कन्या जब अग्निको प्रदक्षिणा करें तब कन्याका पिता चाचा मामा यावत कुलका बडा वर-कन्याको देने योग्य वस्त्र, आभूषण, सोना, चाँदी, रत्न, तावा, कॉसा, भूमि, निष्क्रय[1], हाथी, घोड़ा, दासी, गाय, बैल, पलग, तूलिका-गद्दा, ओसीसा, दीपक, शस्त्र और पाकके बर्तन-पात्र आदि सभी वस्तुओंको वेदीमे लावें। अिसी तरह और भी अुसके बन्धुवर्ग, सगे-सम्बन्धी तथा मित्र वगैरह अपनी अपनी सपत्तिके अनुसार अुन पहिले कही हुअी वस्तुयें वेदीमें लावें। तदनतर अुस चौथी प्रदक्षिणा देनेके अतमे वर-कन्या वैसे ही आसन पर बैठ जावें। परतु अितना विशेष है कि—चौथे लाजकर्मके अनतर वरका आसन दाहिनी तरफ और कन्याका आसन बॉयी तरफ होना चाहिये। अुसके बाद गृहस्थगुरु अपने हाथमे दर्भ, दूर्वा, चावल और वासको लेकर अिस प्रकार कहें—

वासक्षेपका मन्त्र—

“येनाऽनुष्ठानेन आर्योऽर्हन् शक्रादिदेवकोटिपरिवृतो भोग्यफलकर्मभोगाय संसारिजीवव्यवहारमार्गसंदर्शनाय सुनन्दा-सुमङ्गले पर्यणैपीत्, ज्ञातमज्ञातं वा तदनुष्ठानम् अनुष्ठितमस्तु ॥”

[1] पगार-वेतनादि दिलवाकर या व्यापारादिसे आजीविकाका साधन कर देना, करजा हो तो करजा चूका दना, अित्यादि प्रत्युपकार करना।

इत्युक्त्वा वास-दूर्वा-ऽक्षत-कुशान् वर-वधूमस्तके क्षिपेत् ।

भाषा—गृहस्थगुरु ऊपर लिखा हुआ "येनाऽनुष्ठानेन०" अित्यादि मन्त्र कहके वास, दूर्वा, चावल और दर्भका वर-कन्याके मस्तक पर क्षेप करें ।

ततो गृह्यगुरुणाऽऽदिष्टो वधूपिता जलं यव-तिल-कुशान् करे गृहीत्वा वरकरे दत्त्वा इति वदेत्—"सुदायं ददामि, प्रतिगृहाण"। वरः कथयति—"प्रतिगृह्णामि, प्रतिगृहीतं, परिगृहीतम्"। गुरुः कथयति—

"सुगृहीतमस्तु, सुपरिगृहीतमस्तु"। पुनस्तथैव वस्त्र-भूषण-हस्त्यादिदायदानेषु वधूपितुर्वरस्य च इदमेव वाक्यम्, अयमेव विधिः। ततः सर्ववस्तुषु दत्तेषु गुरुरिति कथयति—

भाषा—तदनंतर गृहस्थगुरुके कहनेसें कन्याका पिता जल, यव, तिल और दर्भको हाथमें लेकर और अुनको वरके हाथमें देकर अैसा कहें— "सुदायं ददामि, प्रतिगृहाण"। तब वर कहें— "प्रतिगृह्णामि, प्रतिगृहीतं, परिगृहीतम्"। अुसके बाद गुरु कहें "सुगृहीतमस्तु, सुपरिगृहीतमस्तु"। फिर अिसी तरह वस्त्र, आभूषण और हाथी वगैरा दायजा देनेमें कन्याके पिताका और वरका यही वाक्य और यही विधि समझना। तदनंतर सभी वस्तुओंको देने पर गुरु अैसा—निम्न लिखित कहें—

"वधू-वरौ ! वां पूर्वकर्मानुबन्धेन निबिडेन निकाचितबद्धेन अनुपवर्तनीयेन अघातनीयेन अनुपायेन अश्लथेन अवश्यभोग्येन विवाहः प्रतिबद्धो बभूव। तद् अस्तु अखण्डितोऽक्षयोऽव्ययो निरपायो निर्व्याबाधः। सुखदोऽस्तु। शान्तिरस्तु, पुष्टिरस्तु, ऋद्धिरस्तु, वृद्धिरस्तु, धन-सन्तानवृद्धिरस्तु।"

इत्युक्त्वा तीर्थोदकैः कुशाग्रेणाऽभिषिञ्चेत् ।

भाषा—गृहस्थ गुरु " वधू-वरौ वा० " अित्यादि कहके तीर्थोंके जलसें दर्भके अग्रभागद्वारा वर-कन्याको सिंचन करें।

पुनर्गुरुस्तथैव वधू-वरौ उत्थाप्य मातृगृहं नयेत् । तत्र नीत्वा वधूवरयोरिति वदेत्—

भाषा—फिर गुरु वैसे ही वर-कन्याको अुठा कर मातृघरमें ले जावें। वहा लेजाके वर-कन्याको अिस प्रकार कहें—

अनुष्ठितो वा विवाहो वत्सौ ! सस्नेहौ, सभोगौ, सायुषौ, सधर्मौ, समदुःख-सुखौ, समशत्रु-मित्रौ, समगुण-दोषौ, समवाङ्-मनः-कायौ, समाचारौ समगुणौ भवताम् ॥ "

ततः कन्यापिता करमोचनाय गुरुं प्रति वदति । गुरुरिति वेदमन्त्रं पठेत्—

भाषा—गुरु " अनुष्ठितो वा विवाहो० " अित्यादि कहें। अुसके बाद कन्याका पिता करमोचन यानि हाथ छोडनेके लिये गुरु प्रति कहें। तब गुरु करमोचनका निम्न लिखित वेदमन्त्र पढें—

करमोचनका मन्त्र—

" ॐ अर्हं । जीव ! त्वं कर्मणा बद्धः, ज्ञानावरणेन बद्धः, दर्शनावरणेन बद्धः, वेदनीयेन बद्धः, मोहनीयेन बद्धः, आयुषा बद्धः, नाम्ना बद्धः, गोत्रेण बद्धः, अन्तरायेण बद्धः । प्रकृत्या बद्धः, स्थित्या बद्धः, रसेन बद्धः, प्रदेशेन बद्धः । तदस्तु ते मोक्षो गुणस्थानारोहक्रमेण । अर्हं ॐ ॥ "

इति वेदमन्त्र पठित्वा पुनरिति वदेत्—

भापा—गुरु "ॐ अर्हँ। जीव !०" अित्यादि अुपर लिखे हुअे वेदमन्त्रको पढ़कर फिर अिस प्रकार कहें—

"मुक्तयोः करयोरस्तु वां स्नेहसंबन्धोऽखण्डितः ॥"

इत्युक्त्वा करौ मोचयेत्।

भापा—गुरु "मुक्तयोः करयोरस्तु०" अित्यादि कहके करमोचन करें।

कन्यापिता करमोचनपर्वणि जामात्रा प्रार्थितं स्वसंपत्त्यनुसारि वा बहु वस्तु दद्यात्। तद्दानविधिः पूर्वयुक्त्यैव। ततः पुनर्मातृगृहादुत्थाय पुनर्वेदिगृहमागच्छतः। ततो गृह्यगुरुरासनोपविष्टयोस्तयोरिति वदेत्—

भापा—कन्याका पिता करमोचन समयमें दामादने मांगी हुअी या अपनी संपत्तिके अनुसार बहुत वस्तु देवें। अुस दानकी विधि पहलेकी ही तरह समझना। अुसके बाद वर-कन्या मातृघरसें अुठ कर फिर वेदीघरमें आवें। अुन दोनोंका अपने अपने आसन पर बैठ जाने पर गृहस्थ गुरु अिस प्रकार कहें—

आशीर्वाद—

"पूर्वं युगादिभगवान् विधिनैव येन, विश्वस्य कार्यकृतये किल पर्यणैपीत्।
भार्याद्वयं तदमुना विधिनाऽस्तु युग्म-मेतत् सुकामपरिभोगफलानुबन्धि ॥ १ ॥"

भापा—"पहिले युगादि भगवान्ने जिस विधिसें जगत्को व्यवहारमार्ग दिखानेके लिये दो स्त्रियाँसें विवाह किया, अुसी विधिसें ये वर-वधू अच्छी रीतिसें कामका अुपभोगरूप फल भोगनेवाले हो ॥ १ ॥"

इत्युक्त्वा पूर्वोक्तविधिना अञ्चलमोचनं कृत्वा " वत्सौ । लब्धविषयौ भवताम् " इति गुर्वनुज्ञातौ दम्पती विविधविलासिनीगणवेष्टितौ शृङ्गारगृहं प्रविशतः । तत्र पूर्वस्थापितमदनस्य कुल-वृद्धानुसारेण मदनपूजनं कुरुतः । ततो वधू वरयोः सममेव क्षीरान्नभोजनम् । ततो यथायुक्त्या सुरतप्रचार[1] ।

भाषा—अैसा कहके पहिले कही हुअी विधिसें वस्त्रकी गाँठ छोडके " वत्सो ! लब्धविषयौ भवताम् " अिस प्रकार गुरुसें अनुज्ञा पाये हुअे दंपति—दोनों स्त्री-भर्ता विविध विलासिनी-ओरतोंसें वेष्टित होकर शृंगारघरमे प्रवेश करें। वहाँ पहिलेसें स्थापन किये हुअे मदनकी अपने कुल और वृद्धोंके आचार अनुसार पूजा करें। तदनंतर वहाँ वधू और वर सम ही कालमे क्षीरान्नका भोजन करें। अुसके बाद शयनघरमें जाकर यथायुक्ति सुरतक्रीडा करें।

ततस्तथैव आगमनरीत्या सोत्सवं स्वगृहं व्रजतः । ततो वरस्य माता-पितरौ वधू-वरयोः निरुञ्छनमङ्गलविधिं स्वदेश-कुलाचारेण कुरुतः । कङ्कणबन्धन-कङ्कणमोचन-द्यूतक्रीडा-वेणीग्रन्थनादिकर्माणि सर्वाण्यपि तद्देश-कुलाचारेण कर्तव्यानि ।

भाषा—तदनंतर जिस रीतिसें आये थे अुसी रीतिसें अुत्सव सहित अपने घर जावें। बाद वरके माता-पिता वधू और वरको निरुछन-मंगलविधि अपने देशाचार और कुलाचारसें करें। कंकनको बांधना, कंकनको छोड़ना, द्यूतक्रीडा, और वेणी गुंथना वगैरह सभी क्रिया भी अुस अुस देशाचार और कुलाचारसें करें।

१ अिस कथनसें यही सिद्ध होता है कि, यौवन प्राप्तोंका ही विवाह होना चाहिये, क्यों कि उसी समय कामक्रीडाकी विधि कही है।

॥ १७२ ॥

विवाहात् पूर्वं वधू-वरपक्षद्वयेऽपि भोजनदानम्। तदनन्तरं धूलिभक्त-जन्यभक्तप्रभृति देश-कुलाद्याचारेण। ततः सप्ताहानन्तरं वर-वधूविसर्जनम्। तस्य चाऽयं विधिः—सप्ताहं त्रिविधभक्त्या पूजितस्य जामातुः पूर्वोक्तरीत्या अञ्चल-ग्रन्थनं विधाय अनेकवस्तुदानपूर्वं तेनैवाडम्बरेण स्वगृहप्रापणं कुर्यात्। ततः सप्तरात्रिक-मासिक-षाण्मासिक-वार्षिक-महोत्सवकरणं स्वकुल-संपत्ति-देशाचारानुसारेण विधेयम्। सप्तरात्रानन्तरं मासानन्तरं वा कुलाचारानुसारेण कन्यापक्षे मातृविसर्जनं पूर्वोक्तरीत्या करणीयम्। गणपति-मदनादिविसर्जनविधिर्लोकप्रसिद्धः।

भाषा—विवाहसें पहिले कन्या और वर दोनोंके पक्षमें भोजन देना। तदनंतर धूलिभक्त और जन्यभक्त यानि कन्यापक्ष-वालोंके मुहब्बतवालोंको भोजन देना, अित्यादि देशाचार और कुलाचारके अनुसार करना। अुसके बाद सात दिनके अनंतर वर-वधूको विसर्जन करना-रजा देना। अिसका विधि यह है—सात दिन तक विविध भक्तिसें सत्कारित दामादको, पहिले कही हुअी रीतिसें अंचलग्रन्थन करके अनेक वस्तुओंका दानपूर्वक वैसे ही आडंबरके साथ अुसके घर पहुँचावें। तदनंतर सात रात्रि पर्यंत, या मास पर्यंत, या छे मास पर्यंत, या वर्ष पर्यंत अपने कुलकी संपत्ति और देशाचार अनुसार महोत्सव करना। सात रात्रिके अनंतर या महिनेके अनंतर अपने कुलाचार अनुसार कन्यापक्षमें पहिले कही हुअी रीतिसें मातृविसर्जन करना। गणपति-मदनादिकी विसर्जनविधि तो लोगमें प्रसिद्ध है।

वरपक्षे कुलकरविसर्जनविधिस्तु कथ्यते—कुलकरस्थापनानन्तरं नित्यं कुलकरपूजा विधेया। विसर्जनकाले कुलकरान् संपूज्य गृह्यगुरुः पूर्ववत् "ॐ अमुककुलकराय०" इत्यादि पूर्ववत् संपूर्णं मन्त्रं पठित्वा "पुनरागमनाय स्वाहा" इति सर्वानपि कुलकरान् विसर्जयेत्।

भाषा—वरपक्षमें कुलकरोंके विसर्जनकी विधि कहते है—कुलकरोंकी स्थापना करनेके बाद हमेशा अुन कुलकरोंकी पूजा करना। विसर्जन कालमें कुलकरोंका पूजन करके गृहस्थगुरु पूर्वकी तरह "ॐ अमुककुलकराय०" अित्यादि कुलकरके नामपूर्वक पूर्ववत् सपूर्ण मन्त्र पढ़कर "पुनरागमनाय स्वाहा" अैसा कहकर अनुक्रमसे सभी कुलकरोंका विसर्जन करें। बाद यह पढ़ें—

क्षमा याचना—

"ॐ आज्ञाहीन क्रियाहीनं, मन्त्रहीनं च यत् कृतम्। तत्सर्वं कृपया देव !, क्षमस्व परमेश्वर ! ॥ १ ॥"

॥ इति कुलकरविसर्जनविधि ॥

भाषा—"हे परमेश्वर ! आज्ञासे हीन, क्रियासे हीन और मन्त्रसे हीन जो कुच्छ हमने किया हो, अुन सबको हे देव ! क्षमा करो ॥ १ ॥" अिस प्रकार कुलकरोंके विसर्जनकी विधि कही।

ततो मण्डलीपूजा-गुरुपूजा-वासक्षेपादि पूर्ववत्। साधुभ्यो वस्त्र पात्रदानम्। ज्ञानपूजा। विप्रेभ्यो मार्गणेभ्यश्च यथासपत्ति दानम्।

भाषा—अुसके बाद मडलीपूजा गुरुपूजा और वासक्षेपादि पूर्ववत् समझना। साधु-मुनिराजोंको वस्त्र और पात्रका दान देना, ज्ञानकी पूजा करना। जैन ब्राह्मणोंको और याचकोंको अपनी सपत्ति अनुसार दान देना।

तथा च देश-कुलसमयान्तरे विवाहलग्ने प्राप्ते वरे श्वशुरगृहं प्रविष्टे पदाचारकरणम्। पूर्वम् अङ्गणे आसनदानम्।

श्वशुरः कथयति–"विष्टरं प्रतिगृहाण"। वरः कथयति "ॐ प्रतिगृह्णामि" इत्यासने उपविशति १। ततः श्वशुरो वरस्य पादौ प्रक्षालयेत् २। ततोऽर्घ्यदानम्–दधि-चन्दना-ऽक्षत-दूर्वा-कुश-पुष्प-श्वेतसर्षप-जलैः श्वशुरो जामात्रे अर्घ्यं ददाति ३। तथा आचमनदानम् ४। ततो गन्धा-ऽक्षतपूजा–तिलककरणम् ५। ततो मधुपर्कप्राशनम् ६। इति विष्टर-पाद्या-ऽर्घ्य-ऽऽचमनीय-गन्ध-मधुपर्कैः षडाचाराः। ततो गृहान्तर्वधू-वरयोः परस्परं दृष्टिसंयोगः, परस्परं द्वयोर्नामग्रहणम्। शेषं पूर्ववत्।

भाषा—तथा कोओी कोओी दूसरे देशाचार और कुलाचारमें विवाहके लग्नमें ससुरके घर वर प्राप्त होने पर छे आचार करते हैं। सो अिस प्रकार—प्रथम तो आंगनमें वरको आसन देना। पीछे ससुर कहे—"विष्टरं प्रतिगृहाण–आसनको ग्रहण करो"। तब वर कहे—"ॐ प्रतिगृह्णामि–हाँ, मैं ग्रहण करता हूं"। अैसा कहके वर आसन पर बैठें १। तदनंतर ससुर वरके पैरोंका प्रक्षालन करें २। अुसके बाद ससुर दामादको दही, चंदन, चावल, दूर्वा, दर्भ, पुष्प, सफेद सरसों, और जलसें अर्घ्य देवें ३। तदनंतर आचमन देवें ४। अुसके बाद गंध और अक्षतसें पूजा और तिलक करें ५। तदनंतर वरको मधुपर्कका प्राशन करावें ६। अिस प्रकार आसन, पाद्य–पादप्रक्षालन, अर्घ्य, आचमन, गंध, और मधुपर्क; अैसे छे आचार हैं। तदनंतर घरके अंदर वधू और वर परस्पर दृष्टिसंयोग करें, तथा परस्पर दोनोंका नाम ग्रहण करें। शेष विधि पूर्वकी तरह समझना।

विवाहमें क्या क्या चाहिये? सो कहते हैं—

"तैलाभिषेको वैवाह–वस्तुप्रारम्भ एव च। वैवाहिकेषु धिष्ण्येषु, करणीयो महात्मभिः ॥ १ ॥
वाद्यं नार्यः कुलवृद्धा, द्वयोः स्वजनसंमतिः। मण्डपो मातृपूजा च, तथा कुलकरार्चनम् ॥ २ ॥

वेदिस्तोरणमर्घ्यादि, वस्तु शान्तिक-पौष्टिके। बहुभोजनसामग्री, कौसुम्भे सूत्रवाससी ॥ ३ ॥
आरूढऋद्धि-वृद्धी च, यवादिवपन तथा। गुरोर्वस्त्रं भूषण च, वरे देयं गवादि च ॥ ४ ॥
पाकभोजनपात्राणि, दानशक्तिधनं तथा। इमान्यन्यानि सयोगो, विवाहस्य विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥"

भाषा—"विवाह योग्य वस्तुओंके प्रारभमें ही विवाहके नक्षत्रोंमें महात्मा पुरुषोंने तेलका अभिषेक करना चाहिये ॥ १ ॥ धात्रिओं, धवलमगल गानेवाली सोहागन औरतें, कुलवृद्धा स्त्रियाँ, दोनों पक्षके सगे-सबधीकी विवाह करनेकी समति, मडप, मातृपूजा और कुलकरोंकी पूजा, ॥ २ ॥ वेदी, तोरण, अर्घ्य वगैरहके लिये चीजें, शान्तिक क्रिया और पौष्टिक क्रियाकी साधन-सामग्री, बहुत लोगोंको भोजन देनेकी विपुल सामग्री, कौसुंभ वर्णके सूतके दो वस्त्र, ॥ ३ ॥ ऋद्धि और वृद्धिका समारोह, जवारारोपणादि, गृहस्थ गुरुजीको देनेके वस्त्र और आभूषण, वरको देनेके वस्त्र आभूषण और गैया वगैरह, ॥ ४ ॥ भोजनके लिये रसोओी बनवानेके पात्र-बरतन, तथा अपनी शक्ति अनुसार दान देनेका धन, विवाहके लिये ये वस्तुयें और जरूरत अनुसार अन्य भी वस्तुयें अिकट्ठी करनेका कहा है ॥ ५ ॥

॥ बयान विवाह-सस्कारका ॥

विवाह-सस्कार तब कराया जाता है जब पेस्तर सगाओी की गओी हो। सगाओी करनेकी कओी रसमें हैं जो मुल्क-मुल्कमें अलग-अलग तौर पर जारी है। मगर जाहिरात यह चलती है कि—सगाओीके रोज कन्याके मा-बाप वरके लिये रूपया, नारियल और कपडे कुलगुरुके साथ भेजें, और वरके मा-बाप कन्याके लिये गहना-जेवर कपडे वगैरा चीजें भेजें। कओी मुल्कवालोंने गहना-जेवर भेजनेकी रसम अुठा दी है, जैसे कि—मुल्क कच्छवालें सिवाय कपडेके और चीजें नहीं भेजते।

सबब कि, शायद विवाहके पेस्तर वरका अंतकाल हो जाय तो कन्याके मा-बाप जेवर-गहना वापीस नहीं देते हैं। मगर वापीस देना मुनासिब है।

लड़कीको दूसरे शहर या गाँवमें देना अिस लिये अच्छा है कि, जिससें अुसके मा-बापोंको दशहरा-दीवाली वगेरह तहवारोंमें खरचासें बचाव हो। अिधर खाविंदको भी फायदा है कि, हरवख्त अुसकी औरत अपने मा-बापके वहाँ जा न बैठें। जरा खफ़ा होनेसें वह अपने मा-बापके घर जा बैठेगी, और खाविंदको खुशामद करना पड़ेगी। जो बेपरवाह शख्स है वह कभी खुशामद न करेगा, मगर कमजोरोंकी नाकमें दम होगी। कअी फरमाते हैं कि-अेक ही शहरमें लड़कीको देना अच्छा है, जिससें वख्त-ब-वख्त दोनों पक्षवालोंको सुख-दुःख वगेरामें काम आवें। कअियोंका फरमाना है कि, शहरकी लड़की छोटे गाँवमें देना नहीं चाहिये; मगर यह फरमाना गलत है। सोचो कि-अगर गाँववाले भी अिस बातको अख्तियार कर लेवें कि—शहरमें लड़की नहीं देना, तो बतलाओ! फिर गुजारा कैसे होगा?। हाँ! अितना याद रक्खो कि बुढ़ोंको और अधर्मियोंको हर्गिज़ लड़की देना मुनासिब नहीं। जो लोग लड़कीके पैसे लेते हैं अुन्होंने केवल लड़की नहीं बेची, बल्के मांस बिक्री किया अैसा जानना। बड़ी शर्मकी बात है कि अैसा किया जाता है। पैसे लेनेवाले मा-बापोंको अिस बातकी खायश रहेगी कि, कोअी बुढ़ा मिलें; और हम पैसे लेकर लड़की देवें। अिस लिये मुनासिब है कि-लड़कीके पैसे नहीं लेना।

दुल्हेके घर विवाहकी तयारी—

विवाहके दिनोंमें घरके सामने निहायत अुमदा मंडप बनाना चाहिये कि-जिसके थंभों पर तरह-तरहकी कारीगरी की गअी हो। हमेशां अुमदा बाजा नौबतखाना या रौशन-चौकी बजती रहें। तरह-तरहके गहने कपड़ें-पुशाकें, घरपे धजा—

पताका-झडे, कलसिया, तोरण, वंदरवाल, शमियाने, चाँदनी, कनात और गालिचोंकी सजावट हो। जात-बिगदरी, दोस्त, और मेल-मुलाकातियोंको सुबह-शाम खाना खिलाना, और खातिर व तवज्जे करना दुनियादारीकी रसम है। दुल्हेके बदन पर वटना अित्तर-फुलेल, ओर गहने-कपड़ोंकी तयारी, रथ वग्गी अिक्के मशालची हाथी और घोडे अपनी ताकात हो मगाना। मगर पेस्तर अपना दौलतखाना देख लेना कि, खजाना तर है या खुश्क ?। खजाना देखकर सब काम करना चाहिये। दुनियाकी वाह-वाहके भरूसें रहना कोअी जरूरत नहीं। बिछौना देखकर पाँव पसारना अच्छा है। कर्जा लेकर जो लोग विवाह करते हैं, ज्ञानी लोग अुनको नीरे जूठे और तुफान मचानेवाले फरमाते हैं। अैसी खुशखबरी किस कामकी जो पीछेसें तक्लीफ अुठाना पडें ?। सब काममे ब्याजवी खर्च करना चाहिये। न सूम बनों न फेजवक्ष। मामुली खर्च करना कोअी हर्जकी बात नहीं। चारण, भाट और सेवकोंकी वाह-वाहसें फुल जाना नहीं चाहिये। जो लोग अपनी हेसियतको देखते नहीं, और खर्च कर डालते हैं, अुनकी बराबर कोअी बेवकुफ नहीं।

दुल्हनके घर विवाहकी तयारी—

विवाहके दिनोंमें दुल्हनके मा-बापोंको चाहिये कि, घरके सामने निहायत अुमदा मडप बनावें, जिसके थभो पर पुतली नाच करती हो। हमेशा अुमदा बाजा बजें और ओरतें गीत-गान करती रहें। दुल्हनके बदन पर वटना अित्तर-फुलेल, ओर गहने-कपडोंका सिंगार किया जाय। घर पर तोरण, बदरवाल, धजा-पताका-झडे, शमियाने, चादनी, कनात, ओर गालिचोंकी सजावट करना। कोतुकागार, जवारारोपन, वेदी, हरे बाँसकी चोअुरी, तथा दुल्हेको पोंखनेके लिये हल मुशल घुसर ओर मथान तयार रहें। दूर्वा, चन्दन, केसर, कुकुम, मोड, लवण-सपुट, चोकी, तिल और जव, वगेरा चीजें जो मुफीद-मतलब

जात-विरादरीको, दोस्तोंको, और मेल-
विवाहके दर्कार हो, मौजूद रहना चाहिये; कि वख्त पर दिक्कत उठाना न पडें। जात-विरादरीको, दोस्तोंको, और मेल-
मुलाकातीको सुवह-शाम खाना खिलाना, मेवा अित्तर और पान-वीडीसें खातिर करना दुनियादारीकी रसम है। मगर
अितना याद रहें-अधर्मी और नास्तिकोंकी खातिर करना कोअी जरूरत नहीं। दुल्हनके सिर फुलोंका सिंगार, कसुंवी ओढ़ना,
पाँवमें नेवर, हाथमें कंकन, गलेमें मोतियोंका हार-कंठी, कमरमें सुन्नेकी जंजीर, कानमें कर्ण-फूल, नाकमें नथ-फूल, निलारमें
टीका, आँखोंमें सुरमा, और हाथ-पाँवके तलोंमें अलक्त रंग; वगेरा चीज़ें सूत्र-आवश्यकटीकामें तीर्थंकर श्री ऋषभदेवके
विवाहमें कही गअी है। जिसको शक हो देख लेवें।

विवाहमें दौलत लुटाना और धर्मकाममें कौड़ी भी खर्च न करना, यह अधर्मियोंका काम है। तारिफ़ अुनकी है जो
धर्मको बढ़कर और दुनियाको पीछे समझें, और अुसी मुआफिक वर्ताव करें। अगर कोअी कहें कि, अिन दिनोंमें हमको
फुरसद नहीं; तो अुनको मालुम करना चाहिये कि, ये सब झूठे वहाने हैं। सव फुरसद है, और सव काम करते हो;
अलवते ! न करनेके कअी वहाने हैं। देख लो ! खान-पान और खेल-तमाशोंके लिये कितनी फुरसद मिलती है ?। तरह-
तरहके बाजे तवाअिफें और भांड कहाँ-कहाँसें तार देकर बुलवाते हो ?। अैसे कामोंमें फुरसद, और धर्मकामके लिये फुरसद
नहीं; अिसीसे कहा जाता है तुमको धर्म पर राग नहीं है। याद रक्खो ! पूर्व जन्ममें धर्म किया था अुसकी वदौलत सुख-
चैन पाये हो, यहाँ नहीं करते तो तुम्हारे जैसा कोअी अहमक नहीं। जिसीसें आराम पाया अुसीको भूले हुवे हो।
अधर्मकृत्यमें हजारों रूपये लगाते हो, मगर धर्मकृत्यमें ५-१० भी नहीं लगानेवाला परभवमें जरूर पस्तायगा। देखो !
विवाहके दिनोंमें खान-पानादिके लिये कितनी तयारी करते हो ?। जो शख्स धर्ममें पावंद है अुसके लिये हमेशां फुरसद है,
जो लोग दुनियाको ही अुमदा समझे हुअे हें अुनके लिये वेशक फुरसद नहीं है !।

मुकरर लग्नका मालुम करना।

विवाह-मुहूर्त पक्का हो जाय तब वरके मबन्धि लोग कन्याके सबन्धियोंको लिख भेजें कि—अमुक रोज विवाह-मुहूर्त मुकरर किया गया है। पीछे कन्याके सबन्धिलोग नजुमी-ज्योतिषीको बुल्वाकर लग्नपत्र लिखावें कि, हमारे कुलकी अमुक नामकी कन्या तुम्हारे कुलके अमुक नामके पुरुषको दी जावेगी, अुसका यह लग्नपत्र भेजा जाता है। लग्नपत्र जब वरके माता-पिताको मिलें तब अुसको खुशीके साथ लेवें, और अुस वक्त कुलगुरु अिस आगे लिखे हुअे मन्त्रको पढें—

“ॐ अर्हँ। परमसौभाग्याय, परमसुखाय, परमभोगाय, परमधर्माय, परमयशसे, परमसंतानाय, भोगोपभोगान्तराय-व्यवच्छेदाय, इमाम् अमुकनाम्नीं कन्याम् अमुकगोत्राम् अमुकनाम्ने वराय अमुकगोत्राय ददाति। प्रतिगृहाण। अर्हं ॐ॥

फिर वरके माता-पिता गहनें कपडें और मेवा कन्याके घर भेजें। जब करीब पद्रह रौज विवाहके पेस्तर रह जाय, तब अच्छे वख्त पर सोहागन औरतें गीत गाती हुअी बाजे वगेरा जुलुसके साथ कुभारके घर मगल-कलश लेनेको जाय, और नये बने हुवे मिट्टीके चार मगल-कलश बधाय कर अपने घर लावें, और कौतुकागार यानि मातृगृहमें स्थापन करें। जैसे वरके घर मगल-कलश लाना फरमाया, कन्याके घर भी अिसी तरह लाना चाहिये, और कौतुकागारकी स्थापना भी करनी चाहिये। दोनोंके घर गीत-गान होना, दुल्हे-दुल्हनको पीठी-वटना लगाना, और सिंगार पहनाना जारी रहें।

कअी लोग सवाल करते हैं कि, जबसें दुल्हे-दुल्हनको वटना लगाना शुरू हो जिनपूजा नहीं करना चाहिये। मगर अिसके जवाबमें शास्त्रकारोंका अैसा फरमान है कि, जिनपूजा जरूर करना चाहिये। श्रावकको जिनपूजा बराबर सम्यक्त्वको

निर्मल करनेकी दूसरी कोओी क्रिया नहीं है। देखो ! ज्ञातासूत्रमें द्रौपदीजीने विवाहके दिनोंमें हमेशां जिनपूजा की थी, अैसा लेख मौजुद है। अगर तुमको धर्म प्यारा है तो शास्त्रकी बात पर अमल करो। दुनियामें तीन हिस्से लोग अधर्मी हैं, अगर तुमको अधर्मियोंसें शामील होना हो तो अुनके कहने पर झूको। मगर याद रक्खो ! अखीरमें तुमको धर्म ही तारनेवाला है; दुनिया, वेटा-वेटी, और दुनियाकी रसमें तुमको तारनेवाली नहीं है। आराम और तकलीफ़ अपनी तकदीरके तालुक है, नाहक वहेममें पड़ना तुमको लाजिम नहीं है।

कुंभारके घरसें मंगल-कलश लाना अिस लिये हक फरमाया कि—प्रस्तुत समयचक्रमें तीर्थंकर श्री ऋषभदेवके वख्त पेस्तर कुंभकारशिल्प जारी हुवा; अिस लिये दुनियादारीके काममें पेस्तर अुसकी अिज्जत करना फरमाओी गओी। लाये हुअे चार मंगल-कलशको अपने घर अच्छे मकानमें स्थापन करना, और कुंकुम चावल तथा फूलसें अुनका अभिषेक करना: जिससें आमलोगोंमें जाहिर हो जाय कि अिनके घर विवाहका काम शुरू हुवा है। मातृगृहमें जिस तरह जवारारोपन, सप्त कुलकरकी स्थापना, और शासनदेवीकी स्थापना वगेरा जो जो काररवाओी होना चाहिये सो आगे लिखते है, देख लो।

जवारारोपन।

जव विवाह-मुहूर्तके पेस्तर पाँच-सात रोज रह जाय तव वर-कन्या दोनोंके घर जवारारोपन करना चाहिये। पाँच प्याले मिट्टीके लेकर अुनमें जव-धान्य बोना, और अुनको अुन मंगल-कलशोंके पास स्थापन करना; जो पेस्तर कर चूके है। अिस तरह जवारारोपन किये वाद वहाँ ही अुनके पास अेक चौकी पर सात कुलकरोंकी और अेक चौकी पर शासनदेवीकी स्थापना करके कौतुकागारकी स्थापना यहाँ नीचे दिखलाओी है अुस मुआफिक करना चाहिये—

कौतुकागारको स्थापनाका नकशा, जिसको मातृगृह बोलते है—

मगल–कलश—

स्वस्तिक— 卐

षोडश विद्यादेवीकी स्थापना—

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀
❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

० ० मगल–कलश २.
((जवारेके प्याले २.

सप्त कुलकरकी स्थापना
❀

(जवारेका प्याला १

शासनदेवीकी स्थापना.
❀

० ० मगल कलश २.
((जवारेके प्याले २.

मन्त्र आगे मूलविधिमे पृष्ट १५२ से १५४ तक छपे हैं वहाँसे देख लेना। अिस प्रकार कुलकरोंकी स्थापनाविधि और पूजाविधि समाप्त हुअी।

शासनदेवीकी स्थापनाविधि और पूजाविधि—

कुलकरोंकी स्थापनाके बाद बाँयी तर्फकी चौकी पर शासनदेवीकी स्थापना करना चाहिये। पट्टका अभिषेक जैसे कुलकरोंके वखतमे " ॐ आधाराय नमः० " अित्यादि, और दूसरा मन्त्र " ॐ अमृते अमृतोद्भवे० " वगेरा पढ़कर कुंकुम चंदन और अक्षतसे किया था वैसे ही शासनदेवीके पट्टका भी करना, और अुस पर चावलोंका अेक कमल आठ पांखडीका बनाना। पीछे निम्न लिखित मन्त्र पढ़ना—

" ॐ नमो भगवति शासनदेवि ! चतुर्थगुणस्थानवर्तिनि जैनेन्द्रधर्मालंकारसज्जिताङ्गि पुण्यमुखि ! अस्मिन् विवाहमहोत्सवे आगच्छ आगच्छ, इह स्थाने तिष्ठ तिष्ठ, सन्निहिता भव भव, धूपं दीपं नैवेद्यं अलङ्कारं गृहाण गृहाण, सर्वसमीहितं कुरु कुरु स्वाहा ॥ "

अिस मन्त्रको पढ़कर अुस कमल पर श्रीफल और पुष्पमाल स्थापन करना, और धूप दीप नैवेद्य मुद्रा वगेरा चढ़ाना।

ध्यान षोडश विद्यादेवीका।

पेस्तर सोलह विद्यादेवीके नाम सुनो—रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृङ्खला, वज्राङ्कुशी, अप्रतिचक्रा, नरदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गान्धारी, महाज्वाला, मानवी, वैरुट्या, अच्छुप्ता, मानसी और महामानसी; ये सोलह विद्यादेवीके नाम हुवे। पेस्तर

जो लिख चूके हैं कि, सोलह विद्यादेवीके सोलक टीके दिवार पर लगाना, सो अिन्हीके नाम बोलकर लगाना चाहिये।

॥ इस प्रकार बयान कौतुकागारका पूर्ण हुआ ॥

वैदिक मजहबवाले जो गणपति वगैरा देवताओंकी स्थापना करते हैं वह अुनके देवोंकी स्थापना है। खास जैनमतवालोंको अपने कुलकर वगैराकी स्थापना करना चाहिये, जैसा कि अुपर लिख आये। सोलह विद्यादेवीके नाममें जो काली और महाकाली देवीके नाम हैं वे जैन मजहबकी देवी जानना। जिस काली और महाकालीको वैदिक मजहबवाले मजूर रखते हैं अुनका बयान यहाँ नहीं है, क्यों कि जैनमें किसी देव-देवीके सामने मास-मदिराकी बलि रखना नहीं फरमाया।

अन्यदर्शनी लोग गणपतिको अिस प्रकार मानते हैं कि, वह अुमा-अुर्वशीका पाला हुआ अेक लड़का था, जिसका सिर महेश्वरने काटा। बाद रोषित हुअी पार्वतीको मनानेके लिये हाथीका सिर चेपकर खड़ा किया। देखो अिन्हीं मतवालेका बनाया हुआ 'गणेश पुराण'। अपना ही सिर कटानेवाला दूसरेका विघ्न कैसा दूर करेगा? कैसी अद्भुत कहानी है?। अिस लिये जैनियोंकी मर्यादा कुलकरोंकी स्थापना करनेकी यथार्थ है। ये सातों ही प्रथम नीतिके बीज बोनेवाले राजा हुये थे।

सोलह विद्यादेवियोंमें विद्यादेवी काली-महाकाली जो ब्रह्माणी है वह महा अुत्तमा है। अन्यदर्शनियों कालीदेवी रुद्राणीको मानते हैं, जिसको बकरा और भैंसा मारके मास और मदिराका बलिदान देते हैं। जैनी न अैसे देव-देवीको पूजते हैं, और न अैसा अपवित्र द्रव्य चढाते हैं। मगर जो नाममात्र जैन हैं, जिनको जैनधर्म क्या वस्तु है अितना भी ज्ञान नहीं है, अुनको अशिक्षित क्रियादमियोंने जिनमदिरमें जानेसें हिंसारूप पाप दिखाके जानेका निषेध कराया, और अैसी हिंसक कालिकाको मनाने जाते हैं। यह सब अज्ञानका परिणाम है।

कौतुकागारकी स्थापना वर और कन्या—दोनोंके घर की जाती है, और विवाह पूर्ण हुवे बाद सात रोज़ तक रक्खी जाती है। जहाँ जहाँ आगे 'कौतुकागार' अैसा नाम लिखा देखो वहाँ अिसीको जान लेना; अिसका दूसरा नाम 'मातृ-स्थापना' भी दिखला आये हैं।

चढ़ना बरातका और बयान तोरण छवनेका।

बरात चढ़नेकी धूम मुल्क-मुल्कमें अलग-अलग है; मगर मतलब सबका अेक है कि—दुल्हनके घर दुल्हेको बाजे वगेरा जुलूससें जाना, और विवाह करके अपने घरको आना। बहोतसे मुल्कवालें हज़ारांह रूपयेका बारूदखाना जलाकर फिज़ूल खर्च कर डालते हैं, मगर अच्छे लोगोंने अिस रसमको बिलकुल पसंद नहीं की। कअी मुल्कवाले रंडी और भांडोंको नचाकर अपनी वाह-वाह कराते हैं, मगर यह रसम भी अच्छे लोगोंने पसंद नहीं की। मुल्क पूरब, पंजाब, मारवाड़ और मध्यहिंदवाले खेल-तमाशोंमें हज़ारांह-लाखहां रूपये लगा देते हैं; मगर मुल्क गुजरात, मालवा और दक्खनवाले इस रसमसें कुच्छ-कुच्छ बचे हैं। बिल्कुल बचना तो बहुत ही मुश्किल है; मगर अलबत्ते, गेरमुल्कोंसें अुक्त मुल्कोंमें अिश्क बहुत कम है। जिन्होंनें मुल्क-मुल्ककी सफर कर ली है, अुनको बेशक ! मालूम होगा कि, पूरब पंजाब और मध्यहिंदके मुल्कवाले अिश्कमें, खेल-तमाशोंमें, और नाच-मुज़रोंमें तबाह हो गये, और अब भी होते जाते हैं। चाहे अमीर हो या गरीब, मगर विवाहकी खुशी सबको अेकसी होती है। बुज़र्गोंसें सुनते आते हैं कि, जब दुल्हा बरातको चढ़े तब तीन रोजके लिये वह खुद अपने दिलसें राजा और शहनशाह है। कोअी अमीर अिस बातका घमंड न लावें कि—जैसी विवाहके वख्त मुझे खुशी हुअी वैसी किसीको न हुअी होगी !; विवाहकी खुशी गरीब और अमीर सबको अेकसी होती है।

दुल्हा जब बरातको चढें तब अुसको अच्छे गहने-कपड़े पहनकर घोडेसवार होकर चलना चाहिये। सबसे आगे डंका-निशान, हाथी, घोडे, बाजा और बराती लोग चलें। अुसके बाद दुल्हेकी सवारी, अुसके पीछे सोहागन औरतें मगल-गीत गाती हुअी पैदल चले। दुल्हेकी मा मगल-दीवडा लेकर प्रयाण करें। दुनियादारोंको विवाहसें बढ़कर दूसरी कोअी खुशी नहीं होती। कअी मुल्कोंमे औरतें रथ पर सवार होकर बरातके पीछे चलती हैं, और कअी मुल्कोंमे पैदल ही चलती हैं, जहाँ जैसा योग हो वैसे करना फर्ज है। जब घरसें बरात रवाना हो, तब कुलगुरु अिस आगे लिखे हुअे शांतिमंत्रको मनमें पढ़ता हुआ साथ चलें—

“ ॐ अर्हं। आदिमो अर्हन्, आदिमो नृप', आदिमो यन्ता, आदिमो नियन्ता, आदिमो गुरुः० ” इत्यादि।

यह शान्तिमन्त्र आगे मूल विधिमे पृष्ठ १५७–१५८ में सपूर्ण छपा है, वहाँसें देख लेना। अिस तरह कुलगुरु मनमे अिस शान्तिमन्त्रको पढ़ता रहें, और बरात घरसें रवाना होकर पेस्तर जिनमदिरमे दर्शन-वन्दनके लिये जावें, और जिनेन्द्रकी मूर्तिके सामने रुपया महोर जो कुच्छ ताकात हो चढावें। जिनेन्द्रकी मूर्तिके सामने जो कुच्छ चढ़ावा चढ़े सो मदिरजीके खजानेमें जमा होना चाहिये। कअी जगह पूजारी या सेवक अुठा लेते हैं, और अपना हक बताकर अपने घर ले जाते हैं, यह किस कदर बेअिन्साफीकी बात है ?। कोअी जैनशास्त्र नहीं फरमाता कि अिस तरह करना। जिनमदिरसें लोटकर निर्ग्रन्थ गुरुके पास अुनके दर्शन-वन्दन करनेको जाय, और ज्ञान-पुस्तक पर रूपया महोर जसी ताकात हो चढावें। निग्रन्थ गुरु अुस द्रव्यको ज्ञान लिखानेके काममें लगा देवें। देव-गुरुके दर्शन करके बरात अगाड़ी बढें और मुकाम-ब-मुकाम डेहरा देते दुल्हनके शहरको पहुँचे। दुल्हनके मा-बाप बरातकी पेशवाअी करें, और दुल्हा कुल-बरातके साथ दुल्हनके घर तोरण छूनेको जाय। दुल्हनके घर मडपके दरवाजे पर आम्रपत्रका तोरण लगा रहता है अुसको अपने दाहने हाथसें स्पर्श करें।

राजे लोग तलवारसें तोरणका स्पर्श करते हैं। मुल्क-मुल्कमें तरह-तरहके रवाज हैं। कओ मुल्कमें काष्ठका और कओ मुल्कमें चांदीका तोरण लगाते हैं। पेस्तरके जमानेमें जब लोग निहायत दौलतमंद थे, सुन्ना और जवाहिरातके तोरण लगाते थे। आज तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, मांडलिक और छत्रपति राजाओंका जमाना रहा नहीं; आम्रपत्रके तोरणसें ही काम चलनेका जारी हुवा। बुझर्गोंने आम्रपत्रको मांगलिक और तोफा चीज फरमायी, अिस लिये यह रसम मंजुर रक्खी गओी है।

बरात और दुल्हा तोरणस्पर्श करके पीछे लोटे, और जहाँ पर बरातका डेहरा मुकरर किया गया हो वहाँ जाय। तोरण छवते वख्त अगर दुल्हेका चन्द्रस्वर चलता हो तो बाँये हाथसे तोरणका स्पर्श करना चाहिये। चन्द्रस्वर अमृतनाडी है, अिसमें किया हुवा काम निहायत फायदेमंद होता है। बरातका डेहरा अच्छी तौरसें हो जाय तब दुल्हन घोड़े पर सवार होकर बाजे वगेरा जुलुससें दुल्हेके डेहरे पर गोंद भरानेको आवें। दुल्हेके मा-बाप मेवा और नारियलमें दुल्हनकी गोंद भरें। मारवाड़ और मुल्क पूरबके श्रावकोंने पर्देकी रसम चलाकर कओी बातें छोड़ दी है। फिर दुल्हनके घरसें दुल्हेके लिये गहने कपड़े भेट तरीके भेजें जाय, और तयारी सब कामकी की जाय।

विवाह-मुहूर्तमें जब घंटाभरका अर्सा बाकी रहें, तब दुल्हा घोड़े पर सवार होकर बराती लोगोंके साथ बाजे वगेरा जुलुससें दुल्हनके घर मंडपद्वार पर जावें। वहाँ सासु अेक मिट्टीका घड़ा और कुंकुम वगेरा चीजें तिलक करनेकी लेकर सामने आवें, और दुल्हेको तिलक करें। दुल्हा अुस घड़ेमें रूपया महोर जो कुच्छ डालना हो डालें। सासु अुस वख्त दुल्हेके पाँवको दूधसें धोवें; और धुसर, मंथान, मुसल, हल और चरखेकी त्राकरो दुल्हेको पोंखे; यानि अिन चीज़ोंको लाल कपड़ेमें लपेटकर अलग-अलग तीन दफे दुल्हेके मस्तक तक फिराती हुओ अुतारें। ये चीज़ें छोटी छोटी बनी हुओ अिसी कामके लिये तयार रहती हैं।

ज्ञानी लोग अिनका मतलब अिस तरह बयान करते हैं कि—सासु जो तुमको धुसरा गाडीका दिखलाती है, मतलब अुसका अैसा समझो कि, तुम हमेशा बैलकी तरह दुनियामें जोते रहोगे, विवाह करनेसें कोअी फायदा नहीं, अब भी होशियार हो जाओ, और विवाह मत करो। दोयम दर्जे सासु जो तुमको मथान दिखलाती है, मतलब अुसका यह है कि, विवाह हुअे बाद तुम दुनियादारीके काममें दही और छासकी तरह मथे जाओगे। मुसल दिखलानेका मतलब यह है कि, तुम अनाजकी तरह खडाते रहोगे। हल दिखलानेका मतलब यह है कि, तुम जमीनकी तरह खेडाते रहोगे। चरखेकी त्राक दिखलानेका मतलब अैसा समझो कि, तुम मायानालसें लपेटे रहोगे। सासु अिस तरकीबसें तुमको होशियार करती है कि, अब भी समझ लो। विवाहमें कोअी फायदा नहीं, मुनासिब है पीछे लोट जाना।

मगर दुल्हा अिसका मायना अैसा समझता है कि, सासु जो हमको ये ये चीजें दिखलाती है अिससें हमारे घर अिन अिन चीजोंके फायदे होते रहेंगे। जैसे-धुसरा दिखलानेसें जाना जाता है कि, हमारे घर गाडी-बैल बहोत चलते रहेंगे। मथानके दिखलानेसें जाना जाता है कि, हमारे घर दूध-दही बहोत होगा। मुसल दिखलानेसें जाना जाता है कि, हमारे घर अनाज खूब खडाता रहेगा। हल दिखलानेसें जाना जाता है कि, हमारे घर खेती-वाडी बहोत होगी। और चरखेकी त्राक दिखलानेसें जाना जाता है कि, हम अिसकी लड़कीके साथ महोब्बतकी डोरसें हमेशा बधे रहेंगे। अिस लिये विवाहका होना बहेत्तर है, अैसा मानकर परवानगी देता है।

अितने काम हुवे बाद सासु दुलहेको मंडपके भीतर आनेकी अगाही देवें। दुल्हा सासुने रक्खे हुअे लवण-सपुट पर कदम रख कर अगाडी धर्दे, और कौतुकागारमें जावे। कौतुकागारका बयान पेस्तर दे चूके हैं। दुल्हन सिंगार पहनकर कौतुकागारमें पेस्तरसें हाजिर रहें।

दुल्हनको विवाहके वख्त मुनासिब है कि, कसुंभी वस्त्र पहने। कर्णफुल, नथ, मोतियोंका हार, बाजुबंध, कंकण, नेवर, शृंखला, अंगूठी, फूल-गजरे और अित्तर-फुलेल वगेरा सिंगारकी चीज हैं। दुल्हा जिस वख्त कौतुकागारमें कदम रक्खें, दुल्हनको लाजिम है कि खड़ी होकर ताजीम देवें। औरतके लिये खाविंद हमेशां काबिल अिज्जत करने योग्य है। दुल्हे और दुल्हनके हाथ पर मिंढोल अिस लिये बांधा जाता है कि, कामजन्य फलको मदनफलकी तरह हांसिल करें। कौतुकागारमें दुल्हनकी तर्फदार औरतें मंगल-गीत गावें, और खुश होकर दुल्हेकी अिज्जत करें। फिर कुलगुरु दुल्हे-दुल्हनको सप्त कुलकरकी स्थापनाके सामने अिस तरह बैठावें कि, दुल्हन दुल्हेकी दहनी-जमनी तर्फ आ जाय। फिर केसर चंदन श्रीफल और सुपारीसें सप्त कुलकरोंकी और शासनदेवीकी पूजा करावें, यानि सात श्रीफल सात कुलकरोंकी स्थापना पर, और अेक श्रीफल शासनदेवीकी स्थापना पर चढ़ावें; और केसर-चंदन तथा कुंकुमके टीके दिलावें। अुसके बाद लाल सूतकी वरमाल बनाकर दुल्हे-दुल्हनको पहनावें, और दुल्हनकी चुंदरीके साथ दुल्हेके दुपट्टेका ग्रन्थि-बंधन करें। पीसे हुअे शमीवृक्षके साथ पींपलवृक्षकी छाल मिलाकर दोनोंके हाथमें देवें। अगर वख्त पर ये चीज़ हाजिर न हो तो मेंदीके पत्ते और नागरवेलके पान दोनोंके हाथमें देकर हस्तमेलाप करावें, और अिस आगे बतलाये हुअे हस्तमेलापके मन्त्रको पढ़ें—

मंत्र-हस्तमेलापका—

" ॐ अर्हं। आत्माऽसि, जीवोऽसि, समकालोऽसि, समचित्तोऽसि, समकर्माऽसि० " इत्यादि।

यह हस्तमेलापका मन्त्र आगे मूलविधिमें पृष्ठ १६० में संपूर्ण छपा है, वहाँसें देख लेना।

फिर दुल्हनके रिस्तेदार लोग मंडपमे वेदी वनानेकी तयारी करें, जो चार हाथ लंबी होनी चाहिये। अुसके चारों कोनें पर हरे वाँसकी चौअुरी वनावें। सात या नव छोटे-छोटे मिट्टीके घडे अेक-अेक तर्फ क्रमसें वडे पर छोटा अिस तरह रक्खें, और त्रिकोण हरे वाँससें अुनका वंधन करें। अिस तरह चौअुरी वनाकर चारों तर्फ आम्रपत्रका तोरण वाँधे, और वेदीके ठीक वीचमे त्रिकोण आकारका अेक अग्निकुंड वनावें। फिर कुलगुरु कौतुकागारसें वहार मंडपमे आवें, और अुस वेदीकी प्रतिष्ठा करें। अुस वक्त पुष्प चावल और कुंकुम हाथमे लेकर वेदी-प्रतिष्ठाका मन्त्र पढें, जो आगे दिखलाते हैं—

मन्त्र वेदी-प्रतिष्ठाका—

"ॐ नमः क्षेत्रदेवतायै शिवायै क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षौँ क्षः। इह विवाहमण्डपे आगच्छ आगच्छ। इह बलिपरिभोग्य गृह्ण गृह्ण। भोगं देहि, सुखं देहि, यशो देहि, सन्ततिं देहि, ऋद्धिं देहि, वृद्धिं देहि, बुद्धिं देहि, सर्वं समीहितं देहि देहि स्वाहा ॥"

अिस मन्त्रको पढ़कर वेदीके चारों कोनें पर पुष्प चावल और कुंकुम वगेरा चढा देवें। चौअुरीके कलशों पर लाल कपडा गजभर लंबा-चौडा लेकर ढके, और फूलकी माला अुन पर चढावें। फिर तोरणकी प्रतिष्ठाका मन्त्र पढकर तोरण-प्रतिष्ठा करें—

मंत्र तोरण-प्रतिष्ठाका—

"ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो द्वारश्रिये। सर्वपूजिते सर्वमानिते सर्वप्रधाने! इह तोरणस्था सर्वं समीहितं देहि देहि स्वाहा ॥"

अिस तरह तोरणकी प्रतिष्ठा करके अुस पर कुंकुमके छींटे डालें। फिर त्रिकोणाकर अग्निकुंडमें अग्निको स्थापन करें, और अिस आगे लिखे हुअे मन्त्रको पढ़ें—

मंत्र अग्नि-स्थापनका—

ॐ रं रां रीं रूं रौं रः। नमो अग्नये, नमो बृहद्भानवे, नमो अनन्ततेजसे, नमो अनन्तवीर्याय, नमो अनन्तगुणाय, नमो हिरण्यरेतसे, नमश्छागवाहनाय, नमो हव्याशनाय। अत्र कुण्डे आगच्छ आगच्छ, अवतर अवतर, तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा॥ "

अिस तरह मंत्र पढ़कर त्रिकोण आकार कुंडमें अग्निको स्थापन करें, और कौतुकागारसें दुल्हे-दुल्हनको मंडपकी वेदीमें लावें। वेदी पर चढ़ते वख्त दक्खनके दरवाजेसे चढ़ना चाहिये। खास वेदी पर पहुँचे वाद अलग-अलग चौकी पर दुल्हे-दुल्हनको पूर्व दिशा तर्फ मुँह कराके बैठावें, और कुलगुरु उत्तर दिशा तर्फ मुँह करके अुनके पास बैठें। कअी मुल्कमें दुल्हे-दुल्हनका हस्तमेलन वेदिकामें कराते हैं; मगर नहीं। आवश्यकसूत्रमें जहाँ श्री ऋषभदेव तीर्थंकरके विवाहका बयान चला है, कौतुकागारमें हस्तमेलन करानेका लेख है; अिस लिये वहाँ ही हस्तमेलन होना ठीक है।

चौअुरीमें बैठे वाद कुलगुरु त्रिकोण आकार कुंडमें, जिसमें पेस्तर अग्नि स्थापन की है, अुसको पींपल या कवीठकी लकड़ीसें तेज करें; और अुसमें घी, मिश्री, जव, तिल, अिंद्रजव, नागरमोथा, छाड़छड़ीला, लोंग, अिलाची, कपूरकाचली, और चंदनका वुरा डालकर होम करें; और दुल्हेकी दाहनी तर्फ वैठी हुअी दुल्हनको दुल्हेके सामने वैठावें। अुस वख्त आगे लिखे हुअे मन्त्रको पढ़ें—

मंत्र–अभिषेकका—

“ ॐ अर्हं । इदमासनमध्यासीनौ स्वध्यासीनौ स्थितौ सुस्थितौ; तदस्तु वां सनातनः संगमः । अर्हं ॐ ॥ ”

अिस तरह मन्त्र पढ़कर दूर्वासें पवित्र जलके जरिये दुल्हे–दुल्हनको अभिषेक करें। पीछे दुल्हनका दादा, पिता, बड़ा भाअी, या कोअी वृद्ध पुरुष हो, दुल्हे–दुल्हनके पास आनकर बैठे। अुस वख्त कुलगुरु “नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः” अैसा पढ़कर कहे कि—“आपके गोत्रका सवन्ध मैंने जाना, मगर आमलोगोंके रूबरु जाहिर होना चाहिये”। अैसा सुनकर दुल्हेके रिस्तेदार लोग अपना गोत्र जाति और वश जाहिर करें। बाद दुल्हनके रिस्तेदार लोग भी अिसी तरह अपना गोत्र जाति और वश जाहिर करें। फिर कुलगुरु अिस तरह गोत्रादिका अुच्चारण करें—

“ ॐ अर्हं । अमुकगोत्रीयः, इयत्प्रवरः, अमुकज्ञातीयः, अमुकान्वयः, अमुकप्रपौत्रः० ” ॥

अित्यादि आगे मूलविधिमें पृष्ठ १६६–१६७ मे छपा है अुस मुताबिक संपूर्ण बोलें। तदनतर दुल्हे–दुल्हनके दाहने हाथसें सुगध, पुष्प, धूप, और नैवेद्य वगेरा चीजोंसें अग्निकी पूजा कराकर चावलकी धानी अग्निमें प्रक्षेप करावें। पीछें अपनी दाहनी तर्फ दुल्हेको और बॉयी तर्फ दुल्हनको बैठाकर अिस आगे लिखे हुअे मन्त्रको पढ़ें—

चार फेरेके मन्त्रो और उनकी विधि–

“ ॐ अर्हं । अनादि विश्वम्, अनादिरात्मा, अनादिः कालः, अनादि कर्म, अनादिः संवन्धो देहिनाम्० ”

अित्यादि आगे मूलविधिमें पृष्ठ १६७ में छपा हुआ अिस मन्त्रको संपूर्ण पढ़कर, कुलगुरु अिस आगे दिखलाये हुअे पाठका अुच्चारण करें—

"तदस्तु वां सिद्धप्रत्यक्षं, केवलिप्रत्यक्षं, चतुर्निकायदेवप्रत्यक्षं, विवाहप्रधानाऽग्निप्रत्यक्षं०"

अित्यादि आगे मूलविधिमें पृष्ठ १६८ में छपा है अुस मुताबिक संपूर्ण बोलकर कहे कि—"आपका विवाह-संबन्ध सिद्ध प्रत्यक्ष, केवलि प्रत्यक्ष और माता-पितादिके प्रत्यक्ष अुमदा तौरसें हुवा, अब अग्निकी चौफेर परिक्रमा दीजिये"। अैसा सुनकर दुल्हा-दुल्हन ग्रन्थिबंधन सहित अग्निकी चौतर्फ प्रथम फेरा फिरें। दुल्हन आगे और दुल्हा पीछे रहें १॥

अिस तरह अवल फेरा फिरकर दोनों पूर्वोक्त आसन पर बैठें, और चावलकी धानी हाथमें रक्खें। कुलगुरु अुस वक्त अिस आगे दिखलाये हुअे मन्त्रको पढ़ें—

"ॐ अर्हं। कर्माऽस्ति, मोहनीयमस्ति, दीर्घस्थित्यस्ति, निबिडमस्ति, दुश्छेद्यमस्ति०"

अित्यादि आगे मूलविधिमें पृष्ठ १६९ में छपा हुआ अिस मन्त्रको संपूर्ण पढ़कर कुलगुरु दुल्हे-दुल्हनको कहें—"अग्निकी चौतर्फ प्रदक्षिणा दीजिये"। अैसा सुनकर दुल्हा-दुल्हन ग्रन्थिबंधन सहित दूसरा फेरा फिरें, और धानीकी मुष्टि अग्निमें डालें। अिस दूसरे फेरेमें भी दुल्हन अगाड़ी रहें २॥

फिर अुसी तरह दुल्हे-दुल्हन चावलोंकी धानी हाथमें लेकर आसन पर बैठें, और कुलगुरु अिस आगे लिखे हुअे मन्त्रको पढ़ें—

"ॐ अर्हं। कर्माऽस्ति, वेदनीयमस्ति, सातमस्ति, असातमस्ति। सुवेद्यं सातम्०"

अित्यादि आगे मूलविधिमे पृष्ठ १७० मे छपा हुआ अिस मन्त्रको सपूर्ण पढ़कर कुलगुरु दुल्हे-दुल्हनको कहें—" अग्निकी चोतर्फ प्रदक्षिणा दीजिये "। अैसा सुनकर दुल्हा-दुल्हन ग्रन्थिबंधन सहित तीसरा फेरा फिरें, और धानीकी मुष्टि अग्निमें डालें। अिस फेरेमे भी दुल्हन अगाडी रहें, और अुसी तरह चावलोंकी धानी हाथमे लेकर आसन पर बैठे ३ ॥

पीछे कुलगुरु अिस आगे लिखे हुअे मन्त्रको पढ़ें—

" ॐ अर्हं। सहजोऽस्ति, स्वभावोऽस्ति, सबन्धोऽस्ति, प्रतिबन्धोऽस्ति। मोहनीयमस्ति, वेदनीयमस्ति, नामाऽस्ति, गोत्रमस्ति, आयुरस्ति। हेतुरस्ति, आश्रवबद्धमस्ति, क्रियाबद्धमस्ति, कायबद्धमस्ति। तदस्ति सांसारिकः सबन्धः। अर्हं ॐ ॥ "

अिस मन्त्रके पूरे होने पर कुलगुरु दुल्हनके पिता, चाचा, बड़ा भाअी, या जो कोअी कुलमें बडा हो अुसके हाथमें तिल, जव, कुश और जल देकर अिस प्रकार कहें—

" अद्य अमुकसंवत्सरे, अमुकाऽयने, अमुकर्तौ, अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकवासरे, अमुकनक्षत्रे, अमुकयोगे, अमुककरणे, अमुकमुहूर्ते, पूर्वकर्मसंबन्धाऽनुबद्धा वस्त्र-गन्ध-माल्यालकृता सुवर्ण रूप्य-मणिभूषणभूषितां कन्यां ददात्ययम्। प्रतिगृह्णीष्व ॥ "

अैसा कहकर दुल्हे-दुल्हनके हाथ पर जलनिक्षेप करावें। अुस वक्त दुल्हा कहें—" प्रतिगृह्णामि प्रतिगृहीता "। कुलगुरु कहें—" सुप्रतिगृहीताऽस्तु, शान्तिरस्तु, तुष्टिरस्तु, पुष्टिरस्तु, ऋद्धिरस्तु, वृद्धिरस्तु, धन-सन्तानवृद्धिरस्तु "। अितना कहकर

॥ २०३ ॥

दुल्हेको आगे और दुल्हनको पीछे करके कहें—" अग्निकी चौतर्फ परिक्रमा दीजिये "। पेस्तरके तीन फेरेमें दुल्हेका हाथ दुल्हनके हाथसें नीचे रक्खा गया था, अब अिस चौथे फेरेमें दुल्हेका हाथ अुपर और दुल्हनका हाथ अुसके नीचे रखना चाहिये। फिर दुल्हा-दुल्हन अग्निकी चौतर्फ चौथा फेरा फिरें, और चावलोंकी धानी अग्निमें डालें ४ ॥

चौथे फेरेकी अखीरमें दुल्हनको दुल्हेकी बाँयी तर्फ पूर्वोक्त आसन पर बैठावें। अिस वक्त दुल्हनका पिता या अुसके कुटुंबका कोअी वृद्ध पुरुष हो सो गहना, कपड़ा, हाथी-घोड़ा, और दास-दासी; जो कुच्छ देना हो मुआफिक अपनी ताकातके देवें। सबब कि कन्याप्रदान पूरा हुआ। और भी कुटुंबके लोग जो कुच्छ देना हो दे सकते हैं। अुसके बाद कुलगुरु दर्भ, दूर्वा, अक्षत, वास, वगेरा खुशबूदार चीजें हाथमें लेकर—

मन्त्र-वासक्षेपका—

" येनाऽनुष्ठानेन आद्योऽर्हन् शक्रादिदेवकोटिपरिवृतो भोग्यफलकर्मभोगाय संसारिजीवव्यवहारमार्गसंदर्शनाय सुनन्दा-सुमङ्गले पर्यणैषीत्, ज्ञातमज्ञातं वा तदनुष्ठानमनुष्ठितमस्तु ॥ "

अैसा कहें, और अुन अक्षतादिको दुल्हे-दुल्हनके मस्तक पर प्रक्षेप करें। तदनंतर दुल्हनका पिता जव, तिल, कुश और जलको हाथमें लेकर दुल्हेके हाथमें देवें, और अैसा कहे कि—" दायं ददामि " अर्थात् दायजा देता हुं। दुल्हा कहे—" प्रतिगृह्णामि " अर्थात् स्वीकारता हुं। अुस वक्त कुलगुरु कहें—" सुगृहीतमस्तु, सुपरिगृहीतमस्तु "। अिस वक्त दुल्हनका पिता फिर भी जो कुच्छ जमीन-जायदाद भांडे-बर्तन देना हो देवें।

अिस तरह दायन्वे दिये बाद कुलगुरु अैसा कहें—

" वधूवरौ ! वां पूर्वकर्मानुबन्धेन निबिडेन निकाचितबद्धेन अनुपवर्तनीयेन० "

अित्यादि आगे मूल विधिमें पृष्ठ १७६ में छपा है अुस मुताबिक कहकर तीर्थके जलसें कुशाग्रद्वारा दुल्हे-दुल्हनको अभिषेक करें। अितने काम हुवे बाद दुल्हे-दुल्हनको चोअुरीमेंसें अुठाकर कोतुकागारमे ले जावें, और कुलकरोंकी स्थापनाके सामने नमस्कार करावें। वहाँ अुनको बैठाकर कुलगुरु अैसा कहें—

" अनुष्ठितो वां विवाहः। वत्सौ ! समस्नेहौ, समभोगौ, समायुषौ, समधर्माणौ, समसुख-दुःखौ, समशत्रु मित्रौ, समगुण दोषौ, समवाङ्-मनः-कायौ, समाचारौ, समगुणौ भवेताम् ॥ "

अिस तरह कहकर नीचे लिखा हुआ करमोचन करनेका मन्त्र पढ़ें—

मन्त्र-करमोचनका-

" ॐ अर्हं। जीव ! त्वं कर्मणा बद्धः, ज्ञानावरणेन बद्धः, दर्शनावरणेन बद्धः, वेदनीयेन बद्धः० "

अित्यादि आगे मूलविधिमें पृष्ठ १७७ में छपा हुआ अिस वेदमन्त्रको संपूर्ण पढ़नेके बाद अिस प्रकार कहें—

" मुक्तयोः करयोरस्तु वां स्नेहसंबन्धोऽखण्डितः ॥ "

॥ २०५ ॥

अुपर लिखा अनुसार मन्त्रको पढ़कर कुलगुरु दुल्हे-दुल्हनका करमोचन करावें, यानि हस्तमेलन जो पेस्तर करवाया था यहाँ छोड़ा देवें। अिस वख्त दुल्हनका पिता और भी जो कुच्छ देना हो दुल्हेको फिर देवें।

तदनंतर कुलगुरु अिस आगे लिखे हुअे काव्यको पढ़ें—

" पूर्वं युगादिभगवान् विधिनैव येन, विश्वस्य कार्यकृतये किल पर्यणेपीत्।
भार्याद्वियं तदमुना विधिनाऽस्तु युग्म-मेतत् सकामपरिभोगफलानुबन्धि ॥ १ ॥"

अिस तरह मंगलवाक्य अुच्चारण करके ग्रन्थिमोचन करावें, और "अचलसौभाग्यमस्तु भवताम्" अैसा आशीर्वचन बोलें। अिस वख्त कुलगुरुको रूपया महोर कपड़ा जो कुच्छ देना हो मुताबिक अपनी ताकातके देवें। बहेन भाणेज और दामादको जो कुच्छ गेहना-कपड़ा देना हो अिस वख्त देवें।

फिर कौतुकागारसें चलकर दुल्हा-दुल्हन बहार आवें, और बाजे वगेरा जुलूसमें बराती लोगोंके साथ अपने डेरे जावें। दो-चार रोजके बाद जब बरातकी विदायगी मिले, वहाँसें चलकर अपने वतनमें आवें; और बाजे वगेरा जुलूससे अपने शहरमें प्रवेश करें। नोकर-चाकरोंको खुश करें, और सात रोजके बाद कुलकर और शासनदेवीकी स्थापनाको विसर्जन करें। सात कुलकर और शासनदेवीके मन्त्र जो पेस्तर लिख चूके हैं, अुन्हींको अेक-अेकको अलग-अलग बोलकर अखीरमें "पुनरागमनाय स्वाहा" यह पद सबके पीछे बोलता रहें, और अुनकी स्थापनाको विसर्जन करें। पीछे अिस श्लोकको पढ़ें—

" आज्ञाहीनं क्रियाहीनं, मन्त्रहीनं च यत्कृतम्। तत्सर्वं कृपया देव!, क्षमस्व परमेश्वर! ॥ १ ॥"

विवाहकी रसम मुल्क-मुल्कमे अलग-अलग है, लेकिन अुपर दिखलाअी हुअी रसम आमलोगोंको काबिल मंजूर रखनेकी है। विवाह होनेके पीछे धर्मकी तरक्कीके काम भी करना मुनासिब हैं। विवाहमे तरह-तरहके खान-पान किये, तो लाजिम है कि साधर्मिक-वात्सल्य भी करना। तरह-तरहके बाजोंकी अवाज सुनी, तो जिनमन्दिरमे संगीत-कलाका ठाठ भी करना चाहिये। हजाराह-लाखहा रूपये दुनियादारीके काममे अुडाये, तो धर्ममें भी लगाना चाहिये। पुन्य किया था अुसका फायदा यहाँ अुठाया, तो लाजिम है यहाँ भी करना जो आयदे फायदेमन्द हो। खूबसुरत ओरत, अच्छे मकानात, और जर खजाना धर्मकी बदोलत पाये हो। अब जरा सीधे होकर धर्म करो, जिसमें आयन्दे आराम और चैन मिले। दुनियामे अुमदा चीज धर्म है।

दोहा—धर्म घटता धन घटे, धन घट मन घट जाय। मन घटता मनसा घटे, घटत घटत घट जाय ॥ १ ॥
धर्म बढ़ता धन बढ़े, धन बढ मन बढ़ जाय। मन बढ़ता मनसा बढ़े, बढत बढत बढ़ जाय ॥ २ ॥

जिसके घर धर्म घटा तो जान लो अुसके घर दौलत भी घटेगी। जिसके घर धर्म बढ़ा तो अुसके घर दौलत बढेगी। अिस लिये मुनासिब है कि, विवाहमे मामुली और धर्ममें ज्यादे खर्च करना। कितनेक मुल्कके जैन श्वेताम्बर श्रावको सेवकोंको हजाराह रूपये त्यागके चुकाकर वाहवाह कराते हैं। कितनेक नाच-मुजरोंमें और कितनेक खेल-तमाशोंमे दोलत खर्च करते हैं। अिससें तो मामुली खर्च विवाह-शादीमे करके धर्मकाममे ज्यादे करें तो क्या ही अुमदा बात हो? अिस लिये नाहक दोलत लुटानेसें बचो, और अगर तुम्हारा अिरादा विवाह-शादीमे ज्यादे वाह-वाह करानेका हो तो धर्मके काममे खर्च करो। जैनधर्ममे धर्मक्षेत्र सात फरमाये—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, पुस्तक, प्रतिमा और मंदिर। अिनमे दिलके दलेर होकर खूब खर्च करो, जिससें यहाँ और परलोक दोनोंमे तुमारी वाह-वाह हो।

धर्मकी तरक्कीके ये ये काम हैं-विवाहकी शरुआतमें और अखीरमें अठ्ठाअी-महोत्सव करो। जिनप्रतिमाको अंगी, मंदिरजीमें रोशनी, और भंडारमें नगदी रूपये दो। साधर्मिक-वात्सल्य करो। साधु-साध्वीको वस्त्र-पात्र-पुस्तकपाना दो। पाठशालाकी तरक्की करो। नाहक दौलत लुटानेसें बचना चाहिये। चारण, भाट, सेवक, तवाअिफ़ें और बारुदखानेमें लुटाअी हुअी दौलत कोअी फायदा न देगी। कुचालोंकों छोड़ो और धर्मका रास्ता पकड़ो, जिससें दोनों जहानमें फायदा हो। जैनधर्मियोंको चाहिये कि, जो शक्रेन्द्रकी बताअी हुअी भगवान् श्री ऋषभदेवके विवाहकी विधि है वही श्रेयस्कर है, अुसको करना; जो आवश्यकसूत्र और आचार-दिनकरादि जैनशास्त्रोंसें यहाँ लिखी है।

॥ इति श्रीश्राद्धसंस्कारकुमुदेन्दौ विवाह-संस्कारकीर्तनरूपा चतुर्दशी कला समाप्ता ॥ १४ ॥

॥ श्राद्धसंस्कार-कुमुदेन्दोः प्रथमो विभागः समाप्तः ॥

श्राद्धसस्कार कुमुदेन्दु—प्रथम भागका शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	६	अवसापणीके	अवसर्पिणीके
७	९	चतुर्णापि	चतुर्णामपि
८	१७	सस्कार,	सस्कार ७,
१०	१३	गृह्णिणा	गृह्णिणा
१४	१२	गुर्जिणों	गुर्विणी
२०	५	मूल	मूल
३७	१	अुसका	अुसको
४१	८	तुप्रि	तुष्टि
४२	८	तस्सिन्नन	तस्मिन्नेव
४७	५	सौष्ठ	सोष्ठव
७०	१०	गनि	तेनि
८३	३	विक्रयाँका	विम्रियाँका
८५	८	चन्द्र	चन्द्रे
११९	५	नमस्कृत्यो जितकर	नमस्कृत्य योजितकर
१२५	१	वदृय करा	वह चकरा
१४८	७	तद्दशाय	तादृशाय
१५१	१३	मन्त्रस	मन्त्रसें
१६८	३	नागप्रत्यक्ष	नामप्रत्यक्षं
१६८	६	ग्रथिताञ्जलो	ग्रथिताञ्जलौ
१७३	४	अर्हँ	अर्हँ
१८१	१२	पूनतत्	पूर्ववत्
१९०	५	बाधना	बाधना
१९३	१	सोलक	सोलह
१९६	१४	पार्वे	पर्सें

श्री जैन शारदा-पूजन विधिका-

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	८	त्व	त्वं
७	११	अङ्केउत्सङ्गे	अङ्के-उत्सङ्गे
१२	१४	लोकात्तर	लोकोत्तर
२२	१३	पुष्पाणि	नैवेद्यं
२३	२	सिद्धि	सिद्धिं
२४	६	हं ह	हं हं
२६	१३	सवदेवताः	सर्वदेवताः
२९	२	शल्क	शुल्क